आधुनिक हिन्दी साहित्य
की महती शक्ति
छायावाद-काल के
प्रधान स्तंभ
'निराला'
को

वे दिन मैं भूला नहीं अभी, जब तरुण केहरी से विशाल,
उन्नत मस्तक, गर्वित पदतल, चलते थे मत्त गयन्द चाल।
तुम वाणी के वरपुत्र, समय के अंकुश से फिर म्लान वेष,
पद-पद लांछित, वांछित कब था जो दिया देश ने तुम्हें क्लेश!
भूँकते रहे घेर कर तुम्हें वे जयदर्पी कायर शृगाल,
झेलते रहे, ठेलते रहे, साहित्यव्रती तुम उन्हें काल।
गति में, वाणी में, जीवन में, नयनों में हँसते मुक्त छन्द,
तुम तरुण हो गये श्वेत केश, पर ज्योति जल रही थी अमंद।
हिन्दी के प्रथम प्रभातोदय में देखा था जो छवि-विलास,
रे कहाँ गया, रे कहाँ गया, गंभीर मेघ-गर्जनोच्छ्वास!
लांछित भारत कब देख सका है हिमकिरीट उत्तुङ्ग भाल?
ओ उग्र वसंत के अग्रदूत, लो तुम्हें भेंट यह अश्रुमाल!!

२५ अगस्त १९४७ —रामरतन भटनागर

नवीन संस्करण

आधुनिक हिंदी कवियों पर अच्छे समालोचनात्मक ग्रंथों की अभी बड़ी कमी है। संभवतः समालोचना आधुनिक हिंदी साहित्य का सबसे दुर्बल अंग है। जहाँ एक-एक साहित्यिक पर कई-कई समीक्षा-ग्रंथ होने चाहिये थे, वहाँ हुआ यह है कि साधना करते-करते इस युग के कवियों का जीवन व्यतीत हो हो गया; पर उनके जीवन तथा साहित्य का पूरा परिचय अभी तक नहीं दिया जा सका। जो दो-चार पुस्तकें विशेष दृष्टिकोणों को लेकर प्रकाशित हुई हैं, उनसे न तो कवियों के साथ न्याय हुआ है और न समृद्ध साहित्य के प्रबुद्ध पाठकों पर कोई विशेष प्रभाव पड़ा है।

'कवि निराला : एक अध्ययन' का यह नवीन संस्करण 'किताब महल' से प्रकाशित हो रहा है। लेखक ने पिछले सौ वर्ष के काव्य की अपने ढंग पर संक्षेप में समीक्षा करते हुए निराला की काव्य-प्रतिभा और काव्य-निधि का अत्यन्त सहानुभूतिपूर्वक विश्लेषण किया है। अतः आशा की जाती है कि निराला के व्यक्तित्व और काव्य का सामान्य परिचय प्राप्त करने के लिए उत्सुक जिज्ञासुओं को यह ग्रंथ संतुष्ट करेगा।

पिछले संस्करण में जो अशुद्धियाँ रह गई थीं, उन्हें यथा-साध्य ठीक कर दिया गया है।

फरवरी १९५० —विश्वम्भर 'मानव'

क्रम

1

भूमिका : रहस्यवाद-छायावाद

'रहस्यवाद' और 'छायावाद' दोनों आधुनिक शब्द हैं और काव्य की विशेष धाराओं के लिए प्रयुक्त होते हैं। 'रहस्यवाद' शब्द अंग्रेजी के 'मिस्टिसिज्म' शब्द का पर्याय है और एक विशेष प्रकार की अनुभूति एवं उस अनुभूति के आधार पर खड़े काव्य के लिए प्रयोग में आता है। 'छायावाद' का कोई अंग्रेजी पर्याय नहीं है। उसका सहज अर्थ है—'आधुनिक काव्य', विशेषतया १९१३ के बाद के हिन्दी गीतिकाव्य (लिरिक) की अनेक प्रवृत्तियाँ। आधुनिक रहस्यवादी कविता इन अनेक प्रवृत्तियों में से एक प्रवृत्ति है।

१८०० ई० से पहले रहस्यवाद की अनुभूति से उस धार्मिक अनुभूति का अर्थ होता था जो ईसाई पादरियों की ईश्वर और *ईश्वर प्रेम-सम्बन्धी मानवीय भावनाओं की उक्तियों एवं ब्लेक* जैसे कवि की कविताओं में प्रकाशित हुई है। प्रेम के आधार पर जीवात्मा-परमात्मा का एकांतिक अनुभव और अनुभवी संतों के चमत्कारिक वर्णन एवं रहस्यवादी काव्य इसी श्रेणी में आते हैं। जब अँग्रेज भारतवर्ष में आये और भारतीय काव्य-परंपरा से परिचित हुए तो यूरोपीय शब्दों 'मिस्टिक' और 'मिस्टिसिज्म' के आधार पर उन्होंने भारतीय धार्मिक चिंतना और उससे प्रभावित काव्य को भी रहस्यवाद कहा। उन्होंने उसकी कई श्रेणियाँ भी कर दीं।

रहस्यवाद की धार्मिक अनुभूति एवं धार्मिक कविता का

आधार निर्गुण ब्रह्म है। भारतीय साहित्य में सबसे पहले रहस्यवादी वर्णन ऋग्वेद के नासदीय सूक्त और पुरुषसूक्त में मिलते हैं। नासदीय सूक्त में 'नास्ति' (Non-Existence) का सुन्दर, चमत्कारी वर्णन है। 'पुरुष'-सूक्त में 'पुरुष' की वलि का रूपक बाँधकर ब्रह्म द्वारा सृष्टि के विकास की बात कही गई है। परन्तु रहस्यवाद के आदि ग्रंथ उपनिषद हैं। इनमें ब्रह्म की खोज, ब्रह्म-प्राप्ति की साधना और ब्रह्मप्राप्त योगी के आनन्द का उल्लेख रूपक, वर्णनों और कथाओं में इस प्रकार किया गया है कि वह साधारण श्रेणी के काव्य से ऊपर उठ जाता है। योरोपीय विद्वान् पहले-पहल उपनिषदों के रहस्यवाद की ओर ही आकर्षित हुए। 'कठोपनिषद्' रहस्यवादी उक्तियों से भरा पड़ा है। निर्गुण ब्रह्म की परिभाषा रहस्यवादी है, जैसे वह चलता है, नहीं भी चलता; है और नहीं है, इत्यादि। इस प्रकार ब्रह्म की विरुद्धधर्माश्रयी सत्ता का वर्णन भाषा की समस्त सीमाओं और हमारे समस्त अनुभवों को लाँघकर रहस्यवाद की श्रेणी में आ जाता है। उपनिषदों के वाद रहस्यवाद की धारा १८०० तक आ रही है। यद्यपि सब में जीवात्मा के परमात्मा के प्रति उन्मुख होने की वही एक बात है; परन्तु रूपकों, प्रतीकों और संबंधित धार्मिक धारणाओं के भेद के कारण इस रहस्यवादी प्रवाह के कई भाग कर दिये जाते हैं—जैसे योग-रहस्यवाद, वेदांतिक रहस्यवाद, निर्गुण रहस्यवाद, सूफ़ी रहस्य-वाद। हिन्दी काव्य में योगपरक रहस्यवाद महायानी सिद्धों और नाथपंथियों की कविता में मिलता है; वेदांतिक रहस्यवाद संतकाव्य और सगुण भक्ति-धाराओं की पृष्ठभूमि है; निर्गुण रहस्यवाद ने मध्ययुग की संतशाखाओं को प्रभावित किया है इसमें सूफ़ियों के प्रेमतत्त्व के मिश्रण से विशेष विलक्षणता आ गई है। सूफ़ी काव्य ईरानी चीज़ है; परन्तु उसे हम वेदांत का

प्रेम-प्रधान रूप कह सकते हैं। इसने मध्ययुग की भारतीय रहस्यवादी धाराओं को प्रभावित किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि लगभग सारा धार्मिक काव्य 'रहस्यवाद' की श्रेणी में आ जाता है। निर्गुण काव्य तो शत-प्रति-शत रहस्यवादी है, सगुण काव्य की भित्ति में अवतारी ब्रह्म का रहस्यवादी रूप ही है; यद्यपि वहाँ आलंबन के अधिक स्पष्ट रहने के कारण रहस्यवाद का आरोप उतना रहस्यपूर्ण नहीं हो पाता जितना निर्गुण प्रेममय काव्य में। जो हो, १८०० तक धार्मिक रहस्यवाद अनेक रूपों में हमारे काव्य को प्रभावित करता रहा है।

१९१३ के आस-पास रवि ठाकुर की 'गीतांजलि' से प्रभावित होकर खड़ी बोली में फिर रहस्यवादी काव्य का स्फुरण हुआ। 'गीतांजलि' पर उपनिषद् काव्य और मध्ययुग के वैष्णव कवियों का प्रभाव स्पष्ट है। कबीर, दादू और चंडीदास ने जो कहा था, उसे नई भाषा और नए रूपकों में ढाल कर 'गीतांजलि' विश्व के सामने आई और उसका विशेष स्वागत किया गया। रहस्यवादी प्रेममय सत्ता का अन्यतम अनुभव और उसके प्रति आत्मसमर्पण—ये गीतांजलि के विषय थे। इसके प्रभाव से हिन्दी में जयशंकरप्रसाद की पहली रहस्यवादी कविताएँ और रायकृष्णदास के 'साधना' के गीत लिखे गये। वेदांत और भक्ति के आधार पर खड़ा 'गीतांजलि' का आधुनिक रहस्यवाद खड़ी बोली के आधुनिक काव्य की सबसे प्रमुख प्रवृत्ति बन गया। आधुनिक काल की रहस्यवादी कविताएँ कई प्रकार की होती हैं—

(१) भक्ति के आधार पर मानवीय भावनाओं की व्यंजना जैसे

अरे अशेष, शेष की गोदी तेरा बने बिछौना सा
आ मेरे आराध्य, खिला लूँ मैं भी तुझे खिलौना सा

(माखनलाल)

या वियोगी हरि की भक्तिपरक कविताएँ

(२) दार्शनिक सिद्धान्त पर स्थिर रहस्यवाद, जैसे

भर देते हो

वार बार प्रिय, करुणा की किरणों से
क्षुब्ध हृदय को पुलकित कर देते हो

(निराला)

तेरे घर के द्वार बहुत हैं किसमें होकर आऊँ मैं

(मैथिलीशरण)

(३) दुःखवाद और बौद्धदर्शन पर आधारित नश्वरवाद—

प्रियतम ! आओ, अवधि मान की भी होती है, जाने दो

(रामनाथ सुमन)

या

जीवन तरी तीर पर लादे
करुणामय करुणाकर मुझपर आ दो दौड़ चला दे

(प्रसाद)

या

महादेवी वर्मा का काव्य जिसका आधार ही सार्वभौम करुणा, अन्यतम मिलन और विरह है। १९१२—२५ तक इस प्रकार की कविताओं का विकास होता गया। प्रधान कवि थे मैथिलीशरण (झंकार), निराला (परिमल) प्रसाद (झरना, आँसू, लहर), सुमन, पदुमलाल पुन्नालाल, मोहनलाल महतो। इसके बाद तो इस प्रकार की कविताओं की बाढ़ आ गई। १९२५ के बाद के कवियों में सबसे प्रमुख हैं रामकुमार वर्मा (चित्ररेखा, चन्द्रकिरण) और महादेवी (यामा)। १९३६ के बाद हमारे काव्य पर समाजवाद की नई राजनीतिक धारा का प्रभाव पड़ा है और अनेक उलझी हुई प्रवृत्तियाँ सुलझ गई हैं। धारा के रूप में रहस्यवादी काव्य लगभग समाप्त हो गया है, यद्यपि कुछ प्रमुख कवि अब भी उस प्रकार की कविताएँ लिखे

जा रहे हैं। अब काव्य राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय चेतना को प्रकाशित करने लगा है।

१९वीं शताब्दी के अंग्रेजी रोमांटिक कवियों ने कई प्रकार के नये 'रहस्यवादों' की सृष्टि की थी। वास्तव में रहस्यवाद सहजज्ञान (Intuition) पर खड़ा होता है और किसी भी विषय को एकांततः सहज अनुभूति के सहारे देखा जा सकता है। कवियों ने प्रेम, प्रकृति, बालक और सौन्दर्य को एकांततः सहजानुभूति द्वारा देखा। इससे रहस्यवाद के कई प्रकार चले: प्रेम परक रहस्यवाद (Love Mysticism : Shelley), प्रकृति परक रहस्यवाद (Nature Mysticism: Wordsworth), बालक परक रहस्यवाद (Child Mysticism : Blake), और सौन्दर्य परक रहस्यवाद (Beauty Mysticism : Keats)। १९१३ के बाद की नई कविता पर इन सभी कवियों का प्रभाव पड़ा और रहस्यवादी काव्य धार्मिकता की पेचीली गलियों से बाहर आ गया; यद्यपि प्रधानता उसी की रही। हिंदी में इन नये प्रकारों पर सुन्दर कविताएँ लिखी गईं। प्रेम-रहस्यवाद 'प्रसाद' के काव्य में मिलता है; प्रकृति में चमत्कार देखने की प्रवृत्ति पंत में है; बालक के प्रति भी पंत की रहस्यवादी प्रवृत्ति मिलती है। सौन्दर्य-रहस्यवाद का विशेष प्रचलन है और प्रसाद, पंत और निराला इनमें प्रधान हैं। इनके काव्य में अनेक उदाहरण मिल सकते हैं, जैसे—

दूत, अलि, ऋतुपति के आए
फूट हरित्पत्रों के उर से स्वर सस्रक छाए
दूत०।
काँप उठी विटपी, यौवन के
प्रथम कंप-मिस, मंद पवन से,
सहसा निकल लाज-चितवन के

भाव-सुमन छाए
दूत०

('परिमल'—निराला)

किस रहस्यमय अभिनय की तुम
सजनि ! यवनिका हो सुकुमार,
इस अभेद्य-पट के भीतर है
किस विचित्रता का संसार !

('छाया'—पंत)

जब इस तिमिरावृत्त मन्दिर में
उषालोक कर उठे प्रवेश
तब तुम हे मेरे हृदयेश
कर देना झट हाथ उठा इस
दीपक की ज्वाला निःशेष
यही प्रार्थना है सविशेष

(सियारामशरण)

बैठ कर सारी सूनी रात, तुम्हारे चुम्बन का आघात,
याद कर देखा करता, नाथ ! विरहिणी आँखों की बरसात

(रामनाथ 'सुमन')

यही नहीं, भारतीय आत्मा जैसे कुछ कवियों ने राष्ट्रीय भावना को भी एकांतिक अनुभूति के रूप में देखकर उसे रहस्यवादी बना दिया और 'राष्ट्रीय रहस्यवाद' जैसी एक नई श्रेणी की सृष्टि की ।

ऊपर हमने रहस्यवाद की कविता की प्राचीन एवं अर्वाचीन प्रवृत्तियों का विश्लेपण किया है। अब 'छायावाद' ।

जैसा हमने ऊपर बताया है 'छायावाद' आधुनिक काव्य की वह परम्परा है जो १९१२ से अब तक चली आती है । आधुनिक रहस्यवादी कविता इसका एक अंगमात्र है। परन्तु १९१२ के

वाद जनता का ध्यान विशेष रूप से इसी अंग ने आकर्षित किया। नई शैली और नई अभिव्यंजना के कारण लोकप्रिय होने पर भी इसको सरलता से समझा नहीं जा सकता था, इसलिए आधुनिक काव्य को कई व्यंग्य-प्रधान नाम दिए गए। अस्पष्टता के कारण इसे 'छायावाद' भी कह दिया जाता है और 'रहस्यवाद' इस काव्य का एक विशिष्ट अंग मात्र है।

वास्तव में छायावाद में 'छाया' अंश की प्रधानता थी (छाया = अस्पष्टता)। इस 'छाया' के कई कारण थे, कुछ का सम्बन्ध विषय से था, कुछ का टेकनीक से। पहले इस विषय को लेंगे।

छायावाद काव्य के विषय थे ईश्वर की रहस्यमयी सत्ता, उसके प्रति आत्मसमर्पण, विरह, मिलन, प्रेम, प्रकृति, नारी-सौंदर्य, राष्ट्र, मानव। विशेष नवीनता नहीं; परन्तु इन सबका आधार था सहजनुभूति। काव्य में 'चिंतन' और बौद्धिक क्रम को कोई स्थान नहीं। फलतः इन सब विषयों पर जो लिखा गया, वह नवीन; परन्तु जनता को अस्पष्ट था। सब छाया-छाया; स्थूल कुछ भी नहीं। स्वयं नारी के चित्रण भी स्थूल नहीं— भावना-प्रधान उड़ते-उड़ते। 'छायावाद' एक प्रकार से महावीर-प्रसाद द्विवेदी के युग (१९००-२०) के नीति-प्रधान, शुष्क, इतिवृत्तात्मक काव्य के विरुद्ध एक सजीव प्रतिक्रिया थी। दूसरे प्रकार से उसे अँग्रेजी और बँगला काव्य का प्रभाव एवं पलायन-वादी, व्यक्तित्व-निष्ठ कवियों की 'बहक' कहा जा सकता है। वास्तव में किसी भी युग के काव्य को अनेक दृष्टिकोणों से समझना आवश्यक होता है। 'छायावाद' के भी अनेक पहलू थे। उसका 'रहस्यवादी' अंश रवीन्द्रनाथ की 'गीतांजलि' और कबीर एवं बुद्ध के दुःखवाद से प्रभावित था। उसकी सूक्ष्मानु-वेषण की प्रवृत्ति पिछले काव्य के प्रति विद्रोह लिये थी। उसकी

शैली और उसके शब्दों एवं छन्दों पर अँग्रेज़ी और बँगला काव्य का प्रभाव काफ़ी से अधिक था। क्या भावना, क्या भाव, क्या शैली, क्या छंद—सब नए-नए, पुराना कुछ भी नहीं। फल यह हुआ कि काव्य-परंपरा से यह नया काव्य एकदम दूर जा पड़ा। बंगाली और अँग्रेज़ी काव्य से परिचित पाठकों ने इसे नक़ल-मात्र समझा। सामान्य जनता के लिए यह इतना ही दुरूह था जितना अँग्रेज़ी एवं बँगला का काव्य। उसे लेकर साधारण जनता और काव्यालोचकों में अनेक वितंडावाद उठ खड़े हुए।

छायावाद काव्य में जो बाद सबसे स्पष्ट है, वह है कवि की गहरी भावुकता, जो उपमा-उत्प्रेक्षा की झड़ी लगा कर भी शांत नहीं होती। प्रकृति के प्रत्येक चित्र पर कवि विभोर हो जाता है—

१—प्रथम रश्मि का आना, रंगिणि, तूने कैसे पहचाना?
कहाँ, कहाँ, हे बालविहंगिनि! पाया तूने यह गाना?
(पंत)

२—यमुने! तेरी इन लहरों में किन अधरों की आकुल तान
पथिक प्रिया सी जगा रही है, किस अतीत के गौरवगान
(निराला)

हे सौंदर्यागार? रूपखनि! सुखमासार! मनोहारी!
हे उपवन की अतुलित शोभा, हे सजीव छवि तनुधारी!
(तितली के प्रति)

'झरना', 'तारे', 'लहर' आदि (यहाँ तक कि धूल के कण) पर इसी भावुकता से लिखा गया। यह बात कवियों की अत्यधिक मानवता भले ही सूचित करे; परन्तु इस भावुकता की बाढ़ ने काव्य को 'छायावाद' बना दिया। लगभग उपरोक्त सभी विषयों पर इसी शैली को ग्रहण करना और भी हास्यास्पद था। दूसरी

विशेषता थी कल्पना का प्राचुर्य। शेक्सपियर ने कहा है कि कवि, पागल और प्रेमी एक ही तत्त्व के बने होते हैं। उसका इशारा तीनों की मानसिक स्थिति से था। तीनों कल्पनाशील होते हैं; परन्तु कवि और पागल के बीच में कल्पना का क्वचित संयम ही तो अंतर होगा! कवियों ने इस संयम का त्याग कर दिया। पंत ने नक्षत्रों को "शुचि उलूक" (नक्षत्र) कहा। निराला ने 'संध्यासुन्दरी' के चित्रण में कल्पना को आकाशव्यापी रंगभूमि दे दी—

अलसता की सी लता
किंतु कोमलता की वह कली
सखी नीरवता के कंधे पर डाले बाँह,
छाँह-सी अम्बरपथ पर चली

कहीं-कहीं तो कल्पना-चित्रों के प्रदेश के पार ये कवि न जाने किस लोक की रेखाएँ खींचते हैं, जैसे—

अँगड़ाते तम में
अलसित पलकों से स्वर्ण स्वप्न नित
सजनि! देखती हो विस्मित
नव, अलभ्य, अज्ञात

('वीणा'—पंत)

इस 'अँगड़ाते तम' को १९२०-२१ का हिंदी पाठक क्या समझता? कल्पनातिरेक ने छायावाद के काव्य को 'बाजीगरी' बना दिया था। तीसरी बात यह थी कि छायावाद काव्य के ('रहस्यवाद' को छोड़कर) दो अन्य प्रिय विषय थे प्रेम और सौन्दर्य। प्रेम अपार्थिव और सौन्दर्य वासना-प्रधान। नैतिक-प्रधान युग की सीमा पर खड़े हुए कवि, कली; लता, विटप, बिजली आदि प्राकृतिक वस्तुओं एवं व्यवहारों में 'रीति' भाव भर कर चले। उन्होंने स्वच्छन्द रूप से इन प्रतीकों की आड़ में उसी

प्रकार विलास का चित्रण किया, जिस प्रकार रीतिकाल के कवियों ने नायिका से खिलवाड़ की थी—

बन्द कंचुकी के सब खोल दिये प्यार से
यौवन उभार ने
पल्लव-पर्यंक पर सोई शेफाली के

(शेफाली)

निराला की 'जुही की कली' वासनात्मक सौंदर्य एवं रतिकेलि का चित्रण मात्र है; परन्तु उसे कवि ने आध्यात्मिकता का आरोप देकर जनता के सम्मुख उपस्थित किया। धीरे-धीरे रीतिकाल को विजय प्राप्त हुई और जिस स्थूल कायिक-भावना का विरोध छायावाद की नींव बना था, वह उसी से परिचालित होने लगा। जहाँ तक नारी-सौन्दर्य का प्रश्न है, बात इतनी बुरी नहीं थी। परन्तु प्रच्छन्न रूप से कायिक भावनाओं का पोषण छायावाद काव्य की रूढ़ि बन गई।

'टेकनीक' और छंद के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा जा सकता है; परन्तु यहाँ हम संक्षेप से काम लेंगे। एक वाक्य में, छंद में ऐसा परिवर्तन, शत-प्रतिशत परिवर्तन, हिन्दी के किसी युग में हुआ था ? अभी इस परिवर्तन का इतिहास नहीं लिखा गया है, न हम उन तत्त्वों से ही भली भाँति परिचित हैं, जिन्होंने पथ-प्रदर्शन किया। 'छायावाद' का भावी इतिहासकार केवल इसी अंग के लिए काव्य को हिन्दी की संपत्ति महत्त्वपूर्ण सिद्ध कर सकेगा। प्राचीन अव्यावहारिक छंदों की जड़ता के स्थान में नए छन्दों की सजीव जागरूकता और विविधता छायावाद काव्य की ऐतिहासिक देन होगी।

जो हो, छायावाद काव्य हिन्दी का वह आधुनिक काव्य है जिसका समय १९१३ से १९३७ तक कहा जा सकता है। अभी भी इस काव्य की अनेक प्रवृत्तियाँ जीवित हैं, परन्तु धीरे-धीरे

हम नई अन्तर्राष्ट्रीय और बौद्धिक चेतना के युग में पहुँच रहे हैं। नए काव्य की आधारशिला रखी जा चुकी है और उसने भाव, भाषा, छन्द, शैली सब में 'छायावाद' से बहुत कुछ लिया है। आगे का काव्य छाया से प्रकाश की ओर बढ़ रहा है—नये विषय, नई व्यंजना, नई शैली। हो सकता, है कुछ दिनों बाद 'छायावाद' स्वप्नों का काव्य या 'अर्द्ध चेतना' का काव्य लगे। परन्तु भावी काव्य-परम्परा के गढ़ने में उसका हाथ कम नहीं रहेगा। रहस्यवाद' इस छायावाद का सबसे प्रधान अंग है, उसकी आत्मा है, उसके बिना यह अधूरा है। इस युग की रहस्यवादी कविता में कितनी ईमानदारी है, कितना अनुकरण, यह दूसरी चीज़ है।

[२]

वर्तमान काव्य-धारा का आरम्भ १८५० के बाद से होता है। भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र प्राचीन काव्य और वर्तमान काव्य के संधिस्थल पर खड़े हैं। परन्तु वर्तमान काव्य ने प्राचीन विषयों को एकदम छोड़ नहीं दिया। उसके अपने नये विषय विकसित हुए; परन्तु प्राचीन विषयों पर भी कविताएँ लिखी जाती रहीं। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त की काव्यधारा में भक्ति (राम, कृष्ण), शृंगार, देशभक्ति और मानवीय प्रेम ही प्रमुख विषय थे। बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों में ये सब प्रवृत्तियाँ चलती रहीं एवं विकसित होती रहीं। क्लासिकल काव्य के रूप में राम और कृष्ण काव्य चलता रहा—यद्यपि अब उसका रूप बहुत नवीन हो रहा था। प्रियप्रवास, पंचवटी और साकेत राम-कृष्ण सम्बन्धी प्राचीन काव्य से भिन्न श्रेणी की वस्तुएं हैं। उनमें देवत्व से अधिक मानवत्व पर बल है। शृंगार-विषयक भावना में भी महान् परिवर्तन हुआ। प्राचीन शृंगार-काव्य के आलंबन राम-कृष्ण या राजे-महाराजे थे। आधुनिक

शृङ्गार-काव्य सामान्य व्यक्ति के प्रेम-विरह को प्रधानता देता है। उसका नायक साधारण नर है, नायिका साधारण नारी। यद्यपि रूढ़ि-प्रेमी एक दल प्राचीन परिपाटी का अनुकरण करता हुआ राधाकृष्ण को लेकर कवित-सवैये लिखता रहा; परन्तु अब उसका विशेष महत्त्व नहीं रह गया। आधुनिक काव्य के अनेक अंगों को इस प्रकार रखा जा सकता है :

१—सुधारवादी काव्य
२—नीतिपरक काव्य
३—राष्ट्रीय एवं जातीय काव्य
४—क्लासिकल काव्य
५—स्वच्छन्दतावादी (रोमांटिक काव्य)
(क) पंत-निराला की सौन्दर्यात्मक (aesthetic) कविता
(ख) रहस्यवादी कविता
(ग) दुःखवादी कविता
६—यथार्थवादी और सामाजिक काव्य
७—वैष्णव भक्ति : राम-कृष्ण सम्बन्धी काव्य।

इस पुस्तक की दृष्टि से स्वच्छन्दवादी काव्य विशेष महत्त्वपूर्ण है। निराला इसी काव्य के प्रतिनिधि हैं।

इस काव्य में रहस्यवाद और दुःखवाद की दो प्रवृत्तियाँ प्रमुख थीं। रहस्यवादी प्रवृत्ति के अनेक रूप थे।

१—सौन्दर्यात्मक (aesthetic)
२—कबीर की भाँति यथार्थवादी अद्वैतवाद जिसमें सूफ़ी रहस्यवाद की भी झलक मिलती है
३—वैदांतिक रहस्यवाद
४—प्रकृति-सम्बन्धी रहस्यवाद
५—प्रेम-सम्बन्धी रहस्यवाद

दुःखवाद के भी अनेक रूप सामने आये :

१—बीते अतीत के प्रति मोहासक्ति और तज्जन्य दुःख ('आँसू' और 'यमुना के प्रति')

२—संसार की नश्वरता के कारण दुःख ('परिवर्तन')

३—प्रकृति के आनन्द के विरुद्ध जगजीवन की जटिलता का आभास होने के कारण उत्पन्न हुए (पंत)

४—यांत्रिक सभ्यता के विरुद्ध प्रतिक्रिया (प्रसाद)

५—सौन्दर्य की खोज के फलस्वरूप दुःख (पंत)

६—अज्ञात के प्रति रहस्यात्मक आकर्षण और उसकी अप्राप्ति के कारण वेदना का अनुभव। इन दोनों मुख्य प्रवृत्तियों का फल यह हुआ कि कवि मे व्यक्तिवाद की प्रधानता रही। निराला जैसे कवि में अहंता की मात्रा की इतनी अधिकता के मूल कारण को खोज निकालना कठिन है: परन्तु जहाँ-जहाँ रहस्यवाद और दुःखवाद कविता का मूल स्रोत बने हैं, वहाँ व्यक्ति की एकांतिक साधना पर बल दिया गया है। इससे व्यक्ति की दृष्टि में अपना मूल्य बढ़ जाता है। वह अपने को समाज से अलग समाज से ऊची कोई बड़ी चीज समझने लगता है। अतः वह विद्रोही और क्रांतिकारी बन जाता है। इससे कवि का काव्य बहिर्मुख न रहकर अंतर्मुख हो जाता है। आधुनिक काव्य की मुख्य विशेषता यही है कि वह अंतर्मुख है। कवि की कविता में उसका अपना निजी स्वर बोलता है। उसके अनुभव, उसके भाव, उसके स्पंदन, उसके दुःख-सुख, उसकी प्रेम-घृणा ही उसके काव्य बन जाते हैं। १९१३ से कविता में कवि का निजी स्वर बराबर ऊंचा होता गया। बच्चन के 'एकांत संगीत' और 'निशानिमन्त्रण' में वह पराकाष्ठा पर पहुँच गया। अहंता की प्रधानता के कारण ही कवि समाज से भागता है। उसकी कविता के सामाजिक तत्त्वों का ह्रास होने लगता है और वह अपने ही

सुखों-दुखों में उलझ कर रह जाता है। इसे चाहे पलायनवाद कहो या और कुछ, कविता में कवि के निजी स्वर की प्रधानता के कारण ऐसा होना आवश्यक है। तीसरी बात यह है कि कवि का काव्य मनःभूमि का विश्लेषण करता जाता है। वह मन की प्रवृत्तियों को प्रधानता देता है। मन की चेतन, अर्धचेतन और अचेतन प्रवृत्तियाँ ही 'छायावाद' काव्य बन जाती हैं। पंत और प्रसाद के काव्य में मानसिक विवेचना ही जैसे प्रधान हो गई हो। 'स्वप्न', 'उच्छ्वास', 'आँसू' जैसे विषय ही मन-स्तत्त्व की प्रधानता सूचित करते हैं। कवि मनोविज्ञान, दर्शन और अध्यात्म की तंग गलियों का चक्कर काटने लगता है। वह कहाँ जा रहा है, वह भी यह बात नहीं जानता। 'अपराजिता' की भूमिका में नंददुलारे बाजपेयी ने छायावाद की 'मानवीय' किन्तु अधिकांश 'अशरीरी सौन्दर्य कल्पना' और उसकी 'सूक्ष्म उज्ज्वल मर्मस्पर्शिता' की बात कही है। छायावाद के कवियों की कविताओं में कल्पना और मनःरहस्य का जो प्रचुर विलास मिलन है, वह इस कथन की सत्यता ही घोषित करता है।

द्विवेदी-युग (१९००-१९२०) के काव्य में नैतिक बुद्धिवाद की प्रधानता थी। इससे प्रेम और शृंगार नाम की वस्तु साहित्य से लुप्त हो चलीं। भक्तिकाव्य शृंगारिक पृष्ठभूमि पर स्थिर होने के कारण उपेक्षित हो चला। द्विवेदी-युग का काव्य जिस अंतिम सीमा तक बढ़ सकता था, भारत-भारती और प्रिय-प्रवास उसके उदाहरण थे। भारत-भारती की देशभक्ति में हृदयतत्त्व की अपेक्षा बुद्धितत्त्व की प्रधानता है और प्रिय-प्रवास में नैतिक भावना कहीं भी शिथिल नहीं हुई है। द्विवेदी-काव्य की इति-वृत्तात्मकता और जड़ता में श्रीधर पाठक का काव्य ही एकमात्र हरियाली है। पाठक ने प्रकृति और ग्राम के सुन्दर चित्र हमें दिये। परन्तु प्रेम और विलास उनके लिए भी वर्जित प्रदेश थे।

छायावाद के काव्य में प्रेम और मिलन-विरह संबंधी वैयक्तिक सुख-दुख को प्रधान स्थान मिला; परन्तु कवि अधिकतर प्रेम का वर्णन अपरोक्ष रूप में ही करता था। लता-विटप, सर-सरिता, सिंधु-पवन, प्रकृति के सारे उपकरण प्रेम की अगणित चुहलें करते इस काव्य में आपको मिलेंगे। १९३२ तक कवि इसी प्रकार प्रच्छन्न रूप से प्रेम और वासना की अभिव्यक्ति करता रहा। इसके बाद 'गुंजन' और भगवतीचरण वर्मा की रचनाओं के साथ स्वर बदला। पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद को "कायवृत्तियों का प्रच्छन्न पोषण" कहा है। यह निश्चय है कि इंद्रियता के संबंध में छायावाद काव्य स्थूल-भूमि पर नहीं उतरता। उसकी अभिव्यक्तियाँ उच्च मानसिक स्तर की हैं। जहाँ साकारता आये बिना नहीं रही, जैसे 'उच्छ्वास' और 'ग्रंथि' में, वहाँ भी वह सांकेतिक ही रही। सच ही वर्तमान काव्य में शृंगार की धारा ने एक प्रच्छन्न रूप ग्रहण कर लिया। उसने अमूर्त अशरीरी सौन्दर्य-प्रियता को जन्म दिया जो छायावाद की एक विशेषता थी। यह युग एक प्रकार से सौन्दर्य-दृष्टि के पुनर्निर्माण (Aesthetic Revival) का युग था जिसने रोमांस का सहारा लिया था। यह रीतिकाल की स्थूल एन्द्रियता और द्विवेदी युग की बौद्धिक शुष्कता के बीच का मार्ग था। कवियों ने अपनी इन्द्रियों को काव्य का माध्यम बनाया। उन्होंने वर्जित कोनों में सौन्दर्य की खोज की। वे सुन्दर रूपों में खो गये। सुन्दर रूपों के प्रति उसका उत्साह अपार था। यूरोप के सौन्दर्यवादियों (Aesthates) की तरह वे इन्द्रिय-सुख के पीछे पड़े थे।

सौन्दर्य की अनुभूति के साथ करुणा की अनुभूति भी हुई। इसका कारण वे बन्धन थे जिन्होंने कवियों को बार-बार वास्तविकता का ध्यान दिलाया। जिस सौन्दर्य की ओर परिस्थिति की प्रतिक्रया के फल-स्वरूप वे आकर्पित हुए

थे, वे उन्हें अधिक समय तक लुभाये नहीं रख सकते थे। उसने समाज और बुर्जुआ सभ्यता में जो कुछ सुन्दर समझ रखा था, वह धीरे-धीरे लुप्त होता जा रहा था। उसने यह अनुभव किया कि सौन्दर्य क्षणभंगुर और नाशवान है। उसके काव्य में दुःख की भावना की उत्पत्ति हुई। इस दुःख की भावना का विकास हमें उत्तरार्द्ध के कवियों में मिलता है पूर्वार्द्ध के कवियों (निराला, पंत, प्रसाद) की दुःख की भावना अस्पष्ट और आध्यात्मिक थी; उत्तरार्द्ध में भी इसका रूप आध्यात्मिक ही रहा; परन्तु यह भावना स्पष्ट हो गई। इसने एक विशिष्ट दुःखवाद का रूप ग्रहण कर लिया।

'निराला' दुःखवाद से बचे रहे। उनके दर्शन ने उन्हें बचाए रखा। वहाँ खेद और विषाद का स्थान ही नहीं था। वहाँ अनंत संघर्ष था। इन दुःखवादी कवियों में निराला की आवाज़ ही अनंत आनंद की ओर इंगित करती रही। उनके वेदांत ने उनके स्वर में दुर्बलता नहीं आने दी। उन्होंने दुःख को दर्शन के रूप में स्वीकार नहीं किया।

परन्तु शीघ्र ही इस दुःखवाद ने आध्यात्मिक रूप ग्रहण कर लिया। कवियों ने अपने अस्तित्व की एकांततः का अनुभव किया। उन्हें जीवन में शून्यता की अनुभूति हुई। उन्होंने परिस्थितियों को स्वाभाविक और अपरिवतनशील मानकर अपने हथियार डाल दिये। उनके एकांतता के विचार ने उनके हृदय की अहंता को उकसाया। अब वे अहंवादी हो गये। वे वास्तविकता से भागे। इसके साथ ही उनमें से कुछ ने क्षीण विरोध भी किया। निराला और भगवती बाबू के काव्य में स्वस्थ मनुष्य के सबल विरोध की हुंकार साफ़ है। परन्तु शीघ्र ही यह विरोध समाप्त हो गया। कवि की एकांतता बढ़ने लगी। उसकी विरोध भावना स्वयं उसमें केन्द्रित हो गई। उसने परोक्षवादी दृष्टिकोण

नहीं अपनाया। फलतः एक पराजित भोगवाद या झूठी मस्ती का जन्म हुआ। इसकी नींव कवि की पराजित भावनाओं पर स्थिर थी। बच्चन की कविताओं में इस भोगवाद के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण मिलेंगे।

पराजित भोगवाद की भावनाओं ने ख़ैयाम की कविता की ओर दृष्टिपात किया। ख़ैयाम की कविता के आध्यात्मिक संकेत को इसने छोड़ दिया। इसका कारण यह है कि वह स्वयं पिछले युग की आध्यात्मिक कविता के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में विकसित हुआ था। ख़ैयाम की मादकता इसने ली, उसी के प्रतीक लिए और कविता के संसार में एक युगांतर उपस्थित कर दिया। जनता ने इसमें अपनी रुद्ध चीत्कारों को देखा और इसका स्वागत किया। आधुनिक कवियों में बच्चन जैसी लोकप्रियता किसी कवि को नहीं मिली। उनकी कविता में मध्यवर्ग की मनोवृत्तियों का सांकेतिक चित्र रहता था। उसके उपकरण थे :

१—भोग के प्रति आसक्ति

२—एक टूटे हुए स्वप्न के लिए रुदन

३—दैव या भाग्य पर आश्रय (कभी-कभी उसका विरोध भी था परंतु भाग्य की प्रबलता पर कवि का अटल विश्वास था)

४—सस्ती भावुकता

५—सौन्दर्य के प्रति आसक्ति

६—क्रियाशीलता के प्रति उदासीनता

हमने पहले कहा है कि दुःखवाद के पीछे निराशा और पलायन के दृष्टिकोण थे। सच तो यह है कि इन दोनों में अन्योन्याश्रित संबंध है। भोगवाद का आधार ही निराशा है। धीरे-धीरे कवियों ने ख़ैयाम की भावुकता और मादकता को छोड़ दिया

और उनका स्वर स्पष्ट हो गया। 'निशानिमंत्रण' और 'एकांत संगीत' इस मनोवृत्ति की परिणितियाँ हैं।

साथ ही जो कवि विरोध की भावना लेकर चले थे, उनके सामने समाजवाद के रूप में एक नया दृष्टिकोण आ गया। उन्होंने अपना स्थान समझने का प्रयत्न किया। वह जनता की ओर झुके। निराला की कविता 'तोड़ती पत्थर' पंत की 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' और भगवती बाबू का 'मानव' इस नये काव्य की आधार-शिलाएँ हैं। जिन पुराने कवियों ने नए काव्य की ओर बढ़ने का प्रयत्न किया, उनमें से कुछ अपनी पिछली मनोवृत्तियों के कारण नये संदेश को साफ़-साफ़ रखने में सफल नहीं हो सके हैं।

पूर्वार्द्ध के कवि (निराला, पंत, प्रसाद) ऐसे समय में लिखना आरंभ कर रहे थे, जब आज की अपेक्षा सामाजिक बंधन अधिक दृढ़ थे और यौन-संबंधी आकर्षण को किसी भी प्रकार प्रकट करना एक महान् अपराध होता। उस समय का व्रज-साहित्य भी रीतिकाल की प्रधान विशेषता शृङ्गार से हीन था। उसने साधारण प्रकृति-वर्णन और नैतिक उपदेश को अपना विषय बना लिया था। उस समय का समाज, विशेषकर आलोचक वर्ग, १९वीं शताब्दी के अँग्रेजी समाज से मिलता-जुलता है। एक प्रकार से द्विवेदीजी जानसन का कार्य रहे थे। साहित्य पर नीति का कठोर नियंत्रण था। अतएव नये कवियों की प्रतिभा विशेषतः प्रकृति या दार्शनिक तत्त्वों की ओर गई। उन्होंने जहाँ-जहाँ भौतिक प्रेम को अपना लक्ष्य बनाया, वहाँ-वहाँ वे देह की ओर केवल अस्पष्ट संकेत करके रह गये। उनका यौन-संबंधी संकोच उन्हें देह की ओर देखने ही नहीं देता था। यह क्षेत्र पहले से ही बदनाम था। इससे उन्हें कई दिशाएँ देखकर चलना पड़ता था। समय के नियंत्रण का डर था। स्वयं उनकी मनोवृत्ति कायिक

थी; क्योंकि वे सौन्दर्यवादी थे; परन्तु नारी का चित्रण करते हुए वे

(१) या तो दैहिक सौन्दर्य और उसके प्रति आकर्षण की उपेक्षा करते, या

(२) उर्दू कविता की तत्संबंधी लाक्षणिकता के आवरण में अपने आकर्षण को छिपाते ।

परन्तु धीरे-धीरे परिस्थिति बदली। उनका स्वागत हुआ। नियंत्रण भी कम हुआ और उनकी कायिक वृत्ति ने साँस ली। उन्होंने नारी-सौन्दर्य की ओर भी ध्यान दिया। परन्तु तब कठोर नियंत्रण में रहने के कारण उनका दृष्टिकोण दूषित हो गया था। उनकी सौन्दर्यानुभूति रहस्यमयता की ओर बढ़ रही थी। फल यह हुआ कि उन्होंने नारी को एक रहस्यमय, अलौकिक और अपार्थिव जीव के रूप में देखा। उनके इस दृष्टिकोण की जड़ में उनकी रहस्यवादी प्रवृत्ति थी जो लौकिक को अलौकिक और नगण्यतम को उच्चतम करके देखने लगी थी।

परन्तु एक दिन उन्होंने आँखें खोल कर देखा तो नारी उनकी चिंतना के केन्द्र में थी। यह अवश्य था कि उसमें पार्थिवता का कोई अंश न था; वह उनकी कल्पना-सृष्टि थी, विधाता की नहीं। परन्तु उनका दृष्टिकोण इससे इतना रँग गया कि उन्होंने उसे प्रकृति के मूल में देखा। कभी-कभी चेतन आदि शक्ति के रूप में भी। 'प्रसाद' का दृष्टिकोण अंत तक शुद्ध सौन्दर्यवादी जैसा रहा। पंत और निराला की सौन्दर्यानुभूति नारी के रहस्यमय अव्यक्त रूप की ओर उन्मुख रही।

उत्तरार्द्ध के कवियों के काव्य में नारी का ऐहिक रूप अधिक स्पष्ट हो गया है। उसमें मांसलता तो अभी नहीं आई; परन्तु कवि प्रेयसी की काया की सत्ता की ओर भी इंगित करता है। रामकुमार वर्मा की कविता में पहली बार नारी विधाता की

सृष्टि के रूप में आती है। 'निशीथ' में ऐसा होना आवश्यक था, क्योंकि वह कथा है। परन्तु इस पुस्तक को पंत की इसी प्रकार की प्रेमकथा 'ग्रंथि' के सामने रखने पर यह मालूम हो जाता है कि उनकी नारी पंत की नारी से अधिक स्थूल है। भगवती बाबू के प्रेम-गीतों में भी जिस नारी की ओर इंगित किया गया है, उसे भी इस स्थूल रूप में लेते हैं।

परन्तु यह परिस्थिति वांछनीय नहीं थी। इससे परवर्ती कवियों में इससे विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई। उन्होंने अपनी कविता को ऐन्द्रियता का इतना पुट दिया कि लोग उन्हें भोगवादी समझ कर घृणा करने लगे। यह साफ़ है कि छायावाद की अस्थूल नारी की कल्पना की प्रतिक्रिया होने के कारण कवि शरीरपक्ष की ओर झुके—परन्तु उनका आकर्षण इस उपेक्षित विषय की ओर इतना तीव्र हो गया कि उनका काव्य ही अस्वाभाविक जान पड़ा।

नारी के प्रति ठीक-ठीक दृष्टिकोण हमारे कवि अभी तक नहीं बना पाये हैं। इसका कारण भी यह है। अभी तक नर-नारी के बीच की सामाजिक प्राचीरें उसी तरह बनी हुई हैं। यह अवश्य है कि अब मध्यवर्ग में नारी-सम्बन्धी दृष्टिकोण कुछ सुलझ रहा है और वैवाहिक प्रतिबंध कुछ शिथिल हो रहा है। परन्तु अभी परिस्थितियाँ ऐसी नहीं हैं कि हमारी कविता उस तरह की प्रेम-कविताओं को जन्म दे जिनका स्वर विकृत न हो गया हो। कहीं पाशविक ऐंद्रियता है, तो कहीं स्त्रैणता। नरेन्द्र की कविताओं में नारी के प्रति कोमल भावनाएँ मिलती हैं; परन्तु उनका प्रेम तरुण का प्रेम नहीं है। उसमें किशोर का कंठ फूट रहा है। नारी के चरणों में एकांत समर्पण के अतिरिक्त पुरुष उससे और कुछ नहीं चाहता। उनके काव्य में भावुकता और सस्ता विरह-निवेदन है; यद्यपि उनकी कविता

हाड़-मांस की नारी के प्रति लिखी होने के कारण अनुभूतिपूर्ण, अतः प्रिय है। उसमें अपना आकर्षण है। फिर भी जब तक हमारे समाज में नारी जीवविज्ञान की एक आवश्यकता को पूरी करने वाली चीज मात्र बनी रहती है और उसे पूरा आदर नहीं मिलता, तब तक न हमारा साहित्य उसके प्रति अपने स्वस्थ दृष्टिकोण का ही निर्माण कर सकेगा, न हमारे प्रेमगीत ही विश्वसाहित्य के प्रेम-गीतों की तुलना में पूरे उतर सकेंगे।

नई काव्यधारा की रूपरेखा अभी स्पष्ट नहीं हो पाई है। यह धारा यथार्थवादी कवियों की है। अब तक के कवि रहस्य-वादी रोमांटिक या आदर्शवादी रहे हैं। उनके भावपक्ष और विचारपक्ष के संबंध में यह बात बिलकुल ठीक है। जहाँ उन्होंने सत्य को छूने का प्रयत्न किया है, वहाँ वे Romantic Sentimentalist या अतिभावक या रोमांटिक हो गये हैं। सच तो यह है कि उनका बौद्धिक स्तर देखने के लिए हमें उनकी गद्य रचनाओं की ओर देखना चाहिये। उनके अध्ययन से हमें मालूम होगा कि समाज की अनेक संस्थाओं के संबन्ध में उनके विचार कभी-कभी प्रतिक्रियावादी; परन्तु अधिकतर आदर्शवादी जैसे हैं। काव्य के दृष्टिकोण या भावुकता के विचार से वह रोमांसप्रिय सौन्दर्यप्रिय या रहस्यवादी हैं अथवा निराशावादी हैं। अब विचार के क्षेत्र में नई राजनीतिक और आर्थिक धारणाओं के प्रवेश करने के साथ हमारी नैतिक और समाज-संबन्धी धारणाएँ भी बदल रही हैं। लोग वास्तविकता में पीछे होने के बजाय उससे मोर्चा लेने की सोच रहे हैं। इस उद्देश्य से उन्होंने वस्तुस्थिति का अध्ययन करना आरम्भ किया है। इससे कविता में यथार्थवाद का जन्म हो रहा है। पंत की 'युगवाणी' में 'ठनठन, ठन' 'चींटी' और 'नारी' जैसी कविताएँ इसी ओर इंगित करती हैं। यह सत्य हो सकता है कि उनके विचारों ने अभी भावनाओं का

सृष्टि के रूप में आती है। 'निशीथ' में ऐसा होना आवश्यक था, क्योंकि वह कथा है। परन्तु इस पुस्तक को पंत की इसी प्रकार की प्रेमकथा 'ग्रंथि' के सामने रखने पर यह मालूम हो जाता है कि उनकी नारी पंत की नारी से अधिक स्थूल है। भगवती बाबू के प्रेम-गीतों में भी जिस नारी की ओर इंगित किया गया है, उसे भी इस स्थूल रूप में लेते हैं।

परन्तु यह परिस्थिति वांछनीय नहीं थी। इससे परवर्ती कवियों में इससे विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई। उन्होंने अपनी कविता को ऐन्द्रियता का इतना पुट दिया कि लोग उन्हें भोगवादी समझ कर घृणा करने लगे। यह साफ़ है कि छायावाद की अस्थूल नारी की कल्पना की प्रतिक्रिया होने के कारण कवि शरीरपक्ष की ओर झुके—परन्तु उनका आकर्षण इस उपेक्षित विषय की ओर इतना तीव्र हो गया कि उनका काव्य ही अस्वाभाविक जान पड़ा।

नारी के प्रति ठीक-ठीक दृष्टिकोण हमारे कवि अभी तक नहीं बना पाये हैं। इसका कारण भी यह है। अभी तक नर-नारी के बीच की सामाजिक प्राचीरें उसी तरह बनी हुई हैं। यह अवश्य है कि अब मध्यवर्ग में नारी-सम्बन्धी दृष्टिकोण कुछ सुलझ रहा है और वैवाहिक प्रतिबंध कुछ शिथिल हो रहा है। परन्तु अभी परिस्थितियाँ ऐसी नहीं हैं कि हमारी कविता उस तरह की प्रेम-कविताओं को जन्म दे जिनका स्वर विकृत न हो गया हो। कहीं पाशविक ऐंद्रियता है, तो कहीं स्त्रैणता। नरेन्द्र की कविताओं में नारी के प्रति कोमल भावनाएँ मिलती हैं; परन्तु उनका प्रेम तरुण का प्रेम नहीं है। उसमें किशोर का कंठ फूट रहा है। नारी के चरणों में एकांत समर्पण के अतिरिक्त पुरुष उससे और कुछ नहीं चाहता। उनके काव्य में भावुकता और सस्ता विरह-निवेदन है; यद्यपि उनकी कविता

हाड़-मांस की नारी के प्रति लिखी होने के कारण अनुभूतिपूर्ण, अतः प्रिय है। उसमें अपना आकर्षण है। फिर भी जब तक हमारे समाज़ में नारी जीवविज्ञान की एक आवश्यकता को पूरी करने वाली चीज़ मात्र बनी रहती है और उसे पूरा आदर नहीं मिलता, तब तक न हमारा साहित्य उसके प्रति अपने स्वस्थ दृष्टिकोण का ही निर्माण कर सकेगा, न हमारे प्रेमगीत ही विश्वसाहित्य के प्रेम-गीतों की तुलना में पूरे उतर सकेंगे।

नई काव्यधारा की रूपरेखा अभी स्पष्ट नहीं हो पाई है। यह धारा यथार्थवादी कवियों की है। अब तक के कवि रहस्यवादी रोमांटिक या आदर्शवादी रहे हैं। उनके भावपक्ष और विचारपक्ष के संबंध में यह बात बिलकुल ठीक है। जहाँ उन्होंने सत्य को छूने का प्रयत्न किया है, वहाँ वे Romantic Sentimentalist या अतिभावक या रोमांटिक हो गये हैं। सच तो यह है कि उनका बौद्धिक स्तर देखने के लिए हमें उनकी गद्य रचनाओं की ओर देखना चाहिये। उनके अध्ययन से हमें मालूम होगा कि समाज की अनेक संस्थाओं के संबन्ध में उनके विचार कभी-कभी प्रतिक्रियावादी; परन्तु अधिकतर आदर्शवादी जैसे हैं। काव्य के दृष्टिकोण या भावुकता के विचार से वह रोमांसप्रिय सौन्दर्यप्रिय या रहस्यवादी हैं अथवा निराशावादी हैं। अब विचार के क्षेत्र में नई राजनीतिक और आर्थिक धारणाओं के प्रवेश करने के साथ हमारी नैतिक और समाज-संबन्धी धारणाएँ भी बदल रही हैं। लोग वास्तविकता में पीछे होने के बजाय उससे मोर्चा लेने की सोच रहे हैं। इस उद्देश्य से उन्होंने वस्तुस्थिति का अध्ययन करना आरम्भ किया है। इससे कविता में यथार्थवाद का जन्म हो रहा है। पंत की 'युगवाणी' में 'ठनठन, ठन' 'चाँदी' और 'नारी' जैसी कविताएँ इसी ओर इंगित करती हैं। यह सत्य हो सकता है कि उनके विचारों ने अभी भावनाओं का

रूप नहीं लिया है तथा उनकी भावनाओं ने अपने चारों ओर कवित्व को इकट्ठा नहीं कर पाया है; परन्तु वे यथार्थ के कवित्वपूर्ण चित्रण की ओर बढ़ रहे हैं। अपने पुराने प्रतिबन्धों को तोड़ कर वे इस दिशा में काफ़ी सफल हो चुके हैं। नवीन हिंद कविता की समाजवादी धारा यथार्थवाद की ही एक शाखा है; यद्यपि अभी न उसमें कलात्मकता है न विचारों की गहराई।

आगामी कल के हिंदी काव्य की प्रगति अंतर्मुख से वहिर्मुख की ओर जान पड़ती है। व्यक्ति का स्वर समाज के स्वर में खोता दिखाई देता है। कविता समाज की वाणी होगी, ऐसे समाज की जो आशा, संघर्ष और विद्रोह से अनुप्राणित और स्पंदित होगा। भावी कवि की वाणी पूर्णता की ओर बढ़ती हुई मानवता को बदल देगी। परंतु अभी उसके आगे बहुत-सी मंजिलें हैं।

[२]

'छायावाद' और 'रहस्यवाद' के संबंध में अनेक धारणाएँ उपस्थित हुई हैं और स्वयं कवियों ने अपने-अपने दृष्टिकोण दिये हैं। रहस्यवाद के संबंध में श्री रामकुमार वर्मा कहते हैं—

"रहस्यवाद आत्मा की उस अंतर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शांत और निश्छल संबंध जोड़ना चाहती है और यह संबंध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ अंतर नहीं रह जाता।"

(कबीर का रहस्यवाद, पृ० ७)

जैनेन्द्रकुमार 'छायावाद' की परिभाषा देते हुए लिखते हैं—

"छायावाद में अभाव को अनुभूति से अधिक कल्पना से भरा गया। वियोग उसके लिए मानों एक cult (दृष्टि) ही हो गया। आँसू मानों छिपाने की चीज नहीं, दिखाने की वस्तु हो चला। व्यथा संगृहणीय न होकर बिखेरी जाने

लगी। जो वेदना सँजोयी जा कर वल वनती, वह सांग-सज्जा से प्रस्तुत की जाकर छायामात्र रह गई।"

('साहित्य संदेश', नवम्बर १९३९)

महादेवी के शब्दों में—

"छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस संबंध में प्राण डाल दिये जो प्राचीन काल से बिम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को अपने दुःख में प्रकृति उदास और सुख में पुलकित जान पड़ती है।"

('सांध्यगीत' की भूमिका)

वास्तव में नये काव्य के तीन पहलू ऐसे थे जिन्होंने एकदम नवीनता उपस्थित कर दी थी : (१) अज्ञात सत्ता और उसके प्रति प्रेम एवं आत्मसमर्पण, (२) नारी, (३) प्रकृति। अज्ञात सत्ता के प्रति लिखे काव्य ने रहस्यवाद का रूप ग्रहण किया और नारी एवं प्रकृति के संबंध में नये नये दृष्टिकोण विकसित हुए।

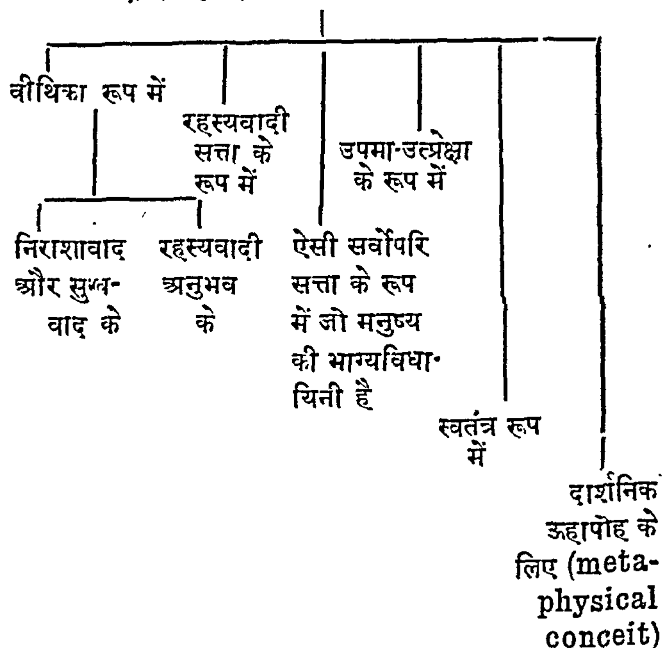
नवीन कवियों का प्रकृति-संबंधी दृष्टिकोण सूफ़ी-काव्य की याद दिलाता है। सूफ़ी कवियों का प्रकृति के सम्बन्ध में एक विशेष दृष्टिकोण है और उसने उनके काव्य में एक महत्त्वपूर्ण स्थान पाया है। ये कवि रहस्यवादी थे। इनकी दृष्टि में प्रकृति परमात्म-सत्ता की अभिव्यक्ति है, वह दर्पण है जिसमें पुरुष का चित्र पड़ता है। इसीसे उन्होंने उसे चिदात्म की प्राप्ति का एक माध्यम माना है। उन्होंने प्रकृति का जो चित्र उपस्थित किया है, वह उनकी रहस्यानुभूतियों में रँगा होने के कारण अतिरंजित है। साथ ही, वह जीवित, स्पंदित और सहानुभूतिपूर्ण है। साधक के दुःख-सुख के साथ प्रकृति भी सुखदुःख का अनुभव करती है। उसके उतने ही भाव हैं, जितने मनुष्य के। सूफ़ियों ने विरह को प्रेम की चरम अभिव्यक्ति माना है, इससे उनकी प्रकृति भी क्रन्दनशीला, पुरुष-परित्यक्ता है, आजीवन विरहिणी है।

द्विवेदीकाल के कवियों ने पहली बार प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार किया। नई पश्चिमी सभ्यता के साथ नगरों का जीवन तेज़ी से बदल रहा था। प्रकृति के जो चिन्ह विलासिता के पिछले युग में थे, वह भी नष्ट हो रहे थे। आर्थिक संघर्ष ने जीवन को और भी जटिल और नीरस कर दिया था। इससे कवियों की दृष्टि प्रकृति की ओर गई। वे नगर के रहनेवाले थे। उनकी भावुकता और सहानुभूति कभी काश्मीर की सुषमा पर जाती, कभी ग्राम-जीवन की सरलता और ग्राम की प्रकृति की ओर। जो हो, उन्होंने प्रकृति की ओर देखा, चाहे उनका दृष्टिकोण उनके उस आदर्श भाव से प्रभावित होकर बेमानी ही क्यों न हो गया हो जिससे प्रेरित होकर बाद में प्रेमचन्द गाँवों पर मोहित हो गए हैं।

नवयुग के कवियों ने जीवन की कटुता के प्रति भावुक विद्रोह किया और अपनी भावना-प्रिय प्रवृत्ति के कारण उसकी उपेक्षा करके उन्होंने उसे आँख की ओट करना चाहा। उनकी प्रवृत्ति उस शुतुरमुर्ग जैसी है जो रेत में मुँह छिपाकर शत्रु के ओट हो जाने की कल्पना करके अपने हृदय को संतुष्ट कर लेता है। उन्होंने Back to Nature कहा। परन्तु वह अति की ओट झुक चुके थे। उनके दृष्टिकोण में आसक्तिपूर्ण भावुकता ने प्रवेश कर लिया। शीघ्र ही वह प्रकृति के प्रति रहस्यवादी हो गये।

सच तो यह है कि पूर्वार्द्ध के कवियों के प्रकृति-चित्र उनके रहस्यवाद के कारण अतिरंजित हैं। उनमें न प्रकृति की स्वाभाविकता है, न उसकी विशदता। उनकी प्रकृति स्वयं उनकी निर्माण की हुई है; यद्यपि कहीं-कहीं बाह्य प्रकृति के चित्र बड़े सुन्दर मिलते हैं। परन्तु नवीनतम कवियों ने प्रकृति के प्राकृत रूप की ओर भी दृष्टिपात किया है। प्रत्येक दिन के दृश्य सौन्दर्य

की अभिव्यक्ति में वे सफल हुए हैं। उन्होंने उपेक्षित क्षेत्रों में प्रवेश किया है और उन्हें साहित्य-प्रेमियों के सामने रखा है: यद्यपि उनका दृष्टिकोण आदर्शवाद से प्रभावित है। फिर भी वे प्रकृति के बहुत समीप हैं। इन नये कवियों में प्रकृति कई तरह से आई है:



वास्तव में नई कविता में प्रकृति के प्रयोग इतने भिन्न-भिन्न ढंगों से हुए हैं कि थोड़े में उस सब की व्याख्या बड़ी कठिन बात है। कवियों की सारी दृष्टियों, सारी शैलियों, सारी वाग्भंगिमाओं

को प्रकृति ने रँग दिया है। नारी, प्रकृति और परोक्ष सत्ता (ईश्वर) छायावाद के काव्य में इतने गुँथ कर आये हैं कि उन्हें अलग-अलग रखना कठिन है। सारे मानव-जीवन और सारे मानव-चिंतन को समेट कर चलने वाला छायावाद का काव्य हिन्दी कविता का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। उसने हिन्दी कविता को शताब्दियों की रूढ़ि-कारा से बाहर निकाला है और आज छायावादी कवियों की साधना से वलवती होकर ही हिन्दी कविता विश्व-भारती के कंठ में अपनी भी तान भरने चली है।

[४]

द्विवेदी-काल के दो कवियों—पं० रामनरेश त्रिपाठी और पं० मुकुटधर पांडेय में हमें परवर्ती रोमांस-काव्य, रहस्यवाद या छायावाद के सूत्र मिलते हैं। जैसा हम आगे विशाद रूप में विवेचना करेंगे, छायावाद काव्य में अदृष्टसत्ता के प्रति 'प्रेम-भावना, लौकिक प्रेम को आध्यात्मोन्मुख करने की प्रवृत्ति, प्रकृति के स्वच्छन्द और रमणीय प्रसार की ओर दृष्टि पहले इन्हीं लोगों में मिलती है। त्रिपाठी ने मिलन, पथिक और स्वप्न खंडकाव्य लिख कर राष्ट्रीय और प्रेम-प्रधान कथाकाव्य योग दिया। निम्नलिखित पंक्तियों से उसका वह मूल रूप प्रकट होगा जो छायावाद में अंकुरित हुआ है—

प्रतिक्षण नूतन वेष बनाकर रंग-बिरंग निराला
रवि के सम्मुख थिरक रही है नभ में वारिदमाला
नीचे नील समुद्र मनोहर, ऊपर नील गगन है
घन पर बैठ बीच में बिचरूँ यही चाहता मन है

× × ×

सिंधु-विहंग तरंग-पंख को फड़का कर प्रतिक्षण में
है विमग्न नित भूमिखंड के सेवन में रक्षण में

उसी प्रकार मुकुटधर पांडेय की ये पंक्तियाँ भी छायावाद काव्य का पूर्वरूप ही उपस्थित करती हैं—

हुआ प्रकाश तमोमय जग में,
मिला मुझे तू तत्क्षण मग में,
दंपति के मधुमय विलास में,
शिशु के स्वप्नोत्पन्न हास में,
वन्द कुसुम के शुचि सुवास में,
था तव क्रीड़ा-स्थान ।

इनके अतिरिक्त पं० बदरीनाथ भट्ट और श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी की १९१३-१६ तक की कुछ कविताएँ गीतात्मकता, भावना, व्यंजना-शैली और जीवन के प्रति दृष्टिकोण में परवर्ती काव्य का बीज लिये हैं। सच तो यह है कि पहले दशाब्द का अंत होते-होते कवि, विशेषकर वे जो अँग्रेजी काव्य से परिचित थे, द्विवेदी युग की कविता की नीरसता, अभिधा-प्रधान शैली, इतिवृत्तात्मकता और उसकी कल्पना और रस-शून्यता से ऊब गये थे। वे, कम से कम, भाव-प्रकाशन की अधिक सरल, सरस और मार्मिक शैली की ओर बढ़ना चाहते थे। यद्यपि ये कवि प्रधान रूप से द्विवेदी-युग के ही कवि हैं क्योंकि उनके काव्य का अधिकांश उसी की विशेषताओं से विभूषित है; परन्तु उनका थोड़ा भाग अवश्य ही उन्हें द्विवेदी-युग से आगे बढ़ाकर छायावाद काव्य के उन्नायकों में रख देता है।

१९१३ ई० तक खड़ी बोली पद्य द्विवेदी स्कूल के कवियों द्वारा बहुत कुछ मँज गया था। भाषा सँभल गई थी; यद्यपि तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक था; परन्तु संस्कृत पदावली का प्रयोग कम हो गया था। भाषा में ऊँची कल्पना और उत्कृष्ट चित्र उपस्थित करने एवं उनमें अपनी अनुभूति प्रकट करने की चेष्टा होने लगी थी। मुकुटधर पांडेय कुछ-एक गीत भी लिख चुके थे

जो रहस्य भावना को प्रकट करते थे। यदि भाषा और शैली में विदेशी प्रभाव के कारण हठात् परिवर्तन हो जाता तो हिन्दी कविता में प्राचीनता और नवीनता का सुन्दर सामंजस्य हो पाता।

परन्तु ऐसा नहीं हो पाया। जिस प्रकार पिछले काव्य में पं० श्रीधर पाठक के नैसर्गिक मार्ग को छोड़ कर कविता-क्षेत्र में द्विवेदीजी के कारण एक नई गति-विधि चल पड़ी थी जिसके कारण एक दशाब्द तक कविता की प्रगति रुकी रही, उसी प्रकार रवीन्द्र बाबू के प्रभाव और अँग्रेज़ी के १९ वीं शताब्दी के रोमांटिक कवियों के प्रभाव के कारण कविता ने मुकुटधर पांडेय और श्रीधर पाठक को एकदम छोड़ कर एक नया रंग पकड़ा। इससे दस वर्षों में हिन्दी कविता जिस प्रौढ़ता पर पहुँच चुकी थी उसको धक्का लगा और कवि नये भाव और नई धारणाएँ लेकर नये सिरे से काम करने बैठे।

द्विवेदी-युग का काव्य इतिवृत्तात्मक था। कवि उससे ऊब चुके थे, विशेषकर जिन्होंने अँग्रेजी काव्य का अध्ययन किया था या जो अँग्रेजी और बँगला-साहित्य के वातावरण से प्रभावित हो चुके थे। अतः काव्य-कला के क्षेत्र में द्विवेदी-युग की काव्यधारा के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई। उसके अभिधा-प्रयोग के विरुद्ध लक्षणा का प्रयोग हुआ। कहीं-कहीं केवल अप्रस्तुत विधान से प्रस्तुत का संकेत होने लगा। ऐसे स्थलों पर अप्रस्तुत प्रस्तुत का प्रतीक होकर आता था: अतः काव्य अस्पष्ट हो गया। विशेषण का प्रयोग विशेष्य के लिए, भाववाचक शब्दों का अधिक प्रयोग, विशेषण-विपर्यय, अन्योक्तिपद्धति का आश्रय, लाक्षणिकता का बाहुल्य, वैचित्र्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति, शब्द-सौन्दर्य पर भाव-सौन्दर्य से अधिक दृष्टि—ये नये काव्य (छायावाद) की कुछ विशेषताएँ थीं।

छायावाद-काव्य कल्पना-प्रधान था, भक्ति-काव्य की तरह अनुभूति-प्रधान नहीं। इसके साथ ही उसमें आलम्बन की अस्पष्टता भी थी। अद्वैत वेदांत का समर्थक होते हुए भी छायावादी कवि अज्ञात प्रियतम के प्रति प्रेम प्रकट करता है और उससे मिलने के लिए आकुल है। इस प्रियतम का कोई रंग-रूप नहीं, कोई लोक अथवा ऐसा स्थान विशेष नहीं जहाँ वह रहता हो। भारतीय धर्म या साहित्य में उसकी कोई परम्परा नहीं है। कवि अपने को प्रियतम से विछुड़ी हुई पत्नी या प्रेमिका मानता है; परन्तु न उसकी शैली कोई स्पष्ट चित्र देती है, जैसा कवीर के रहस्यात्मक काव्य में होता है, और न आलम्बन का रूप ही साकार है, जैसा राधाकृष्ण-काव्य में। वस्तुतः छायावाद काव्य का अनन्त अथवा प्रियतम शैली के रूप में प्रयुक्त होता है, वह काव्य की एक रूढ़ि-सी है। अतः इसमें आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि हिन्दी प्रदेश की जनता उसे क्यों न समझ सकी।

छायावाद-काव्य पर अँग्रेजी-साहित्य का प्रभाव भी महत्त्वपूर्ण है। अनेक शब्द ऐसे प्रयोग में आये हैं जो अँग्रेज़ी भाषा के शब्दों के अनुवाद मात्र हैं; कहीं-कहीं पदावली के अनुवाद के रूप में भावों के अनुवाद भी मिलते हैं। कवियों की प्रवृत्ति कल्पना द्वारा आकाश-पाताल मिलाने की ओर है। अत्यंत थोड़ा साम्य रहते हुए भी किसी अपरिचित अप्रस्तुत विधान में एक पूर्ण परिचित प्रस्तुत विधान का आरोप किया जाता है। सन्दर्भ-रहित प्रतीकों का अत्यंत अधिक प्रयोग हुआ है। इससे भावना जटिल हो गई है और भाव अप्रकाशित रह गये हैं। कवियों का ध्यान रूप और गुण-साम्य की अपेक्षा प्रभाव-साम्य पर अधिक है। रीतिकाल के स्त्री के अंगों के उपमानों का एकवार फिर प्रयोग हुआ है; परन्तु नवीन रूप से लाक्षणिकता का सहारा लेकर। उपमान वही हैं परन्तु उनका प्रयोग दूसरे ढंग पर

हुआ है। द्वितीय-युग के कवियों ने शृङ्गार-रस की पूर्णतः उपेक्षा की थी। उनमें नैतिकता की प्रधानता थी। छायावाद के कवि की स्त्री-विषयक भावना पिछले खेवे के कवियों के दृष्टिकोण से विपरीत थी। इस भावना को हम आश्चर्य-भावना कह सकते हैं। एक बात और थी। नये कवि सौन्दर्य के प्रेमी थे। वे स्त्री के सौन्दर्य की ओर इतने आकृष्ट थे कि उसे पूजा-भाव अथवा रहस्य-भाव से देखते थे।

इन नये कवियों में हम द्विवेदी-काव्य के कवियों के विरुद्ध नादसौन्दर्य से विशेष प्रेम पाते हैं। इसीलिए अनेक निरर्थक पदावलियाँ केवल नाद-सौन्दर्य के कारण ही प्रयुक्त हुई हैं। कवियों की प्रवृत्ति कला की ओर अधिक थी। उन्होंने प्रत्येक दिशा में कलाप्रियता का परिचय दिया है। यह कलाप्रियता विशेषतः नवीन छन्दों के प्रयोग के रूप में प्रकट हुई है। अँग्रेजी और बंगला-साहित्य के छन्दों से प्रभावित होकर अतुकांत और मुक्त छन्द का भी प्रयोग हुआ; यद्यपि अधिक मात्रा में नहीं।

छायावाद-काव्य में हम अप्राकृतिक में प्राकृत, अमानव में मानव और जड़ में चेतन का आरोप पाते हैं। कवियों की दृष्टि आत्माभिव्यक्ति और वैयक्तिकता के प्रकाशन की ओर है परन्तु अनुभूति को कल्पना द्वारा उत्पन्न करने की चेष्टा और वास्तविक अनुभूति की तीव्रता न आने के कारण काव्य में अस्पष्टता-दोष आ जाता है। यद्यपि कवियों की दृष्टि समाज और राष्ट्र से हट कर मुख्यतः अपने व्यक्तित्व पर सीमित हो गई है, तथापि उनमें से कितने ही कवियों में विशाल सहानुभूति के दर्शन मिलते हैं।

इस नये काव्य में मानव-मनोभूमि को प्रकट करने की चेष्टा की गई है। इसीलिए हम विरोधी भावों को एक स्थान पर

इकट्ठा देखते हैं, क्योंकि मनुष्य स्वयं विरोधी भावों का समूह है। पिछले युग के काव्य में कवि किसी भी कथा को लेकर उसके इतिवृत्तात्मक वर्णन में अपने को धन्य मानते थे! छाया-वाद-काव्य में गीतात्मकता की वृद्धि हुई और कवि प्रबन्ध-काव्य की ओर नहीं गये। वास्तव में उनमें अपने सुख-दुःख से हटकर दूसरों के सुख-दुःख को देखने और उसे कथा के रूप में प्रकट करने की प्रवृत्ति ही नहीं थी। फिर भी कुछ कथा-काव्य अवश्य लिखे गये; यद्यपि उनमें कथा के विकास की अपेक्षा मनो-भावों का चित्रण ही अधिक हुआ।

छायावाद-काव्य में प्रकृति को विशेष स्थान मिला। आधुनिक काव्य में प्रकृति का स्वतंत्र प्रयोग पहले-पहल पं० श्रीधर पाठक द्वारा हुआ, इसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। द्विवेदी-युग के लेखकों ने अपने काव्य में प्रकृति को स्थान तो अवश्य दिया; परन्तु वह प्राकृतिक प्रसंगों और वस्तुओं के परिगणन तक ही सीमित रही। छायावादियों ने प्रकृति के प्रति प्रेम, तन्मयता और तीव्र मिलनाकांक्षा प्रकट की है। उन्होंने प्रकृति के रूपों में स्त्री-सौन्दर्य और रहस्यात्मकता का आरोप किया है। सारी प्राकृतिक सामग्री स्त्री रूप में देखी गई है; अतः प्रकृति के कार्यकलापों में प्रेमी-प्रेमिकाओं की चेष्टाओं का आरोप विशेष रूप से हुआ है। छायावाद के प्रकृति-चित्रण में अनुभूति के अतिरिक्त कल्पना का भी बड़ा पुट है, इसीसे कहीं-कहीं अत्यंत ऊहात्मक वर्णन मिलते हैं। उपमानों की खोज में कवि साधारण अनुभव की सीमा का अतिक्रम कर जाता है और कभी-कभी अत्यंत संदिग्ध कल्पना-मूलक उपमानों की झड़ी लगा देता है। उसे रंगों के प्रति व्यर्थ का प्रेम है। उसने बहुत से ऐसे रंगों की कल्पना की है जो केवल विदेशी काव्य में प्रयोग में आते हैं। उसने रंग संबंधी परम्परागत धारणाओं की अवहेलना की है। सच तो

यह है कि छायावादी कवि प्रभाव की ओर अधिक ध्यान देता है, स्वयं चित्र या रङ्ग की ओर कम।

वर्तमान काव्य (छायावाद) शृङ्गार की धारा ने एक प्रच्छन्न रूप ग्रहण कर लिया। उसने अशरीरी सौन्दर्य-प्रियता को जन्म दिया जो छायावाद की विशेषता थी। यह युग एक प्रकार की सौन्दर्य-प्रियता के पुनरुत्थान का युग था जिसने रोमांस का सहारा लिया था। वैष्णव साहित्य में सौन्दर्यानुभूति की भावना मिली हुई थी जो कवि की सौन्दर्य-प्रेमी प्रवृत्ति को तृप्त करती रहती थी। द्विवेदी-युग के वैष्णव काव्य में सौन्दर्य का विशेष पुट नहीं था। वह युग स्वयं रसिकता के प्रति विद्रोह का युग था। छायावादी कवियों में यह सौन्दर्यानुभूति फिर जागी और उन्होंने देवगाथाओं और देवपुरुषों के आलम्बन को छोड़कर प्रकृति और अव्यक्त अथवा अशरीरी कल्पना-चित्रों में सौन्दर्य-स्थापना की चेष्टा की। यह रीतिकाल की स्थूल ऐन्द्रियता और द्विवेदी युग की बौद्धिक शुष्कता के बीच का मार्ग था जो इन कवियों ने ग्रहण किया।

आलोचक-प्रवर श्री रामचंद्र शुक्ल ने छायावाद को 'कामवृत्तियों का प्रच्छन्न पोषण' कहा है। बहुत हद तक बात ठीक भी है। वह पूर्ववर्ती स्थूल लौकिकता के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में प्रारम्भ हुआ था। उसका दार्शनिक आधार वेदांत या उपनिषद् का दर्शन था। भौतिक प्रेम की ओर से कवि ने अपनी दृष्टि हटा ली; परन्तु उसी प्रकार की अभिव्यंजना वह प्रकृति और अव्यक्त सत्ता के लिए करने लगा। इस प्रकार उसने अपनी शृङ्गार-भावना को अमूर्त्त चित्रों पर आश्रित करके अपने मन को तृप्ति दी। छायावाद के पहले खेवे के कवियों ने नारी-सौन्दर्य की जो सृष्टि की है, वह काल्पनिक अतः अभौतिक है। उसने प्रकृति को भी स्त्री के रूप में देखा।

जो सर्वप्रथम प्रवृत्ति हमें काव्य में दिखाई पड़ती है वह उसकी सौन्दर्यानुभूति और सौन्दर्य के प्रति उसकी व्याकुलता है। उसने जिस वस्तु को छुआ है उसमें सौन्दर्य की स्थापना की है। प्रकृति के प्रति उसका दृष्टिकोण आश्चर्य का रहा। फिर उसने प्रकृति पर मानवीय भावनाओं का आरोप किया और उसे अपने अधिक सन्निकट लाने का प्रयत्न किया। प्रकृति के स्त्री-रूप के प्रति उसे मोह हो गया। उत्तरार्द्ध के कवियों में एक प्रकार के प्राकृतिक अध्यात्म के दर्शन होते हैं। यही नहीं, कवियों में सौन्दर्यान्वेषण की प्रवृत्ति इतनी बढ़ी कि उन्होंने स्वयं छन्द और कविता में भी सौन्दर्य की आत्मा के दर्शन किये। छन्द, शब्द और ध्वनि सबमें उन्होंने उत्तरोत्तर इस प्रकार के परिवर्तन किये कि धीरे-धीरे काव्य का कला-पक्ष उनके लिए सब कुछ नहीं तो बहुत कुछ महत्त्वपूर्ण हो गया। संक्षेप में यह कि कवियों ने अपनी इंद्रियों को काव्य का माध्यम बनाया।

इन कवियों ने सौन्दर्य और करुणा का विचित्र गठबंधन किया। सौन्दर्य और करुणा का संबंध अनिवार्य हो, यह आवश्यक नहीं है। वैदिक ऋचाओं में ऋषियों ने प्रकृति के अनेक रूपों में देवत्व का स्थापन किया है। परन्तु उनके गीतों में विषाद और करुणा की छाया भी नहीं है। वे मुक्त विहंगम की भाँति सुख के पंखों पर उड़ते रहते हैं और यद्यपि वे वर्ड्सवर्थ के स्काई लार्क (लवा) की तरह आकाशचारी हैं; परन्तु उनके गीतों में पृथ्वी की धूल नहीं लग पाती। हमारे आधुनिक कवियों को पग-पग पर आर्थिक और सामाजिक विडम्बनाओं से मोर्चा लेना पड़ता था। इससे उनकी आदर्शवादी प्रवृत्ति को धक्का लगता जिसके द्वारा वह अपने चारों ओर सौन्दर्य के एक संसार की सृष्टि करना चाहते थे। उन्होंने यह अनुभव किया कि सौन्दर्य क्षणभंगुर और नाशवान है। उनके काव्य में दुःख की भावना की उत्पत्ति

हुई। पहले कवियों में दुःख की भावना अस्पष्ट और आध्यात्मिक थी, परन्तु बाद में यद्यपि उसका रूप आध्यात्मिक ही रहा, परन्तु यह भावना स्पष्ट हो गई। बाद को बच्चन में इसने एक विशिष्ट दुःखवाद का रूप ग्रहण कर लिया।

रामकुमार और महादेवी में आध्यात्मिक दुःखवाद अपनी अन्यतम गहराइयों तक पहुँच गया है। कवियों ने अपनी एकांतता का अनुभव किया। उन्हें जीवन में शून्यता की अनुभूति हुई। उन्होंने परिस्थितियों को स्वाभाविक और परिवर्तनशील मान कर अपने हथियार डाल दिये—वे अहंवादी हो गये। वे वास्तविकता से भागे। उन्होंने अपने बाहर संघर्ष पाकर अपने भीतर के संसार में शांति ढूँढने की चेष्टा की। उनकी प्रवृत्तियाँ अंतर्मुखी हो गईं। संसार के प्रति उनका विश्वास क्षीणतम हो कर अंत में खो गया। तब उन्होंने मनुष्य-जीवन के अंतिम आधार को पकड़ा जो उसका स्वयं में विश्वास है। बार-बार जब मनुष्य परिस्थितियों से पराजित हुआ है तो उसने अपने प्रति विश्वास कायम रखने की चेष्टा की है जिससे उसका अस्तित्व बना रहे। महादेवी लिखती हैं—"इस युग में अपने प्रति भी विश्वास बचा रखने का क्या मूल्य है, इसे मेरा हृदय ही नहीं, मस्तिष्क भी जानता है। भार तो विश्वास का भी होता है और अविश्वास का भी; परन्तु एक हमारे सजीव शरीर का भार है जो हमें ले चलता है और दूसरा शरीर पर रखे हुए जड़ पदार्थ का जिसे हम ले चलते हैं।"

फल यह हुआ कि कवि के लिए उसका व्यक्तित्व ही सब कुछ हो गया। उसकी व्यापकता उसके लिए इतनी अधिक हो गई कि उसने बाहरी संसार से संबंध ही छोड़ दिया। आज हमारा हृदय ही हमारे लिए संसार है। हम अपनी प्रत्येक साँस का इतिहास लिख रखना चाहते हैं, अपनी प्रत्येक कंपन को

अंकित कर लेने के लिए उत्सुक हैं और प्रत्येक स्वप्न का मूल्य पाने के लिए विकल हैं। इसके साथ ही उनमें से कुछ ने परिस्थिति का क्षीण विरोध भी किया।

परन्तु शीघ्र ही जो विद्रोह था वह समाप्त हो गया। उनकी एकांतता बढ़ने लगी। उनकी विरोध-भावना उनमें ही केन्द्रीभूत हो गई। उसने यथार्थवादी दृष्टिकोण नहीं अपनाया, न अपने चारों ओर फैले हुए दुःख के कारण के मूल में पहुँचने का प्रयत्न किया। फलतः एक पराजित भोगवाद या झूठी मस्ती का जन्म हुआ। इसकी नींव कवि की पराजित भावनाओं में थी। भावुकता और मादकता को छोड़कर दुःख ही उनका स्वर हो गया। अब उनकी पीड़ा से उन्हें मोह था, उसमें उन्हें आसक्ति थी, वह एक प्रकार से Sadist थे जो यह संतोष कर लेते थे कि दुःख स्वयं एक प्रकार की साधना है जो मनुष्य की आत्मा को पुष्ट, बलवती और सुन्दर करता है। अब उनकी पीड़ा उन्हें प्रिय लगने लगी, उन्होंने उसे तीव्र अनुभूति के द्वारा स्पष्ट किया और उनकी कविता व्यक्ति के आत्मिक रुदन और चीत्कार के रूप में समष्टि की भावना को रूप देने लगी। कवि यद्यपि एकांत में गाता था; परन्तु उसके स्वर में सारे समाज का स्वर बज रहा था।

साथ ही जो कवि समाज, सत्ता और परिस्थिति के प्रति विद्रोह की भावना लेकर चले थे उनके सामने समाजवाद के रूप में एक नया दृष्टिकोण आया। उन्होंने अपना स्थान समझने की कोशिश की। उन्होंने देखा कि वह न ऊँचे मध्यवर्ग से संबंध रखते हैं, न साधारण श्रमिक कृषकों से। उन्होंने यह भी देखा कि उन्हें अपना स्थान चुनना होगा। वह जनता की ओर झुके। भगवतीचरण वर्मा की कविताएँ और पंत की 'युगवाणी' इस नई दिशा की ओर बढ़ती हुई चीजें हैं। कवि ने अनुभव किया कि उसका युग उसकी कविता से मेल नहीं खाता, कि उसने

अपने लिए सौन्दर्य और प्रेम का जो संसार खड़ा किया था, वह वास्तविकता की टक्कर से चूर हुआ जाता है। उसने अनुभव किया कि उसके युग का जो गद्य है उसे वह रूप देगा, उसकी वेदना को वह स्पष्ट करेगा। पिछले कवियों ने भी बदलने की चेष्टा की, परन्तु अभी वे अपनी रोमांटिक मनोवृत्तियों के कारण नए संदेश को साफ़-साफ़ रखने में सफल नहीं हो सके हैं। पूर्वार्द्ध के कवि ऐसे समय में लिखना आरम्भ कर रहे थे जब आज की अपेक्षा सामाजिक बंधन अधिक दृढ़ थे और यौन-संबंधी आकर्षण को किसी भी प्रकार प्रकट करना एक अपराध होता। उस समय का ब्रजभाषा-साहित्य भी रीतिकाल की प्रधान विशेषता शृङ्गार से हीन था। उसने साधारण तौर पर प्रकृति-वर्णन और नैतिक उपदेशों को अपना विषय बना लिया था। उस समय का समाज, विशेषकर आलोचक वर्ग, १८वीं शताब्दी के अँग्रेज़ी समाज से मिलता-जुलता था। एक प्रकार से द्विवेदी जॉनसन का कार्य कर रहे थे। साहित्य पर नैतिकता का कठोर नियंत्रण था। अतएव नये कवियों की प्रतिभा विशेषतया प्रकृति या दार्शनिक तत्त्वों की ओर गई। उन्होंने जहाँ-जहाँ भौतिक प्रेम को अपना लक्ष्य बनाया, वहाँ-वहाँ देह की ओर केवल स्पष्ट संकेत करके रह गये। उनकी पलायनशीलता उन्हें देह की ओर देखने ही नहीं देती थी।

यह क्षेत्र पहले से ही बदनाम था। इससे कवियों को कई दिशाएँ देख कर चलना पड़ता था। समय के नियंत्रण का डर था। स्वयं उनकी मनोवृत्ति कायिक थी, क्योंकि वह सौन्दर्योपासक थे। परन्तु नारी का चित्रण करते हुए या तो वे उसके दैहिक सौन्दर्य और उसके प्रति आकर्षण की उपेक्षा करते या उर्दू कविता की तत्संबंधी लाक्षणिकता के आवरण में अपने आकर्षण को छिपाते।

परन्तु धीरे-धीरे स्थिति बदली। उनका स्वागत हुआ। नियंत्रण भी कम हुआ और उनकी कायिक वृत्ति ने साँस ली। उन्होंने नारी-सौन्दर्य की ओर भी ध्यान दिया। परन्तु तब कठोर नियंत्रण में रहने के कारण उनका दृष्टिकोण दूषित हो गया था। उनकी सौन्दर्यानुभूति रहस्यमयता की ओर बढ़ रही थी। फल यह हुआ कि उन्होंने नारी को एक रहस्यमय, अलौकिक, अपार्थिवक जीव के रूप में देखा। उनके इस दृष्टिकोण की जड़ में उनकी रहस्यमयी प्रवृत्ति थी जो लौकिक को अलौकिक और नगण्यतम को उच्चतम करके देखने लगी थी।

परन्तु एक दिन उन्होंने आँखें खोल कर देखा तो नारी उनकी चिंता के केन्द्र में थी। यह अवश्य था कि उसमें पार्थिवता का कोई अंश न था। वह उनकी कल्पना-सृष्टि थी। पराजित भोगवाद की भावनाओं ने खैयाम की कविता की ओर दृष्टिपात किया। खैयाम की कविता के आध्यात्मिक संकेत को उन्होंने छोड़ दिया। इसका कारण यह है कि वे स्वयं पिछले युग की आध्यात्मिक कविता के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में विकसित हुआ था। खैयाम की मादकता उसने ली, उसी के प्रतीक लिए और संसार में एक युगान्तर उपस्थित कर दिया। जनता ने उसमें रुद्ध चीत्कारों को देखा और उसका स्वागत किया। इस प्रकार की कविताओं के उन्नायक बच्चन अपनी पहली ही कुछ कृतियों से जनता में इतने लोकप्रिय हो गए थे जितना कदाचित् इतने थोड़े समय में हिन्दी का कोई कवि नहीं हुआ। उनकी लोकप्रियता का कारण यह था कि इस कविता में मध्यवर्ग की मनोवृत्तियों का सांकेतिक चित्र रहता था। भोग के प्रति आसक्ति, एक टूटे हुए स्वप्न के लिए रुदन, दैव या भाग्य पर आश्रय (कभी-कभी उससे विरोध; परन्तु वह भी उसकी सत्ता को स्वीकार करते हुए), सस्ती भावुकता, सौन्दर्य के प्रति आसक्ति और क्रिया-

शीलता के प्रति उदासीनता—ये कुछ कविता की इस नई धारा की विशेषताएँ थीं। युद्ध के बाद ही मध्यवित्त जनता जिस आर्थिक संकट से गुजर रही थी, उसने उसमें निराशा और हतोत्साही भावनाओं को जन्म दिया था और यह कविता उसके छिन्न-भिन्न स्वर्ण-स्वप्न को ठीक-ठीक प्रतिबिंबित करती थी।

हमने कहा है कि दुःखवाद के पीछे निराशा और पलायन के दृष्टिकोण थे। सच तो यह है कि दुःखवाद और निराशा एक तस्वीर के दो पहलू हैं। भोगवाद की नींव में निराशा काम कर रही थी। धीरे-धीरे कवियों में ख़ैयामी मादकता का अंत हुआ। उन्होंने नारी-सौन्दर्य, प्रेम, प्रकृति और मानव-जीवन के दुःख-सुख के सम्बन्ध में अधिक स्वस्थ दृष्टिकोण आविष्कृत कर लिये।

उत्तरार्ध के कवियों के काव्य में नारी का रूप अधिक स्पष्ट हो गया है। नरेन्द्र के 'प्रवासी के गीत' की कविताएँ इसका प्रमाण हैं। कवि नारी को कल्पना की स्वर्गीय भूमि से उतार कर उसके प्रकृत स्थान में उसे स्थापित करने लगा है। यही नहीं, पुराने रूढ़िपंथी दृष्टिकोण के प्रति विरोध के शंख भी बज रहे हैं। 'युगवाणी' में पंत लिखते हैं—

योनि मात्र रह गई मानवी
निज आत्मा कर अर्पण,
पुरुष-प्रकृति की पशुता का
पहने नैतिक आभूषण
नष्ट हो गई उसकी आत्मा,
त्वचा रह गई पावन,
युग-युग से अवगुंठित गृहिणी
सहती पशु के बंधन

खोलो हे मेखला युगों की
कटि-प्रदेश से, तन से,
अमर प्रेम हो बंधन उसका;
वह पवित्र हो मन से
अंगों की अविकच इच्छाएँ
रहें न जघन—पातक
वे विकास में बनें सहायक
होवें प्रेम—प्रकाशक

नारी के प्रति कवि का यह नवीन दृष्टिकोण उसके जीवन-दर्शन के आमूल परिवर्तन का प्रतीक मात्र है।

द्विवेदी-युग में नए छंदों के प्रयोग की बात हम पहले ही कह आये हैं; परन्तु छायावाद काव्य में छन्दों के विषय में भी क्रांति हुई :

(१) नवीन संस्कृत छन्दों का प्रयोग हुआ।

(२) मात्रिक छन्दों में ऐसे प्रकारों की सृष्टि हुई जिनमें प्रत्येक चरण में विभिन्न छन्दों के चरण का प्रयोग मिलेगा।

(३) अभिव्यंजना को सफल करने के लिए किसी भी चरण की मात्राओं को घटाने-बढ़ाने की स्वतंत्रता बरती गई।

(४) बँगला से प्रभावित छन्दों का प्रयोग हुआ।

(५) तुकांत छन्दों के कई नए भेदों का प्रयोग हुआ।

(६) मुक्त छन्द में (जिसे उपहास की दृष्टि से विरोधियों ने रबड़ छन्द या केंचुआ छन्द कहा था) रचनाओं की प्रवृत्ति स्थापित हुई।

लगभग सारा छायावाद-काव्य गीतों या गेय कविताओं के रूप में ही हमारे सामने आया। व्यक्तित्व की प्रधानता और गीतात्मकता के महत्त्व के कारण इसके सिवा और कुछ हो ही नहीं सकता था।

परन्तु इस सारे समय में विषय और प्रकार की दृष्टि से अनेक तरह की विभिन्नता रही है। राम-कृष्ण पर 'साकेत' और 'प्रियप्रवास' जैसे महाकाव्य लिखे गये हैं; बुद्ध पर 'अनघ' और 'बुद्ध-चरित्र'; कुछ पौराणिक काव्य भी लिखे गये जिनका विषय देवी-देवता हैं। इनके अतिरिक्त मध्ययुग और आधुनिक युग के कितने ही वीरों को विषय बनाया गया। वास्तव में जातीयता और राष्ट्रीयता के भावों के विकास के साथ उन पर ध्यान जाना आवश्यक था—यही कारण है कि शिवा, प्रताप, अर्जुन, गोविन्दसिंह जैसे वीरों को लेकर कितनी ही वर्णनात्मक और कथात्मक कविताएँ लिखी गई हैं। परन्तु इस युग की विशेषता है जनसाधारण का काव्य में प्रवेश। हम कह चुके हैं कि सर्वचेतना और करुणा की प्रवृत्तियाँ मुख्य थीं; नवीन प्रवृत्तियाँ इन्हीं के भीतर से छनकर एकात्मकता को प्राप्त हुई।

विषय के बाद जो सबसे महत्त्वपूर्ण बात नवीन कविता में दृष्टिगोचर होती है वह है कलात्मकता। इसकी अभिव्यक्ति छन्दों, शब्दयोजना और शैली सभी में हुई है। कवि ने अपनी कला को गीतात्मकता या संगीत और चित्रात्मकता पर गढ़ा है। जो कुछ कहा जाय उसमें संगीत हो और अत्यंत, रंगीन, विशद एवं मुखर चित्र उपस्थित हो सकें। हम जानते हैं कि ऐसा सब स्थानों पर नहीं हो सका है, विशेषकर वहाँ जहाँ कवि इंद्रियों को ही अपना विषय बनाता है अथवा अमूर्त्त भावों को ही मूर्त्त रूप देता है या मूर्त्त वस्तु के सौन्दर्य की रहस्यात्मक अनुभूति प्रकट करता है; परन्तु यह प्रवृत्ति अन्य सभी स्थलों पर मिलती है।

छायावाद-काव्य का एक दूसरा पक्ष भी है—उसमें साधारण के ऊपर असाधारण की प्रतिष्ठा की गई है। फलतः उसने साधारण शब्दों के प्रयोग को त्याग कर असाधारण, नए गढ़े

शब्दों का प्रयोग किया। यदि यह प्रवृत्ति न होती तो हम उसकी भाषा में मैथिलीशरण गुप्त या गोपालशरण सिंह की भाषा का विकास देखते जिनकी भाषा में द्विवेदी-युग की काव्य-भाषा का सर्वोत्तम विकास मिलेगा। परन्तु इस व्यक्तिगत रुचि के कारण नये शब्दों के उद्गम-स्थल कई हैं—

(१) अँग्रेजी शब्दों के अनुवाद (जैसे स्वर्ण स्वप्न, गीले गान। इस प्रकार के शब्दों का सबसे अधिक प्रयोग श्री सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य में हुआ है।)

(२) बँगला से लिये हुए संस्कृत के शब्द (निराला और पन्त दोनों के काव्य द्वारा इन शब्दों ने हिन्दी-जगत में प्रवेश किया)

(३) लक्षणा के प्रयोग

(४) अँग्रेजी और बँगला के शब्दों के जोड़ पर गढ़े नये शब्द और समास

(५) संस्कृत काव्यों और महाकाव्यों से प्राप्त नए शब्द

(६) नए अर्थ में प्रचलित संस्कृत शब्दों का प्रयोग।

इस प्रकार छायावाद-काव्य में एक विशिष्ट शैली ही नहीं, एक विशिष्ट शब्द-कोष ही खड़ा हो गया। यह शब्द-कोष ही 'छायावाद' की लांछना का विशेष कारण हुआ क्योंकि बिना सन्दर्भ के इन शब्दों को समझना कठिन था। ये हमारी काव्य-परम्परा में प्रयोग पाये हुए शब्दों की आत्मा में बड़ी दूर जा पड़ते थे।

वास्तव में २०वीं शताब्दी की मुख्य काव्य-धारा को रोमांटिक ही कहना पड़ेगा; यद्यपि पिछले दो दशाब्द तक छायावाद का जन्म एवं उत्थान नहीं हो पाया था और प्राचीन ब्रजभाषा अथवा उससे प्रभावित खड़ी बोली के कवित्तों और सवैयों की कविता भी चल रही थी। पहले दो दशाब्द में रीतिकाल की

कविता के विरोध ने ही नवीन प्रवृत्ति का रूप ग्रहण किया। इसके कारण काव्य में कई नवीनताओं का प्रवेश हुआ; (१) शृङ्गार से विमुखता, (२) इतिवृत्तात्मक काव्य, (३) पौराणिक विषयों की ओर प्रवृत्ति, (४) नए रूप से कथाकाव्य का जन्म, (५) प्रकृति, पेड़-पौधों आदि पर दृष्टि—यद्यपि प्रकृति के प्रति आग्रह रामचन्द्र शुक्ल जैसे कुछ कवियों में ही मिल सकेगा। (६) नई शब्दावली का प्रयोग जिसमें माधुर्य गुण, यमक अलंकार आदि की योजना नहीं थी। इस प्रकार कवियों की दृष्टि भाषा की स्वाभाविकता की ओर थी। इस तरह यद्यपि पहले २० वर्षों का काव्य रूढ़ि से विरोध के नाते रोमांटिक कहा जायगा परन्तु ठीक उस प्रकार का काव्य छायावाद के रूप में ही हमारे सामने आया। व्रजभाषा-काव्य में केवल कवित्त, सवैयों और दोहों का प्रयोग होता है। खड़ी बोली का जो कवि-वर्ग परम्परा से अधिक प्रभावित था, उसने कवित्तों और सवैयों की रचना की; परन्तु दूसरे वर्ग ने संस्कृत छंदों और फ़ारसी वह्रों के अत्यंत विस्तृत प्रयोग किये। यही नहीं, बँगला के पयार और अँग्रेजी का सॉनेट आदि का भी प्रयोग हुआ। जहाँ सारे रीति-साहित्य में मुक्तक काव्य ही भरा पड़ा था, वहाँ कथाकाव्य, गीत, भजन, महाकाव्य और खंड-काव्य भी उपस्थित हुए; यद्यपि पहले दशाब्द में उच्च श्रेणी का काव्य उत्पन्न नहीं हुआ। कारण यह था कि कवियों की दृष्टि भाषा-परिष्कार पर लगी रहती थी और नये विषयों पर लिखते हुए उन्हें प्राचीन काव्य से किसी प्रकार सहारा नहीं मिलता था। यहाँ प्राचीन कविता में रस और अलंकार ही सब कुछ थे—वहाँ अब भाव पर अधिक बल दिया जाता था। यही नहीं, रस-दृष्टि भी परिष्कृत हो चली। वीर रस का अर्थ केवल कर्ण-कटु शब्दों का श्रुत्यानुप्रास नहीं रह गया। इसी दृष्टिकोण के कारण बीभत्स और भयानक रसों पर

अधिक नहीं लिखा जा सका। शृङ्गार तो प्रतिक्रिया के कारण उपेक्षित ही था। हाँ, राम-कृष्ण को लेकर एवं फुटकर विनय-पदों में शांत रस की प्रतिष्ठा रही। इस काल में वीर, रौद्र, करुण ही मुख्य रस रहे; यद्यपि उनके प्रति दृष्टिकोण एकदम नवीन था। पहले प्रकृति उद्दीपन के लिए थी और षटऋतुवर्णन प्रत्येक कवि का ध्येय समझा जाता था; परन्तु अब शृंगार से अलग हो गया। कालांतर में ऋतुओं के अतिरिक्त अन्य प्राकृतिक विषयों पर भी कविताएँ लिखी जाने लगीं। इनमें वर्णन की इतिवृत्तात्मकता है, रसपुष्टि कम हुई है; परन्तु बदलते हुए दृष्टिकोण के कारण एवं संक्रान्ति काल की कविता होने के कारण वह प्रत्येक प्रकार से अभिनन्दनीय है।

धीरे-धीरे नवीन प्रभाव पड़े। करुणा की प्रवृत्ति को विस्तार मिला। १९१४ के आस-पास मुकुटधर पांडेय, राय कृष्णदास, 'प्रसाद' आदि के द्वारा गीतांजलि से प्रभावित होकर एक नये प्रकार की रचना हिंदी में आई जो भावना और शैली की दृष्टि से नवीन थी। इसी के प्रभाव से छायावाद-काव्य की नींव दृढ़ हुई। छायावाद की विशद विवेचना हम पीछे कर चुके हैं। यहाँ हम संक्षेप में उसकी प्रवृत्तियों को और उस प्रभाव को ही सूचीबद्ध करेंगे जिसके कारण वे प्रवृत्तियाँ विकसित हुई :—

(१) सर्वचेतना की भावना—करुणा की प्रवृत्ति का विकास और उन्नीसवीं शताब्दी के अँग्रेजी काव्य का प्रभाव।

(२) परम सत्ता के प्रति आकुलता का भाव—'रहस्यवाद'। 'गीतांजलि', कबीर आदि का प्रभाव।

(३) प्रकृति के प्रति नवीन दृष्टिकोण—श्रीधर पाठक के समय से आई हुई नवीन प्रवृत्ति का विकास, विशेषकर सर्वचेतनता की भावना और उन्नीसवीं शताब्दी के आंग्ल काव्य के भीतर से।

(४) नारी के प्रति दृष्टिकोण—सामाजिक एवं व्यक्तिगत संस्कारों एवं परिस्थितियों का प्रभाव।

(५) निराशावाद—आर्थिक असंतोष का प्रभाव जिसने रहस्यवाद के साथ मिलकर आध्यात्मिक असंतोष का अस्पष्ट रूप ग्रहण कर लिया था।

(६) कलात्मकता—व्यक्तिगत प्रयास।

इन सब प्रवृत्तियों के मूल में एक विशेष प्रवृत्ति थी—लेखकों में व्यक्तित्व एवं अहमन्यता का विकास। इसी प्रवृत्ति के कारण कविता के विषयों का साधारणीकरण संभव हो सका।

इन प्रवृत्तियों के कारण नायक-नायिकाओं का साधारणीकरण हो गया। दो प्रकार के नायक हमारे काव्य के विषय पहले से ही थे—धीर वीर नायक, धीर ललित नायक। ये, क्रमशः वीर-काव्य और शृङ्गार काव्य के नायक थे। कालांतर में 'रासो' ग्रंथों में वीरनायक उदात्त चरित्र लोकनायक न रहकर महाराज या सामन्त होने लगे और शृङ्गार काव्य के नायक राधा-कृष्ण या राजा-महाराजा। रीतिकाव्य में राधा-कृष्ण ही शृङ्गार के विषय रहे; परन्तु धीरे-धीरे इनका संदर्भ छूट गया, इससे लौकिक नायक-नायिकाओं की प्रतिष्ठा हुई। प्रत्येक नर-नारी, चाहे कितना ही क्षुद्र हो, नायक-नायिका के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। आधुनिक युग में नायक-नायिकाओं की मान्यता और साधारण तल पर उतर आई। प्रत्येक जातीय वीर और राष्ट्रीय वीर नायक था। सत्याग्रह आन्दोलनों ने सत्याग्रही के रूप में एक नया वीरादर्श दिया। उधर शृङ्गार के कल्पित नायक-नायिकाओं के स्थान पर व्यक्तिगत रूप से लोक से अभिन्न प्रियतम-प्रियतमाओं की सृष्टि हुई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्तमान काव्य असाधारण से साधारण और अलौकिक से लौकिक की ओर निरन्तर बढ़ती हुई प्रगति का अंतिम सोपान है।

परन्तु यह नहीं समझना होगा कि छायावाद की इस नवीन धारा के साथ अन्य धाराओं का लोप हो गया था। सभी काव्य-धाराएँ उस समय चल रही थीं। इन धाराओं के तीन रूप थे—ब्रजभाषा काव्य की कवित्त-सवैयों की शृङ्गार-प्रधान धारा, खड़ी बोली काव्य की कवित्त-सवैयों की शैली जिसमें एक बड़ा वर्ग अब कविता करने लगा था एवं जिसका आदर्श प्राचीन रूढ़ि-प्राप्त विषयों को अंगीकार करके बढ़ना था, द्विवेदी-युग की खड़ी बोली की नई धारा जो अब प्राचीन होकर समय से पीछे पड़ गई थी। पहली धारा के प्रतिनिधि रमाशंकर शुक्ल 'रसाल', 'सरस' आदि हैं, दूसरी धारा के प्रतिनिधि अनूप शर्मा, जगदंबाप्रसाद हितैषी, गोपालशरण सिंह और सनेही हैं। इनमें से कुछ द्विवेदी-युग का भी प्रतिनिधित्व कर चुके हैं। तीसरी धारा के पोषकों की संख्या सर्वाधिक है। ठाकुर गोपालशरणसिंह, हरिऔध, श्री श्यामनारायण पांडेय, पुरोहित प्रतापनारायण, मैथिलीशरण गुप्त आदि कितने ही कवि भाव-धारा की दृष्टि से द्विवेदी-युग से आगे नहीं बढ़ पाए हैं। वस्तुतः जनता में यही तीन वर्ग के कवि माने जाते थे—छायावाद काव्य को जनसाधारण बराबर उपहास का पात्र बनाए हुए थे। इसका कारण यह था कि इस काव्य में चतुर्दिक क्रांति हुई। काव्य-भाषा तो खड़ी ही रही; परन्तु वह द्विवेदी-युग के लोकप्रिय कवियों की भाषा से इतनी दूर थी कि वह हठात् विद्रोह उत्पन्न करती थी। भाषा भाव, छंद, व्यंजना शैली—काव्य के समस्त उपकरणों में एक ही साथ आपादमस्तक परिवर्तन हो गया। जनता इस परिवर्तन के लिये तैयार नहीं थी। वह द्विवेदी-युग के कवियों की जनता थी। इसी से छायावाद

युग का सर्वप्रिय कवि कोई छायावादी नहीं है, यह लोकप्रिय कवि द्विवेदी-युग के प्रतिनिधि कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त हैं।' छायावाद के अतिरिक्त ये जो तीन काव्य-धाराएँ हिन्दी काव्य-क्षेत्र में चल रही थीं, उनके विषय स्पष्ट थे, जनता उनकी भाषा, शैली, व्यंजना—सभी को भली भाँति समझती थी। ब्रजभाषा काव्य यों तो खड़ी बोली के प्रचार और अध्ययन-अध्यापन के कारण जनता से दूर पड़ा जा रहा था, परन्तु उसकी विशिष्ट काव्य-शैली और उसके विषय से लोग इतने अधिक परिचित थे कि कवि-सम्मेलनों में, जिनमें बहुधा प्रधान छायावादी कवियों को छोड़कर शेष की खिल्ली उड़ाने की बँधी चाल थी, उसी की जीत होती थी। १९२५ तक परिस्थिति लगभग यही रही; परन्तु इसके उपरांत छायावादी कवियों ने अपनी संगीतज्ञता के कारण जनता को आश्वस्त कर लिया, यद्यपि समझ में न आने की शिकायत अब भी बनी रही। १९३८ तक आते-आते कवि-सम्मेलनों में परिस्थिति विपरीत हो गई, कम से कम जहाँ तक हिन्दी के प्रधान केन्द्रों का सम्बन्ध था। कवियों की निराशापूर्ण अर्द्ध-आध्यात्मिक कविताओं को अपने ही ढङ्ग पर समझ कर कवि-सम्मेलनों की जनता उनकी माँग करने लगी। परंतु इससे यह न समझना चाहिये कि जनता अध्यात्म-प्रिय हो गई थी या छायावादियों की कविता समझ लेती थी। बात इतनी ही थी कि अधिक परिचय के कारण जनता का विद्रोह कुंठित हो गया था, इस नये काव्य के प्रति, और कुछ नहीं तो जिज्ञासा की दृष्टि से ही, देखने के लिये वह तैयार थी, उसके अस्पष्ट आध्यात्मिक निराशावाद और काव्य-क्रन्दन में उसे अपनी असफलताओं और निराशाओं के चित्र दिखलाई पड़ते थे।

छायावाद काव्य, जैसा हम कह चुके हैं, मुक्तक-काव्य था। उसमें खंड-काव्य जैसी चीज़ें नाममात्र को ही थीं। पथिक,

स्वप्न, ग्रन्थि, निशीथ, राम की शक्ति-पूजा, कामायिनी—छायावाद-काव्य केवल इन्हीं कथा-काव्यों को हमारे सामने उपस्थित कर सका है। उसमें व्यक्तित्व की प्रधानता थी। कवि संसार को अपनी ही दृष्टि से देखता था, अपने ही को केन्द्र बनाकर देखता था। फल यह हुआ कि उसे उन कथाओं से कोई मतलब नहीं था जो स्वयं उसके भावक्षेत्र में नहीं आई थीं। उसकी दृष्टि बहिर्मुखी कम थी, अंतर्मुखी अधिक। इसी से वह खंड-काव्य और महाकाव्य प्रभृति चीजें नहीं लिख सका। जहाँ उसने ऐसा किया भी (उदाहरण के लिए कामायिनी लीजिये), वहाँ अस्पष्ट भावधारा, असंतुलन और अव्यक्त व्यंजक भाषा के कारण एवं गीतात्मकता की प्रधानता से वह उच्च श्रेणी का कथा-काव्य नहीं बन सका। कामायिनी में पात्रों और कथा के भीतर जो ज्ञान, कर्म और श्रद्धा के रूपकों को लेकर अंतर्जगत का चित्र उपस्थित करने की जो चेष्टा है वही उसे कथा-काव्य की श्रेणी से नीचे गिराती है। व्यक्तिमुखी काव्य व्यक्ति पर काव्य नहीं बन सकता था। परन्तु द्विवेदी-युग में प्रवर्तित खड़ी बोली की काव्यधारा के कवियों ने छायावादी कवियों के स्फुट गीतों के समकक्ष खण्डकाव्यों और महाकाव्यों का ढेर लगा दिया। मैथिलीशरण गुप्त के कितने ही महाकाव्य और खंडकाव्य कालक्रम की दृष्टि से छायावाद के साथ ही लिखे गये हैं; सियारामशरण गुप्त का 'मौर्यविजय' अनूप शर्मा के 'कुणाल' और 'सिद्धार्थ', श्यामनारायण पांडेय के 'रासो के दो वीर' और 'हल्दी घाटी', पुरोहित प्रतापनारायण का 'नल नरेश' आदि कितने ही काव्य छायावाद के ववंडर के भीतर ही हमारे सामने आये और जनता ने उनका स्वागत किया। जहाँ द्विवेदी-काल का कवि अपने व्यक्तित्व को कथा-संपुट में रखकर उसे जनता को उसके परिचित स्वरों में उपस्थित

करता था; वहाँ छायावादी कवि की प्रतिभा अहंप्रधान होने के कारण कथा को भी बिखेर देती थी। छायावाद-काव्य के पहले खेवे के प्रधान कवि हैं जयशंकर प्रसाद (१८८९-१९३७), सुमित्रानंदन पंत (१९००—), सूर्यकांत त्रिपाठी (१८९६—), मोहनलाल महतो वियोगी (१९०२—)। दूसरे खेवे के महत्त्वपूर्ण कवि महादेवी वर्मा (१९०७—); भगवतीचरण वर्मा (१९०३—), रामकुमार वर्मा (१९०५—), जगन्नाथप्रसाद मिलिंद (१९०७—), सियारामशरण गुप्त (१८९४—), जगन्नाथप्रसाद द्विज, हरिकृष्ण प्रेमी, गुरुभक्तसिंह भक्त, बच्चन (हरिवंशराय), इलाचन्द जोशी, शान्तिप्रिय द्विवेदी हैं। इन सब कवियों में छायावादी काव्य की उन विशेषताओं में से किसी न किसी के दर्शन अवश्य होते हैं जिनका वर्णन हम पहले कर आये हैं।

इन कवियों में जयशङ्कर प्रसाद संक्रांति-भूमि पर खड़े हैं। इनकी प्रारंभिक कविताएँ ब्रजभाषा में हैं, परंपरागत कवित्त छंदों का ही आधिक्य है, परन्तु भाव और अभिव्यंजना-शैली दोनों की दृष्टि में वह छायावाद काव्य का पूर्व रूप ही प्रस्तुत करती हैं। 'आँसू' पर लिखा हुआ यह छन्द उनकी इसी नाम के क्रांतिकारी काव्य की पीठिका कहा जा सकता है :

"आवे इटलात जलजात-पात के से बिन्दु,
कैधों खुली सीपी माहिं मुक्ता दरस है।
कढ़ी कञ्ज-कोष ते कलोलिन के सीकर ते,
प्रातः-हिम-कन-से न सीतल परस है॥
देखे दुख दूनो उमगत अति आनन्द सों,
जान्यों नहीं जाय यहि कौन सों हरस है।
तातो-तातो कढ़ि रूखे मन को हरित करै,
ऐरे मेरे आँसू ये पियूष ते सरस हैं।"

ये प्रारम्भिक कविताएँ 'चित्राधार' में संगृहीत हैं। उनके अन्य संग्रह 'काननकुसुम', 'महाराणा का महत्त्व', 'करुणालय' और 'प्रेम-पथिक' उन्हें जहाँ विषय और भाषा-शैली की दृष्टि से द्विवेदी-युग में रखते हैं, वहाँ इन्हीं काव्यों में कहीं-कहीं नवीन काव्य-भूमि के भी दर्शन हो जाते हैं। १९१८ में प्रकाशित 'झरना' की कविताओं से वह स्पष्ट रूप से नवीन काव्य के प्रवर्तक के रूप में दिखलाई पड़ते हैं। राय कृष्णदास ने प्रसाद के संस्मरण में लिखे हुए अपने एक लेख में 'झरना' की कविताओं का इतिहास दिया है जिससे पता चलता है कि 'साधना' (गद्यगीत) और 'झरना' की कविताओं का मूल स्रोत एवं मूल रूप एक ही है। इससे स्पष्ट है कि उन पर रवीन्द्रनाथ की गीतांजलि के गद्यानुवाद का स्पष्ट प्रभाव है। परन्तु यह प्रभाव इस संग्रह की कुछ कविताओं को छोड़कर आगे नहीं बढ़ सका है। १९२७ में 'झरना' का द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ। इसमें कितनी ही नई कविताएँ उपस्थित हैं जो प्रसाद की अपने विशेष काव्यानुभूति और अभिव्यंजना शैली को प्रकाशित करती हैं। 'विषाद', 'बालू की बेला' और 'किरण' शीर्षक कविताएँ रहस्यवाद की व्यंजना, समस्त काव्य में लाक्षणिक आरोप और मादकतापूर्ण चित्रमयता को हमारे सामने उपस्थित करती हैं। परन्तु जिस कविता ने प्रसाद को अग्रगण्य छायावादी कवि के रूप में प्रतिष्ठित किया, वह १९३१ में प्रकाशित 'आँसू' है। उनका दूसरा संग्रह 'लहर' (१९३६) है। प्रसाद की कवि-प्रतिभा ने छायावाद काव्य को कामायनी (१९३७) की अंतिम और सर्वश्रेष्ठ भेंट दी है जिसमें कवि एक पौराणिक कथा को लेकर उस पर रूपक का आरोप करता हुआ जीवन, मृत्यु, ज्ञान, कर्म, श्रद्धा, प्रेम और विलास के अन्यतम रहस्य खोलता दिखाई देता है।

'प्रसाद' सौन्दर्य, प्रेम और करुणा के भीतर से जीवन और

प्रकृति को देखते हैं और उन्हें अंतर्जगत में उतारने की चेष्टा करते हैं। वह आध्यात्मिक और सौन्दर्यनिष्ठ असंतोष को प्रकट करते हुए भी काव्य में चिरमङ्गल का संदेश देते हैं। 'आँसू' के दूसरे संस्करण का अंतिम भाग और कामायनी के अंतिम प्रकरण उन्हें इसी रूप में प्रकट करते हैं। कामायनी में कर्म, श्रद्धा और बुद्धि इन तीनों के सामंजस्यपूर्ण सम्मिलन को ही चिर शांति का विधायक माना है। इच्छा, ज्ञान और क्रिया की धाराएँ जब अलग-अलग बहती हैं तो व्यक्ति और राष्ट्र के जीवन में असफलता, संघर्ष और उच्छृङ्खलता के सिवा और कुछ नहीं रहता। श्रद्धा के द्वारा इन तीनों विभिन्न शक्तिकेन्द्रों में एकीकरण स्थापित होता है। दुःख का कारण है मन के संतुलन का अभाव। सुख-दुःख को मन का खेल समझकर समभाव बने रहने और इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया की धाराओं को एकमुखी बनाने में ही मनुष्य-जाति का कल्याण है। प्रसाद जगत के दुःख-सुख प्रधान व्यक्तित्व के ऊपर आत्मा के मांगलिक आनन्दवाद की प्रतिष्ठा करते हैं।

पंत में दार्शनिकता का इतना आग्रह नहीं है जितना प्रसाद और निराला में। वे प्राकृत कवि हैं। उन्होंने प्रकृति-सौन्दर्य और मानव-जीवन को कुतूहल, उल्लास और रहस्य की दृष्टि से देखा है। वे सच्चे अर्थों में रोमांटिक कवि हैं। उच्छ्वास, ग्रंथि, वीणा, पल्लव, गुञ्जन—ये उनके क्रमिक विकास का इतिहास उपस्थित करते हैं। अपने युग में उन्हीं का अनुकरण सबसे अधिक हुआ है और छायावाद-काव्य का प्रतिनिधि कवि उन्हें ही कहा जा सकता है। उच्छ्वास और ग्रंथि गीतात्मक कथाकाव्य हैं। यद्यपि कथा शैली-विशेष के कारण खुली नहीं है, परन्तु उसमें हमें पंत के प्रकृत रूप के दर्शन पहली बार होते हैं। वीणा में उनका रूप कुछ अधिक स्पष्ट हुआ है; परन्तु पल्लव

में ही वे पहली बार काव्य की मान्यताओं को तर्क-वितर्क की भूमि पर उतारते हुए और निश्चित सिद्धान्तों को लेकर बढ़ते हुए हमारे सामने आते हैं। 'पल्लव' (१९२६) में सुकुमार शब्द-चयन, उत्कृष्ट कल्पना, सौन्दर्य और प्रेम की रहस्यात्मक अनुभूति, प्रकृति के प्रति कुतूहल और रहस्यात्मक एवं तीव्र आकर्षण, अतीन्द्रिय प्रेम का आग्रह इतने स्पष्ट रूप से हिन्दी जनता के सामने आया कि वह कवि को भली भाँति न समझ सकने पर भी उसके प्रति जिज्ञासु हो उठी। जैसा हम पहले कह आये हैं पंत की प्रारंभिक कविताओं पर गीतांजलि का प्रभाव है; परन्तु उनकी बाद की कविताएँ उससे बिलकुल मुक्त हैं। 'पल्लव' की कविताओं पर यह प्रभाव लगभग नहीं है। इन कविताओं का ऐतिहासिक महत्त्व महान् है क्योंकि इन्हीं के द्वारा काव्य की प्रचलित परिपाटी के विद्रोह और नवीन काव्य की रूपरेखा प्रकाशित हुई है। इस विद्रोह के कई रूप थे—

(१) रीतिकालीन शृङ्गार के प्रति विद्रोह

"शृङ्गारप्रिय कवियों के लिए शेष रह ही क्या गया ? उनकी अपरिमेय कल्पना-शक्ति कामना के हाथों द्रौपदी के दुकूल की तरह फैलकर 'नायिका' के अङ्ग-प्रत्यंग में लिपट गई। बाल्य-काल से वृद्धावस्था-पर्यन्त—जब तक कोई 'चन्द्रवदनि मृगलोचनी' तरस खाकर, उनसे बाबा न कह दे,—उनकी रस-लोलुप सूक्ष्म-तम दृष्टि केवल नख से शिख तक, दक्षिणी ध्रुव से उत्तरी ध्रुव तक यात्रा कर सकी ! ऐसी विश्वव्यापी अनुभूति !...इसी विराट रूप का दर्शन कर ये पुण्य धनुर्धर कवि रति के महाभारत में विजयी हुए। समस्त देश की वासना के वीभत्स समुद्र को मथ कर इन्होंने कामदेव को नवजन्मदान दे दिया, वह अब सहज ही भस्म हो सकता है ?"

(२) रीतिकाव्य के बाह्य रूप के प्रति विद्रोह

"भाव और भाषा का ऐसा शुक-प्रयोग, राग और छन्दों की ऐसी एकस्वर रिमझिम, उपमा तथा उत्प्रेक्षाओं की ऐसी दादुरावृत्ति, अनुप्रास एवं तुकों की ऐसी अश्रांत उपलवृष्टि क्या संसार के और किसी साहित्य में मिल सकती है ?"

(२) खड़ी बोली को नए प्रकार से नए संस्कारों में गढ़ने का उद्योग

(क) शब्दों के रागात्मक रूप और नादात्मक सौन्दर्य को खोजने की चेष्टा।

"भिन्न-भिन्न पर्यायवाची शब्द, प्रायः संगीत-भेद के कारण एक ही पदार्थ के भिन्न-भिन्न स्वरूपों को प्रकट करते हैं। जैसे भ्रू से क्रोध की वक्रता, भृकुटि से कटाक्ष की चंचलता, भौंहों से स्वाभाविक प्रसन्नता, ऋजुता का हृदय में अनुभव होता है।"—आदि

(ख) चित्रमय भाषा के लिए आग्रह

"कविता के लिए चित्रभाषा की आवश्यकता पड़ती है, उसके शब्द सस्वर होने चाहिये, जो बोलते हों: सेब की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े; जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सकें, जो झङ्कार में चित्र, चित्र में झङ्कार हों; जिनका भाव-संगीत विद्युत्धारा [illegible] तरह रोम-रोम में प्रवाहित हो सके..."

(ग) भाव और भाषा के सामंजस्य [illegible] प्रयत्न

"भाव और भाषा का सामंजस्य, उन [illegible] स्वरैक्य ही चित्र-राग है। जैसे भाव ही भाषा में घनीभूत [illegible] गये हों; निर्झरिणी की तरह उनकी गति और रव एक बन [illegible] ये हों, छुड़ाये न जा सकते हों..."

(घ) अलङ्कारों का विशेष प्रयोग

"अलङ्कार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं; वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं।...कविता में भी विशेष अलङ्कारों, लक्षणा-व्यंजना आदि विशेष शब्द-शक्तियों तथा विशेष छन्दों के सम्मिश्रण और सामञ्जस्य से विशेष भाव की अभिव्यक्ति करने में सहायता मिलती है..."

(४) छन्द के क्षेत्र में नए प्रयोग

(क) संस्कृत के वर्णिक छन्दों की उपेक्षा

"संस्कृत का संगीत जिस तरह हिल्लोलाकार मालोपमा में प्रवाहित होता है, उस तरह हिंदी का नहीं।...हिंदी का संगीत केवल मात्रिक छन्द ही में अपने स्वाभाविक विकास तथा स्वास्थ्य की सम्पूर्णता प्राप्त कर सकता है। वर्ण-वृत्तों की लहरों में उसकी धारा अपना चंचल नृत्य...खो बैठती..."

(ख) सवैया और कवित्त की उपेक्षा

"सवैया तथा कवित्त छन्द—मुझे हिंदी की कविता के लिए अधिक उपयुक्त नहीं जान पड़ते..."

(ग) तुक के प्रति मोह

"तुक राग का हृदय है।"

'पल्लव' में पंत का यह विरोध अत्यंत सफल कविता के रूप में प्रकट हुआ है। यहाँ हमें छायावाद का प्रकृत रूप मिलता है। इस संग्रह की 'परिवर्तन' शीर्षक कविता सचमुच बेजोड़ है; परन्तु इसका कारण यह है कि कवि की दृष्टि विचित्रता पर नहीं है और वह प्राचीन परम्परा को आत्मसात करके चल रहा है। चित्र-भाषा और नादसौन्दर्य में तो सारे छायावाद-साहित्य में इस जोड़ की रचना नहीं मिलेगी—

अहे वासुकि सहस्र फन
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरंतर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षस्थल पर

शतशत फेनोच्छ्वसित, स्फीत फूत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अंबर
मृत्यु तुम्हारा गरल-दंत, कंचुक कल्पांतर,
अखिल विश्व ही विवर, वक्र-कुंडल दिङ्मंडल

'गुञ्जन' की कविताओं में कवि विषय, भाषा और अभिव्यंजना की इतनी ऊँची भूमि पर नहीं उठ सका है, 'पल्लव' के विरोधी स्वर भी दब गये हैं; परन्तु यहाँ हमें कवि जीवन-मरण जैसे चिरन्तन सत्यों के उद्घाटन में लगा दिखलाई देता है। 'पल्लव' में वह बाह्य जगत पर मुग्ध था, उसके सौन्दर्य में रहस्य और कुतूहल की खोज करता था; 'गुञ्जन' में अन्तर्मुखी हो गया है; जहाँ उसने बाह्य जगत को देखा भी है, वहाँ आत्मचिंतन के भीतर से। इसीसे 'गुञ्जन' में दर्शन और कविता का सुन्दर सामंजस्य स्थापित हो सका है। आचार्य शुक्लजी के शब्दों में—

"गुञ्जन में हम कवि का जीवन-क्षेत्र के भीतर अधिक प्रवेश ही नहीं, उसकी काव्य-शैली को अधिक संयत और व्यवस्थित पाते हैं। प्रतिक्रिया की झोंक में अभिव्यंजना के लाक्षणिक वैचित्र्य आदि के अतिशय प्रदर्शन की जो प्रवृत्ति हम 'पल्लव' में पाते हैं, वह 'गुञ्जन' में नहीं है। उसमें काव्यशैली अधिक संयत और गम्भीर हो गई है।"

पंत की परवर्ती कविताओं में अन्य अनेक प्रवृत्तियों का मेल हुआ है; परन्तु उनमें भी वह अपने पुरातन स्वर भूल नहीं सके हैं। जहाँ कवि प्रकृति और नारी-सौन्दर्य से दो-चार होता है, वहाँ उसकी वीणा के पुराने तार ही झंकृत हो उठते हैं। परन्तु इन बाद की कविताओं में वह कल्पना के शीशमहल से निकल कर जीवन के कर्मपथ पर बराबर बढ़ता चला गया है। उसने यह प्रयत्न किया है कि कला के भीतर से कर्मठ जीवन के स्वरों को

उतार-चढ़ाव चित्रित कर सके, यद्यपि अपनी ईश्वरदत्त कोमल प्रकृति के कारण वह सब कहीं सफल नहीं हो पाया है

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का काव्य-काल १९१५ से आरंभ होता है। प्रारम्भिक कविताएँ 'मतवाला' में प्रकाशित होकर 'अनामिका' नाम से संगृहीत हुईं। दूसरा संग्रह 'परिमल' था जिसमें तुकांत, भिन्न तुकांत, अतुकांत और मुक्तछन्द सभी प्रकार की रचनाएँ थीं। इस संग्रह ने 'निराला' को क्रान्तिकारी कवि के रूप में उपस्थित किया। 'निराला' की कविता पर वेदांत की गहरी छाप है। जहाँ दार्शनिकता के साथ-साथ कठिन और अव्यवहृत भाषा का प्रयोग हो गया, वहाँ वह केशवदास की तरह कठिन काव्य के प्रेत बन गये हैं। परन्तु ऐसी कविताएँ भी कम नहीं हैं जो भाव, भाषा और अभिव्यञ्जना की दृष्टि से नूतन होती हुई भी कठिन नहीं हैं। यह कोमल-कठोर, सरल-दुरूह का विचित्र मेल 'निराला' की प्रतिभा की विशेषता है। काव्य के भीतर से स्वतन्त्रता और शक्तिमत्ता का इतना सुन्दर सामञ्जस्य अन्य प्रांतीय काव्य-साहित्य में भी नहीं मिलेगा। पन्त और निराला दोनों की कविताओं में प्राचीन काव्य-रूढ़ियों के प्रति विद्रोह दिखलाई पड़ता है। कुछ चमत्कार की भावना भी है। इसीलिये उनकी प्रारम्भिक कविताओं को, जिनमें ये प्रवृत्तियाँ अत्यधिक वेग के साथ उपस्थित हैं, समझना कठिन है। वैलक्षण्य की प्रवृत्ति पन्त में 'पल्लव' के बाद अधिक नहीं मिलती। वे काव्य की सामान्य भूमि पर उतर आये। 'गुञ्जन' की कविताएँ उदाहरण-स्वरूप उपस्थित की जा सकती हैं; परन्तु निराला में यह प्रवृत्ति अब तक बनी है। इसका कारण वह विद्रोह है जिसका सामना उन्हें पग-पग पर करना पड़ा, जिसने उन्हें प्रकृत नहीं बनने दिया।

'निर्माल्य' 'एकतारा' और 'कल्पना' आदि काव्य-रचनाओं के कवि मोहनलाल महतो वियोगी रवीन्द्र के प्रभाव को हिन्दी में स्थापित करने वाले प्रमुख कवियों में से हैं। 'निर्माल्य' के परिचय में लेखक ने कहा है—"यह गीतांजलि के टक्कर का है, ऐसा कहने का हमें कोई अधिकार नहीं।" परन्तु इस उक्ति से 'गीतांजलि' का प्रभाव ही स्पष्ट होता है जो इस प्रकार की कविताओं में मुखर हो उठा है—

मैं क्या लिखता हूँ, इसका है नहीं मुझे किंचित भी ज्ञान,
अनमिल अक्षर मिलकर बन जाते हैं स्वयं पद्य या गान;
मैं तो हूँ नीरव वीणा, मुझ पर है वादक का अधिकार;
मुझे बजाता है वह जब आ अपनी इच्छा के अनुसार—
होती हैं तब व्यक्त राग-रागनियाँ मन हरने वाली;
है उसकी ही दया अचेतन को चेतन करने वाली।

छायावाद-काव्य के एक पक्ष 'कविता कविता के लिए'—वाद का आग्रह भी था। वियोगी कहते हैं—"कविता कविता के लिये ही लिखी जाती है। अत्युक्तियों और अलङ्कारों की सहायता से अपने मन की बातों को रंजित करना आवश्यक है।" इस प्रकार नवीन काव्य में कला की प्रधानता थी। इन प्रवृत्तियों में महतो ने भी महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

इन चार प्रमुख कवियों के अतिरिक्त राय कृष्णदास, माखनलाल चतुर्वेदी, लक्ष्मीनारायण मिश्र आदि कितने ही कवि ऐसे हैं जिन्होंने छायावाद-काव्य के रूप को गढ़ने में सहायता दी है। राय कृष्णदास (१९९२—) के 'साधना,' 'छायापथ', 'संलाप' 'प्रवाल' आदि गद्यकाव्य नवीन काव्य प्रवृत्तियों का ही प्रभाव हैं। 'साधना' का एक गद्यगीत इस प्रकार है—

"मैं अपनी मणिमंजूषा लेकर उनके यहाँ पहुँचा, पर उन्हें

देखते ही उनके सौन्दर्य पर ऐसा मुग्ध हो गया कि अपनी मणियों के बदले उन्हें मोल लेना चाहा। अपनी अभिलाषा उन्हें सुनाई, उन्होंने सम्मति स्वीकार करके पूछा—'किस मणि से मेरा बदला करोगे ?' मैंने अपना सर्वोत्तम लाल दिखाया। उन्होंने गर्वपूर्वक कहा—'अजी, यह तो मेरे मूल्य का एक अंश भी नहीं।' मैंने दूसरी मणि उनके सामने रखी। फिर भी वही उत्तर। तब मैंने पूछा—'मूल्य पूरा कैसे होगा ?' वह कहने लगे—'तुम अपने को दो, तब पूरा होगा।' इस गीत की केन्द्रीय भावधारा छायावाद के अदृष्ट सत्ता के प्रति लिखे गए गीतों की भावधारा से किसी भी प्रकार भिन्न नहीं है। लक्ष्मी-नारायण मिश्र ने 'अंतर्जगत्' में असीम और ससीम का सम्बन्ध निश्चित किया है—

आज बज उठी तेरे कर से वीणा मेरे मन की;
आशातीत अतिथि ! लीला, कैसी ? तेरी इस छन की ?
जागृत आत्मा हुई अचानक, जो चिर दिन की सोई;
भुला सकेगा क्या उसकी फिर इस जगती में कोई ?
जीवन-सागर के उस तट पर अपने सुन्दर जग की;
सृष्टि अनोखी की है तूने, जहाँ न रेखा पग की ?
नीचे सिंधु भर रहा आहें, हँसते नखत गगन में;
सब से दूर जल रहा दीपक, तेरे भव्य भवन में
तेरी धुँधली स्मृति के आगे झुकी विश्व की क्षमता;
भला असीम जगत यह तेरी कर सकता है समता;
सत्य कहीं होगी यदि निर्मम यह चिरपूजा मेरी;
तो देवत्व लाभ कर लेगी पावन प्रतिमा तेरी।

वह 'साधना' के उपर्युक्त गद्यगीत से भिन्न नहीं है, केवल प्रकाशन-शैली में अंतर है। इन सभी कवियों में भाषा-शैली की वक्रता

को अत्यन्त महत्त्व दिया गया था। साधारण सी बात कहने के लिए कवि इतना आयोजन इकट्ठा करता दिखलाई पड़ता है कि केन्द्रीय भावधारा गौण चित्रों के पीछे छिप जाती है। माखनलाल चतुर्वेदी 'तरुण कलिका' से कहते हैं—

 री सजनि, वनराजि की शृंगार
समय के वन मालियों की क़लम के वरदान,
डालियों, काँटों भरी के ऐ मृदुल अहसान;
मुग्ध मरुतों के हृदय के मुँदे तत्व अगाध;
चपल अलि की परम संचित गूँजने की साध

बाग की बाग़ी हवा की मानिनी खिलवाड़,
पहन कर तेरा मुकुट इठला रहा है झाड़
खोल मत निज पँखड़ियों का द्वार
री सजनि, वनराजि की शृङ्गार

आ गया वह वायु-वाही, मित्र का नव राग,
बुलबुलें गाने लगी हैं—जाग, प्यारी, जाग ?
प्रेम-प्यासे गीत गढ़ तेरा सराहें त्याग,
रागियों का प्राण है, तेरा अतुल अनुराग,
पर न वन देवी, न संपुट खोल, तू मत जाग,
विश्व के बाज़ार में मत बेच मधुर पराग !
खुली पंखड़ियाँ कि तू बे-मोल;
हाट है यह ; तू हृदय मत खोल।

इसके केन्द्र में जो भाव है, वह अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है, पर उस पर रूपक का विशाल मन्दिर खड़ा कर दिया गया है। इस प्रकार की क़विताएँ एक दो नहीं सैकड़ों की संख्या में लिखी

गई जिनमें कवि को या तो कुछ कहना ही नहीं होता था, या जो उसे कहना होता था, वह महत्त्वपूर्ण नहीं होता था। छायावाद के गौण कवियों में इस प्रकार की विशेषताएँ अपेक्षाकृत अधिक मिलेंगी। इनमें हम छायावाद को एक विशेष भाषा-शैली के रूप में ही देखते हैं, विशेष दर्शन के रूप में नहीं, जैसे प्रसाद के काव्य में। सच तो यह है कि छायावाद-काव्य की शैलियों का सभी प्रकार की कविताओं में प्रयोग हुआ। राष्ट्र-प्रेम, समाज-सुधार, प्रकृति—सभी पर इस नए ढङ्ग से लिखा गया कि जनता हठात् विद्रोही हो गई, वह नए काव्य को खिलवाड़ समझने लगी। विभिन्न कवियों ने विभिन्न प्रवृत्तियों के वशीभूत हो छायावाद की एक-एक, दो-दो विशेषताओं को लेकर अपने काव्य की रचना की। इस तरह काव्य का एक विशाल संग्रह खड़ा हो गया जो किसी एक 'वाद' के भीतर नहीं आ सकता था।

छायावाद के इन कवियों ने जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है, दुःख को प्रधानता दी थी। धीरे-धीरे उनका चिंतन आत्म-प्रधान हो गया और निराशावाद की धारा का सूत्रपात हुआ। दुःख को साहित्य के मूल सत्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया। यही समय गांधीयुग के अविर्भाव का भी है। गांधीवाद महायुद्ध के वाद से आज तक राजनीतिक क्षेत्र में प्रधानता पाता रहा है। वह दुःख, आत्मपीड़न और समझौते को स्वीकार करता है, विद्रोह और आमूल परिवर्तन को नहीं। हिन्दी काव्य के दुःखवाद और दुःख को साधना के रूप में स्वीकार करने की भावना में मूलतः कोई अंतर नहीं। 'प्रसाद'-'पंत' की निराशा कवि की निराशा थी। वाद के कुछ कवियों ने इसे दार्शनिक भित्ति देने की चेष्टा की और वे सफल भी हुए। इस प्रकार अध्यात्मवाद और आध्यात्मिक निराशावाद का जन्म

को अत्यन्त महत्त्व दिया गया था। साधारण सी बात कहने के लिए कवि इतना आयोजन इकट्ठा करता दिखलाई पड़ता है कि केन्द्रीय भावधारा गौण चित्रों के पीछे छिप जाती है। माखनलाल चतुर्वेदी 'तरुण कलिका' से कहते हैं—

 री सजनि, बनराजि की शृंगार
समय के वन मालियों की क़लम के बरदान,
डालियों, काँटों भरी के ऐ मृदुल अहसान;
मुग्ध मरुतों के हृदय के मुँदे तत्व आगाध;
चपल अलि की परम संचित गूँजने की साध

बाग की बाग़ी हवा की मानिनी खिलवाड़,
पहन कर तेरा मुकुट इठला रहा है झाड़
खोल मत निज पँखड़ियों का द्वार
री सजनि, बनराजि की शृङ्गार

आ गया वह वायु-वाही, मित्र का नव राग,
बुलबुलें गाने लगी हैं—जाग, प्यारी, जाग ?
प्रेम-प्यासे गीत गढ़ तेरा सराहें त्याग,
रागियों का प्राण है, तेरा अतुल अनुराग,
पर न बन देवी, न संपुट खोल, तू मत जाग,
विश्व के बाज़ार में मत बेच मधुर पराग !
खुली पंखड़ियाँ कि तू बे-मोल;
हाट है यह; तू हृदय मत खोल।

इसके केन्द्र में जो भाव है, वह अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है, पर उस पर रूपक का विशाल मन्दिर खड़ा कर दिया गया है। इस प्रकार की कविताएँ एक दो नहीं सैकड़ों की संख्या में लिखी

गई जिनमें कवि को या तो कुछ कहना ही नहीं होता था, या जो उसे कहना होता था, वह महत्त्वपूर्ण नहीं होता था। छायावाद के गौण कवियों में इस प्रकार की विशेषताएँ अपेक्षाकृत अधिक मिलेंगी। इनमें हम छायावाद को एक विशेष भाषा-शैली के रूप में ही देखते हैं, विशेष दर्शन के रूप में नहीं, जैसे प्रसाद के काव्य में। सच तो यह है कि छायावाद-काव्य की शैलियों का सभी प्रकार की कविताओं में प्रयोग हुआ। राष्ट्र-प्रेम, समाज-सुधार, प्रकृति—सभी पर इस नए ढङ्ग से लिखा गया कि जनता हठात् विद्रोही हो गई, वह नए काव्य को खिलवाड़ समझने लगी। विभिन्न कवियों ने विभिन्न प्रवृत्तियों के वशीभूत हो छायावाद की एक-एक, दो-दो विशेषताओं को लेकर अपने काव्य की रचना की। इस तरह काव्य का एक विशाल संग्रह खड़ा हो गया जो किसी एक 'वाद' के भीतर नहीं आ सकता था।

छायावाद के इन कवियों ने जिनका उल्लेख ऊपर हो चुका है, दुःख को प्रधानता दी थी। धीरे-धीरे उनका चिंतन आत्म-प्रधान हो गया और निराशावाद की धारा का सूत्रपात हुआ। दुःख को साहित्य के मूल सत्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया। यही समय गांधीयुग के अविर्भाव का भी है। गांधीवाद महायुद्ध के बाद से आज तक राजनीतिक क्षेत्र में प्रधानता पाता रहा है। वह दुःख, आत्मपीड़न और समझौते को स्वीकार करता है, विद्रोह और आमूल परिवर्तन को नहीं। हिन्दी काव्य के दुःखवाद और दुःख को साधना के रूप में स्वीकार करने की भावना में मूलतः कोई अंतर नहीं। 'प्रसाद'-'पंत' की निराशा कवि की निराशा थी। बाद के कुछ कवियों ने इसे दार्शनिक भित्ति देने की चेष्टा की और वे सफल भी हुए। इस प्रकार अध्यात्मवाद और आध्यात्मिक निराशावाद का जन्म

हुआ। सुश्री महादेवी वर्मा की कविताओं में इस धारा ने सर्वोच्च विकास प्राप्त किया। दुःख की काल्पनिक अनुभूति कविता क्षेत्र की रूढ़ि-सी हो गई। अस्तु कवियों में इसकी काफ़ी छीछालेदर भी हुई। जिन कवियों ने इन भावधाराओं में योग दिया उनमें महादेवी वर्मा के बाद रामकुमार वर्मा, जनार्दन झा द्विज और भगवतीचरण वर्मा महत्त्वपूर्ण हैं। इन सब का साहित्य मुख्य रूप से १९२५ के बाद हमारे सामने आया, अतः सामयिक साहित्य के अंतर्गत आ जाता है। छायावाद की विवेचना करते हुए और उनके ऐतिहासिक विकास की रूपरेखा निर्धारित करते हुए हमने इनका उल्लेख किया है।

२

प्रारंभिक रचनाएँ

(१) अनामिका, १९२३

अनामिका (१९२३) में 'निराला' की वे कविताएँ संगृहीत हैं जो 'नारायण', 'मतवाला' और 'समन्वय' में पहली वार प्रकाशित हुई थीं और जिन्होंने खड़ी वोली हिन्दी कविता में एक विशेष परिवर्तन की सूचना दी थी। उस समय इन कविताओं की विशेष प्रसिद्धि नहीं हुई; परन्तु साहित्य-समालोचकों और हिन्दी कविता की गतिविधि समझने वालों का ध्यान उनकी ओर अवश्य गया। 'भूमिका' में महादेव प्रसाद सेठ ने लिखा—"इतना मैं अवश्य कहूँगा और दावे के साथ कहूँगा कि त्रिपाठी जी ने पंचवटी-प्रसङ्ग, अधिवास तथा जूही की कली नामक कविताओं को लिख कर हिन्दी के पद्य-साहित्य में एक अभूत-पूर्व नई शैली का समावेश किया है और यदि हिन्दी का कवि-समाज इस शैली का आदर और अनुगमन करेगा तो मातृभाषा का बड़ा उपकार होगा और उसके लालित्य में एक नई वात पैदा हो जायगी।" इन नई कविताओं के लिए आचार्य पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी का प्रोत्साहन ऐसी चीज़ थी जिसका उल्लेख कृतज्ञता-पूर्वक 'निराला' जी ने वार-वार किया है। पंचवटी-प्रसंग पर उनकी सम्मति थी—

"हिन्दी वालों में ९० फ़ी सदी इस छन्द को अच्छी तरह पढ़ भी न सकेंगे। पर चीज़ नई है। अगर इसका आदर हो तो आगे भी इसी छन्द में कुछ लिखिएगा। मुझे तो रचना ललित

और भावपूर्ण जान पड़ती है।" जान पड़ता है, निराला ने काव्य को छन्द-बंधन से मुक्ति की बात आरंभ में ही सोच ली थी और वे अपनी प्रतिभा के बल पर हिन्दी कविता के स्वच्छन्दतावाद की एक नई रूढ़ि लाये। वे कहते हैं—

माँ,
जिस तरह चाहो बजाओ इस वीणा को,
यन्त्र है;
सुनो तुम्हीं अपनी सुमधुर तान;
बिगड़ेगी वीणा तो सुधारोगी बाध्य हो।

इस पहली 'अनामिका' की केवल कुछ ही कविताएँ 'परिमल' में पुनः आई हैं। वे हैं पंचवटी-प्रसंग, अधिवास, जूही की कली और 'तुम और मैं।' शेष कविताएँ कवि ने स्वयं अप्रौढ़ समझ कर छोड़ दी हैं।

यह स्पष्ट है, इन प्रारम्भिक कविताओं में कवि की प्रतिभा खुली नहीं है—वह मार्ग ढूँढ़ रहा है। एक बात जो महत्त्वपूर्ण है वह यह कि इन प्रारंभिक कविताओं पर बंगाल में बँगला कवियों और बँगला काव्य के वातावरण के बीच में रहते हुए भी कवि ने बँगला की छाप न पड़ने दी। 'अनामिका' (१९३८) में जो प्रारम्भिक कविताएँ प्रकाशित हैं वे विवेकानन्द और रवि ठाकुर की कविताओं से अनूदित हैं, या उनसे प्रभावित हैं। परन्तु कवि ने मौलिकता का आग्रह रखा है और अपने पहले प्रकाशित काव्य (अनामिका, १९२२) में उन कविताओं को छोड़ दिया है। 'गीतिका' के समर्पण में कवि ने अपने इस प्रारम्भिक काव्य-रचना-काल के संबंध में कुछ इंगित किया। पत्नी श्रीमती मनोहरादेवी के प्रति वे लिखते हैं—

"जिसकी हिन्दी के प्रकाश से, प्रथम परिचय के समय, मैं आँखें नहीं मिला सका—लजा कर हिन्दी की शिक्षा के संकल्प से, कुछ काल बाद देश से विदेश पिता के पास चला गया था और उस हीनहिन्दी प्रांत में बिना शिक्षक के, 'सरस्वती' की प्रतियाँ लेकर पद-साधना की और हिन्दी सीखी थी...." (१९३६)

इससे स्पष्ट है कि अनामिका (१९२३) में कवि के संस्कार बन भर रहे थे, इसी से इन थोड़ी-सी कविताओं में बड़ा अटपटापन है। 'जूही की कली' और 'तू और मैं' शीर्षक दो कविताओं को छोड़ कर शेष सब उस श्रेणी की नहीं हैं जो 'निराला' की श्रेणी है। परन्तु इस संग्रह में भी निराला के दार्शनिक अभ्यास के स्वर ऊँचे हो उठे हैं। 'पंचवटी-प्रसंग, में पंचवटी की कथा कवि के लिए इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है जितना वेदांत के विचारों को कथा और वर्णन में गँथ देना। इसी से सारे कथानक में रस की सृष्टि कहीं नहीं हो पाई है। जो बात उभर कर सामने आती है, वह है लेखक (कवि) की दर्शन-चिन्ता। कवि का सम्बन्ध रामकृष्ण मिशन से रहा है और वर्षों स्वामी शारदानन्द प्रभृति संन्यासियों के साथ रहकर उसने दर्शन और धर्म का अध्ययन किया है। इसलिए उसके काव्य में दर्शन का पुट होना आवश्यक था। परन्तु इन दार्शनिक विचारधाराओं के बीच में 'प्रेम' पर लिखी यह पंक्तियाँ छायावाद के कवियों के नए दृष्टिकोण को सूचित करती हैं—

छोटे से घर की लघु सीमा में
बँधे हैं क्षुद्रभाव, यह सच है प्रिये!
प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है
सदा ही निस्सीम भू पर।
प्रेम की महोर्मि-माला तोड़ देती क्षुद्र ठाट

उसमें संसारियों के सारे क्षुद्र मनोवेग
तृण सम बह जाते हैं।
हाथ मलते भोगी, धड़कते हैं कलेजे उन कायरों के
सुन सुन प्रेम-सिंधु का सर्वस्व-त्याग-गर्जन घन।
अट्टहास हँसता प्रेम-पारावार
देख भयकातर की दृष्टि में
प्रार्थना की मलिन रेखा;
तट पर चुपचाप खड़ा हाथ जोड़ मोह-मुग्ध
डरता है गोते लगाते प्रेम-सागर में;
जीवनाशा पैदा करती है संदेह;
जिससे संकोच पाता सारा अंग;
याद कर प्रेम-बड़वाग्नि की प्रचण्ड ज्वाला
फेरता है पीठ वह;
दिव्य देहधारी ही कूदता है इसमें प्रिये!
पाता है प्रेमामृत, पीकर अमर होता है!

ऊपर की 'पंक्तियों' को प्रसाद के 'प्रेमपथिक' की कुछ पंक्तियों से मिलाने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि हिन्दी के ये नवीन कवि रीतिकालीन विलासिता और द्विवेदी-युगीन जड़ता के सम्मुख हिन्दी-प्रेम-भावना को स्वास्थ्य और शक्ति की ओर बढ़ा रहे थे। प्रसाद कहते हैं—

इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रांत-भवन में टिक रहना
किंतु चले जाना उस हद तक जिसके आगे राह नहीं

अपनी एक अन्य प्रौढ़ कविता—'प्रेम के प्रति'—में कवि प्रेम की इसी रहस्यमयता और आनन्दवादिता को आगे बढ़ाता है—

प्रेम, सदा ही तुम असूत्र हो
उर-उर के हीरों के हार

गूँथे हुए प्राणियों को तुम
गूँथे न कभी, सदा ही सार

इसी प्रकार की भावना इन प्रारंभिक कविताओं में भी मिलती है। 'सच्चा प्यार' शीर्षक कविता में रूपक बाँध कर कवि इसी अतीन्द्रिय प्रेम की बात कहता है। प्रेमी को प्रियतमा की याद आती है—परन्तु साथ ही आँखें आँसुओं में बरस पड़ती हैं। इसी से तो प्रेमी निःसहाय हो जाता है। वह कहता है—

तुम्हारी सुधि की अंतिम साँस
लोकलज्जा का पर्दा फाड़,
खेलने चली प्रीति-अभिसार
चपल छिपती पलकों की आड़
पहुँचते ही आँखों के पास
लगा मेघों का झोंका एक,
विरह-कृश होती चकनाचूर
अगर तुम लेते उसे न देख

परन्तु जैसा हमने अभी कहा है, निराला की प्रारम्भिक कविताएँ दर्शन और धर्म की भूमि पर ही अधिक चलती हैं। मुक्ति और भक्ति के द्वैत से तो प्रत्येक धर्म-जिज्ञासु परिचित ही है। दर्शन-वादी—वेदांती—होते हुए भी निराला भक्ति की सर्वोपरता सिद्ध करते हैं। लक्ष्मण-सीता के प्रति चिन्ता करते हुए कहते हैं—

मुक्ति नहीं चाहता मैं, भक्ति रहे, काफी है
सुधाकर की कला में अंशु यदि बन कर रहूँ
तो अधिक आनन्द है
अथवा यदि होकर चकोर, कुमुद नैशगंध
पीता रहूँ सुधा इन्दु-सिन्धु से बरसती हुई
तो सुख मुझे अधिक होगा ?

इसमें सन्देह नहीं, आनन्द बन जाना हेय है,
श्रेयस्कर आनन्द पाना है।

(पंचवटी-प्रसंग)

परन्तु इस कविता में जो माता (सीता) के प्रति भक्तिवाद मिलता है, वह स्पष्ट ही बंगाल प्रदेश से उधार लिया गया है। हिन्दी काव्य में शक्ति की, माँ के रूप में उपासना के केवल दो-चार पद मिलते हैं, वह भी मिथिला प्रदेश के कवि विद्यापति के। इस प्रसंग के चौथे प्रकरण में कवि ने प्रलय, सृष्टि, भक्तियोग, कर्म, ज्ञान जैसे अनेक कठिन विषयों को कविता के माध्यम से पाठक तक पहुँचाने की चेष्टा की है; परन्तु वह सफल नहीं हुआ है। रामचरितमानस का कवि पाठक को एक बड़ी उन्नत मनोभूमि पर ले जाता है, वह उत्तरकांड की कठिन दर्शन-धर्म-व्याख्याओं के लिए तैयार रहता है। परन्तु यहाँ ऐसी कोई बात नहीं है। यहाँ प्रलय से तात्पर्य व्यक्तिगत प्रलय से है। कवि का कहना है कि मन, बुद्धि और अहंकार से लड़ता हुआ, जब मनुष्य (साधक) अपने ही भीतर प्रकृति के सारे उपकरण सूर्य-चन्द्र-ग्रह-तारे देखने लगता है, जब वह भीतर ही भीतर ऊपर उठता हुआ अष्टसिद्धि को भी पार कर जाता है, तब अहङ्कार के पार साधना के अंतिम सोपान पर खड़ा वह प्रलय (आत्म-लय) का अनुभव करता है। वास्तव में स्थूल रूप से देखें, तो भी प्रलय और सृष्टि का कोई अर्थ नहीं। वास्तव में दोनों में सूक्ष्म और स्थूल का अंतर है। स्थूल जगत् दृश्यमान् जगत है। प्रलय के बाद यही स्थूल जगत् सूक्ष्म रूप में रहता है। यही भेद है। तब प्रकृति के तीनों गुण समष्टि के सूक्ष्म भाव में बदल जाते हैं। इसी प्रकार का एक समन्वयात्मक निरूपण भक्ति-योग-कर्म-ज्ञान के संबंध में है। कवि कहते हैं—

भक्तियोग-कर्म-ज्ञान एक ही हैं
यद्यपि अधिकारियों के निकट भिन्न दीखते हैं।
एक ही है दूसरा नहीं है कुछ—
द्वैत-भाव ही है भ्रम।
तो भी प्रिये!
भ्रम के भीतर से भ्रम के पार जाना है।
मुनियों ने मनुष्यों के मन की गति
सोच ली थी पहले ही।
इसीलिए द्वैत-भाव-भावुकों में
भक्ति की भावना भरी।
प्रेम के पिपासुओं को
सेवाजन्य प्रेम का—
जो अति ही पवित्र है—
उपदेश दिया।
सेवा से चित्तशुद्धि होती है।
शुद्ध चित्तात्मा में उगता है प्रेमाङ्कुर।
चित्त यदि निर्मल नहीं
तो वह प्रेम व्यर्थ है—
पशुता की ओर है वह खींचता मनुष्यों को।

जो हो, पंचवटी-प्रसङ्ग की महत्ता यही थी कि इस कविता में कवि पहली वार शक्तिशाली ढङ्ग से लयात्मक मुक्तछन्द लेकर उपस्थित हुआ—उसका दार्शनिक मतवाद कोई बड़े महत्त्व की चीज़ नहीं था। यह छन्द ही एक क्रांतिकारी नई प्रवृत्ति के रूप में हिन्दी में आया। इसमें जो नारी-सौन्दर्य का चित्रण है, वह भी कोई नया नहीं है—वही रीति-कालीन नख-शिख-प्रणाली मिलती है—

बीच-बीच पुष्प गुँथे किंतु तो भी बन्धहीन
लहराते-केशजाल जलद श्याम से क्या कभी
समता कर सकती है
नील-नभ-तडित्तारकाओं का चित्र ले
क्षिप्रगति चलती अभिसारिका यह गोदावरी ?—
हरग़िज़ नही ।
कवियों की कल्पना तो
देखती ये भौएँ बालिका सी खड़ी—
छूटते हैं जिनसे आदि रस के सम्मोहन शर—
वशीकरण—मारण—उच्चाटन भी कभी-कभी ।
हारे हैं सारे नेत्र नेत्रों को हेर-हेर ।
विश्व भर को मदोन्मत्त करने की मादकता
भरी है विधाता ने इन्हीं दोनों नेत्रों में ।
मीन-मदन फाँसने की बंसी सी विचित्र नासा,
फूल-दल-तुल्य कोमल लाल ये कपोल गोल,
चिबुक चारु और हँसी बिजली सी,
योजन-गंध-पुष्प जैसा प्यारा यह मुखमण्डल,
फैलते पराग दिग्-मण्डल आमोदित कर,
खिंच आते भौंरे प्यारे ।
देख यह कपोत कण्ठ—
बाहु वल्ली कर-सरोज—
उन्नत उरोज पीन—क्षीण कटि—
नितम्ब भार—चरण सुकुमार—
गति मंद मंद,
छूट जाता धैर्य ऋषि मुनियों का,
देवों-भोगियों की तो बात ही निराली है ।

'लज्जिता' शीर्षक अंतिम कविता में कवि रवि बाबू की इसी ...

की अध्यात्म की छाप लगी प्रेम कविताओं से प्रभावित है। नायक के पास नायिका अभिसार करने का साहस करती है। सारी रात उसके साथ विहार करती है—परन्तु विहार भी कहाँ कर पाती है—विलास-उपवन में आते ही, प्रेम-संगीत की पहली ही झंकार के साथ अभिसारिका के नेत्र बंद हो जाते हैं—शोक, वह सोती रहती है; रात चली जाती है। प्रभात हो जाता है। अब उसे लज्जा है—कहीं लोग उसकी वांछा को देख न लें। कवि कहता है—

> विखर गये ये बाल देख सरसिज करते हैं व्यङ्ग,
> खड़े हुए ये हरसिंगार भी क्या न जमाते रङ्ग ?
> लाज ने पकड़ लिए है पैर,
> करूँगी अब न बाग़ की सैर,
> जान गये सब लोग, किया यह छल क्यों मेरे साथ ?
> मुझे क्यों नहीं जगाया नाथ !

परंतु सहृदयी पाठक समझ जाता है यह अभिसारिका जीवात्मा है, नायक ब्रह्म है। जीवात्मा परमात्मा की ओर अग्रसर होती है, तब माया-मोह की निद्रा में उसे डाल देती है—उसका अध्यात्म-साधन तभी समाप्त हो जाता है। द्विवेदी-युग में इस प्रकार के गंभीर विषयों पर कुछ भी नहीं लिखा गया था। कवि पृथ्वी पर उतर आया था। इसीलिए रूपकों में बँधी-खुली यह जीवात्मा परमात्मा की बात—जब संतों-भक्तों की ओर से नहीं साधारण गृहस्थ कवियों की ओर से आई, तब वह समझ ही नहीं पाया। 'तुम और मैं' और 'जूही की कली' शीर्षक कविताओं में कवि ने अध्यात्म-संबंध के विषय पर अधिक सफ़ाई से लिखा है और वे अब भी कवि की श्रेष्ठतम कविताओं में स्थान पाती हैं। इन कविताओं में हमें कवि की प्रतिभा के पहले दर्शन

होते हैं। यहीं वह पहली बार उत्कृष्ट कवि के रूप में हमारे सामने आता है। हो सकता है, 'तुम और मैं' शीर्षक कविता रवि बाबू की इसी विषय की कविता से अनुप्राणित हो; परंतु है वह मौलिक—नितांत मौलिक वस्तु! कवि की इन दो प्रारंभिक कविताओं ने उसे हिंदी पाठकों और कवि-सम्मेलनों के श्रोताओं में लोकप्रिय कर दिया।

(२) अनामिका, १९३८ में पहली बार प्रकाशित कुछ प्रारंभिक रचनाएँ

अनामिका (१९२३) और परिमल (१९३०) के बीच की कुछ रचनाएँ निराला ने अपने प्रौढ़ संग्रह 'अनामिका' (१९३८) में प्रकाशित की हैं। इन रचनाओं में उनके आरंभ काल की प्रवृत्तियों पर विशेष प्रकाश पड़ता है। छायावाद-काव्य के मूल प्रभावों के समझने के लिए भी कविताएँ महत्त्वपूर्ण हैं। अधिकांश कविताएँ १९२३, २४ की हैं। एकाध १९२७ की भी। परन्तु इन कविताओं को अनामिका (१९२३) और परिमल (१९३०) के बीच की कड़ी मान लेने से काम चल जायेगा।

ये प्रारंभिक कविताएँ अधिकांश तुकांत मुक्त छन्द में हैं। जान पड़ता है, कवि छंद के विषय में अपना मार्ग ढूँढ़ रहा है। इन आरम्भ की कविताओं में कवि बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग करता है। बाद की रचनाओं में उसने धीरे-धीरे इस सरल काव्य-भाषा से हटकर एक 'प्रेतभाषा' (कठिन काव्य-भाषा) का निर्माण कर लिया, यह चिंत्य बात है। प्रसाद और पंत की प्रारम्भिक कविताओं में इतनी 'प्रसादता' नहीं है। इतर प्रान्त के बीच में पले, हिन्दी की काव्य-परंपरा से अपरिचित निराला महज बोलचाल की भाषा को लेकर चले तो कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं है। 'प्रलाप' शीर्षक कविता स्वयं कविता

को संबोधन करके लिखी गई है। इससे कवि की उस समय की प्रवृत्तियों पर प्रकाश पड़ेगा। कवि कहता है—

अगर वह तू है तो आ चली
विहगगण के इस कलकूजन में—
लताकुञ्ज में मधुपपुञ्ज के 'गुनगुनगुन' गुञ्जन में;
क्या सुख है यह कौन कहे सखि,
निर्जन में इस नीरव मुख चुम्बन में ?
अगर बतायेगी तू पागल मुझको
तो उन्मादिनी कहूँगा मैं भी तुझको;
अगर कहेगी तू मुझको 'यह है मतवाला निरा'
तो तुझे बताऊँगा मैं भी लावण्य-माधुरी मदिरा;
अगर कभी देगी तू मुझको कविता का उपहार
तो मैं भी तुझे सुनाऊँगा भैरव के पद दो चार !
शांति—सरल मन की तू कोमल कांति—
यहाँ अब आ जा,
प्याला-रस कोई हो भरकर
अपने ही हाथों तू मुझे पिला जा,
नस नस में आनन्द-सिंधु की धारा, प्रिये, बहा जा !
ढीले हो जायें ये सारे बंधन,
होये सहज चेतना लुप्त,
भूल जाऊँ अपने को, कर दे मुझे अचेतन।
भूलूँ मैं कविता के छंद
अगर कहीं से आए सुर-संगीत—

एक दूसरी कविता 'खँडहर के प्रति' में कवि भारत को खंडहर के रूप में देखता है—

खँडहर ! खड़े हो तुम आज भी ?
अद्भुत अज्ञात उस पुरातन के मलिन साज !

विस्मृति की नींद से जगाते हो क्यों हमें—
करुणाकर, करुणामय गीत सदा गाते हुए ?
पवन-संचरण के साथ ही
परिमल-पराग-सम अतीत की विभूति रज—
आशीर्वाद पुरुष पुरातन का
भेजते सब देशों में;
क्या है उद्देश्य तव ?

१९२४ की लिखी हुई ५-७ कविताएँ इस संग्रह में और हैं जिनसे हमें कवि की आदि धारणाओं एवं भावनाओं के समझने में बड़ी सहायता मिलती है। कवि के प्रिय विषय हैं (१) कविता (२) प्रेम (३) देशप्रेम (४) दुख-सुख की अनुभूतियाँ। अभी वह दर्शन की जटिल गलियों से दूर हैं, यद्यपि पंचवटी-प्रसङ्ग (अनामिका १९२३) में वह इस ओर एक विशेष प्रयत्न कर चुका है। 'क्या गाऊँ' कविता पर रवि बाबू की गीतांजलि के एक गीत का प्रभाव स्पष्ट है। निराला भी रवि बाबू के गीत के इस भाव को लेकर चलते हैं—

क्या गाऊँ ?—माँ ! क्या गाऊँ ?
गूँज रही है जहाँ राग-रागिनियाँ,
गाती हैं किन्नरियाँ—कितनी परियाँ—
कितनी पंचदशी कामिनियाँ;
वहाँ एक यह लेकर वीणा दीन
तन्त्री क्षीण,—नहीं जिसमें कोई झंकार नवीन,
रुद्ध कंठ का राग अधूरा कैसे तुझे सुनाऊँ ?—
माँ ! क्या गाऊँ ?
छाया है मंदिर में तेरे यह कितना अनुराग !
चढ़ते हैं चरणों पर कितने फूल
मृदुदल सरस पराग;

गन्ध-मोद-मद पीकर मन्द समीर
शिथिल चरण जब कभी बढ़ाती आती,
सजे हुए बजते उसके अधीर नूपुर-मञ्जीर
वहाँ एक निर्गंध कुसुम उपहार,
नहीं कहीं जिसमें पराग-सञ्चार सुरभि-सँभार
कैसे भला चढ़ाऊँ ?—
माँ क्या गाऊँ ?

उन्होंने प्रिया-स्वरूप में कविता को ही वरण कर लिया है. इसीसे वे 'प्रिया से' शीर्षक कविता में लिखते हैं—

मेरे इस जीवन की है तू सरस साधना कविता,
मेरे तरु की है तू कुसुमित प्रिये कल्पना-लतिका;
मधुमय मेरे जीवन की प्रिय है तू कमल-कामिनी,
मेरे कुञ्ज-कुटीर-द्वार की कोमल चरण-गामिनी;
नूपुर मधुर बज रहे तेरे,
सब शृङ्गार सज रहे तेरे,

अलक-सुगंध मन्द मलयानिल धीरे-धीरे ढोती,
पथश्रांत तू सुप्त कांत की स्मृति में चलकर सोती।
कितने वर्णों में, कितने चरणों में तू उठ खड़ी हुई,
कितने बन्दों में, कितने छन्दों में तेरी लड़ी गई,
कितने ग्रन्थों में, कितने पंथों में, देखा, पढ़ी गई

तेरी अनुपम गाथा,
मैंने वन में अपने मन में
जिसे कभी गाया था।

मेरे कवि ने देखे तेरे स्वप्न सदा अविकार,
नहीं जानती क्यों तू इतना करती मुझको प्यार!

तेरे सहज रूप से रँगकर
झरे गान के मेरे निर्झर,
भरे अखिल सर,
स्वर से मेरे सिक्त हुआ संसार !

'प्रगल्भ प्रेम' शीर्षक एक अन्य कविता में कवि अपनी कविता-प्रेयसी से 'बन्धनमय छन्दों की छोटी राह' छोड़कर नये भावों के प्रशस्त राजपथ पर आने की प्रार्थना करता है—

आज नहीं है मुझे और कुछ चाह,
अर्धविकच इस हृदय-कमल में आ तू
प्रिये, छोड़ कर बन्धनमय छन्दों की छोटी राह !
गजगामिनि, यह पथ तेरा संकीर्ण,
कंटकाकीर्ण,
कैसे होगी पार ?
काँटों में अंचल के तेरे तार निकल जायेंगे
और उलझ जायेगा तेरा हार
मैंने अभी अभी पहनाया
किन्तु नजर भर देख न पाया—कैसा सुन्दर आया ।
मेरे जीवन की तू, प्रिये, साधना,
प्रस्तरमय जग में निर्झर बन
उतरी रसाराधना ।
मेरे कुञ्ज कुटीर-द्वार पर आ तू
धीरे धीरे कोमल चरण बढ़ाकर
ज्योत्स्नाकुल सुमनों की सुरा पिला तू
प्याला शुभ्र करों का रख अधरों पर !
बहे हृदय में मेरे, प्रिय, नूतन आनन्द प्रवाह,

सकल चेतना मेरी होये लुप्त
और जग जाये पहली चाह !

यह आरंभिक कविताएँ अधिकांश में १९२४ से १९२७ तक की कविताएँ हैं। अधिकांश कविताओं में कवि असमतुकांत छंद का प्रयोग कर रहा है। समतुकान्त छंदों में लिखी हुई कविताएँ दो चार ही मिलेंगी। 'चुम्बन' ('२३) और 'अनुताप' ('२४) शीर्षक कविताएँ इसी श्रेणी की हैं। इन प्रारंभिक कविताओं की विशेषता यह है कि कवि सीधे-सरल ढंग से प्रसादपूर्ण रीति से अपनी भावनाओं को हमारे सामने रख देता है। 'चुम्बन' कविता इस प्रकार है—

लहर रही शशि किरण चूम निर्मल यमुना जल,
चूम सरित की सलिल राशि खिल रहे कुमुददल,
कुमुदों के स्मिति-मंद खुले वे अधर चूमकर
बही वायु स्वच्छन्द, सकल पथ घूम-घूम कर,
है चूम रही इस रात को वही तुम्हारे मधु अधर
जिनमें हैं भाव भरे हुए सकल-शोक-संताप हर।

'अनुताप' शीर्षक कविता एक विशेष प्रकार के ढंग के लिए महत्त्वपूर्ण है। कवि भाव-चित्रों को इकट्ठा करता हुआ प्रभाव को बटोर कर अपने लक्ष्य (विचार) की ओर बढ़ता है—

जहाँ हृदय में बालकेलि की कला-कौमुदी नाच रही थी,
किरण-बालिका जहाँ विजन-उपवन-कुसुमों को जाँच रही थी,
जहाँ वसन्ती कोमल-किसलय-वलय सुशोभित कर बढ़ते थे,
जहाँ मंजरी-जय-किरीट वनदेवी की स्तुति कवि पढ़ते थे,
जहाँ मिलन-शिञ्जन-मधुगुञ्जन युवक-युवति-जन-मन हरता था,
जहाँ मृदुल पथ पथिक जनों की हृदय खोल सेवा करता था,

तेरे सहज रूप से रँगकर
झरे गान के मेरे निर्झर,
भरे अखिल सर,
स्वर से मेरे सिक्त हुआ संसार !

'प्रगल्भ प्रेम' शीर्षक एक अन्य कविता में कवि अपनी कविता-प्रेयसी से 'बन्धनमय छन्दों की छोटी राह' छोड़कर नये भावों के प्रशस्त राजपथ पर आने की प्रार्थना करता है—

आज नहीं है मुझे और कुछ चाह,
अर्धविकच इस हृदय-कमल में आ तू
प्रिये, छोड़ कर बन्धनमय छन्दों की छोटी राह !
गजगामिनि, यह पथ तेरा संकीर्ण,
कंटकाकीर्ण,
कैसे होगी पार ?
काँटों में अंचल के तेरे तार निकल जायेंगे
और उलझ जायेगा तेरा हार
मैंने अभी अभी पहनाया
किन्तु नजर भर देख न पाया—कैसा सुन्दर आया।
मेरे जीवन की तू, प्रिये, साधना,
प्रस्तरमय जग में निर्झर बन
उतरी रसाराधना।
मेरे कुञ्ज कुटीर-द्वार पर आ तू
धीरे धीरे कोमल चरण बढ़ाकर
ज्योत्स्नाकुल सुमनों की सुरा पिला तू
प्याला शुभ्र करों का रख अधरों पर !
बहे हृदय में मेरे, प्रिय, नूतन आनन्द प्रवाह,

सकल चेतना मेरी होये लुप्त
और जग जाये पहली चाह !

यह आरंभिक कविताएँ अधिकांश में १९२४ से १९२७ तक की कविताएँ हैं। अधिकांश कविताओं में कवि असमतुकांत छंद का प्रयोग कर रहा है। समतुकान्त छंदों में लिखी हुई कविताएँ दो चार ही मिलेंगी। 'चुम्बन' ('२३) और 'अनुताप' ('२४) शीर्षक कविताएँ इसी श्रेणी की हैं। इन प्रारंभिक कविताओं की विशेषता यह है कि कवि सीधे-सरल ढंग से प्रसादपूर्ण रीति से अपनी भावनाओं को हमारे सामने रख देता है। 'चुम्बन' कविता इस प्रकार है—

लहर रही शशि किरण चूम निर्मल यमुना जल,
चूम सरित की सलिल राशि खिल रहे कुमुददल,
कुमुदों के स्मिति-मंद खुले वे अधर चूमकर
बही वायु स्वच्छन्द, सकल पथ घूम-घूम कर,
है चूम रही इस रात को वही तुम्हारे मधु अधर
जिनमें हैं भाव भरे हुए सकल-शोक-संताप हर।

'अनुताप' शीर्षक कविता एक विशेष प्रकार के ढंग के लिए महत्त्वपूर्ण है। कवि भाव-चित्रों को इकट्ठा करता हुआ प्रभाव को बटोर कर अपने लक्ष्य (विचार) की ओर बढ़ता है—

जहाँ हृदय में बालकेलि की कला-कौमुदी नाच रही थी,
किरण-बालिका जहाँ विजन-उपवन-कुसुमों को जाँच रही थी,
जहाँ वसन्ती कोमल-किसलय-वलय सुशोभित कर बढ़ते थे,
जहाँ मंजरी-जय-किरीट वनदेवी की स्तुति कवि पढ़ते थे,
जहाँ मिलन-शिञ्जन-मधुगुञ्जन युवक-युवति-जन-मन हरता था,
जहाँ मृदुल पथ पथिक जनों की हृदय खोल सेवा करता था,

आज उसी जीवनवन में घन अंधकार छाया रहता है,
दमनदाह से आज, हाय, वह उपवन मुरझाया रहता है।

यह आश्चर्य की बात है कि जिस कवि ने इस सरल, प्रवाहमयी हिन्दी से लिखना शुरू किया, उसका अंत एकदम 'कूटों' में हुआ। सामान्य पठन-पाठन की खड़ी हिन्दी को काव्य में दैनिक जीवन के पुट के साथ पहली बार निराला के काव्य में ही देखा गया। जान पड़ता है, १९२७ के लगभग निराला के काव्य को किसी दुःख ने इतना झकझोर दिया कि वह अवसाद से भर गया। कवि कह उठता है—

मृत्यु-निर्वाण प्राण-नश्वर
कौन देता प्याला भर भर! (१९२५)

जहाँ प्राण नाशवान है, वहाँ मृत्यु ही एकमात्र अमरता है, निर्वाण है। तब यह मृत्यु शाप नहीं—यह तो वरदान है। कौन-सा है वह उपकारी देव जो मनुष्य की मृत्यु को वाधाओं के पार अमरता के महादेश में ले जाता है। परन्तु 'निराला' का वलवान स्वर इस अवसाद से ऊपर उठा है। हाँ, उसके विश्वासों में अपनी असफलताओं के कारण स्पष्टता आ गई है। कवि कहता है—

जीवन चिरकालिक क्रन्दन।
मेरा अन्तर वज्रकठोर,
देना जी भरसक झकझोर,
मेरे दुख की गहन अन्ध
तम निशि न कभी हो भोर,
क्या होगी इतनी उज्ज्वलता—
इतना वन्दन—अभिनन्दन? (हताश, १९२७)

आरम्भिक काल की ये अधिकांश कविताएँ केवल ऐतिहासिक महत्त्व रखती हैं। परन्तु इन पहली कविताओं में भी कुछ

ऐसी हैं जिनका कुछ महत्त्व अवश्य रहेगा। ये काव्य की दृष्टि से पुष्ट हैं और निराला के काव्य का विकास-क्रम समझने के लिए उन्हें सामने रखना आवश्यक है। इनमें पहली कविताएँ वे हैं जो रवीन्द्रनाथ या विवेकानन्द के काव्य का हिन्दी अनुवाद हैं। इस प्रकार की कविताएँ हैं— ज्येष्ठ ('वैशाख' रवीन्द्रनाथ, १९२४), कहाँ देश है ('निरुद्देश्य यात्रा' रवीन्द्रनाथ, १९२४), क्षमा-प्रार्थना (रवीन्द्रनाथ, १९२४), सखा के प्रति ('सखार प्रति', विवेकानन्द, १९२६), नाचे उस पर श्यामा, (नाचुक ताहाते श्यामा, विवेकानन्द १९२४), गाता हूँ गीत मैं तुम्हीं को सुनाने को ('गाइ गीत सुनाते तोमाय', विवेकानन्द, १९२४)। इन दोनों बँगला कवियों का प्रभाव निराला के काव्य पर बराबर घना रहा; परन्तु निराला ने उस प्रभाव को आत्मसात कर लिया। ऐसे स्थल बहुत कम मिलेंगे, जहाँ उनके भाव उपरोक्त कवियों की प्रतिध्वनि मात्र हैं। 'राम की शक्ति पूजा' (१९३६) पर माइकेल मधुसूदन के मेघनाद-वध का प्रभाव भी लक्षित है। अतः स्पष्ट है, आधुनिक हिन्दी काव्य में जो 'छायावाद' के नाम से प्रसिद्ध है, उसपर सीधे तौर से बँगला काव्य का प्रभाव निराला की रचना द्वारा आया। परन्तु निराला के व्यक्तित्व की सजीवता और मौलिकता ने इस प्रभाव को कहीं भी आगे नहीं बढ़ने दिया। स्वयं उनके काव्य में जो रहस्यवादिता है वह 'निरुद्देश्य यात्रा' जैसी रोमांटिक कविताओं और गीतांजलि-जैसी रहस्यवादी कविताओं की रहस्यवादिता से भिन्न एक नए प्रकार की वस्तु है। फिर भी मूल स्रोतों की एकदम उपेक्षा नहीं की जा सकती। दूसरे प्रकार की कविताएँ 'यहीं' (१९२४ 'दिल्ली' (१९२४) और 'रेखा' (१९२७) हैं। इन कविताओं में हमें पहली बार निराला की तीन ऐसी रचनाएँ मिलती हैं जिन्हें हम प्रौढ़ कह सकते हैं। 'यहीं' उनकी एक अन्य प्रसिद्ध कविता

'यमुना के प्रति' की याद दिलाती है। यमुना के किनारे पर कवि बीती हुई प्रेम-कथाओं की याद करता है जिसमें 'प्रेम को प्लावित करने की शक्ति' है। यहाँ हमें स्वच्छन्द प्रेम-सौन्दर्य के पहली बार चित्र मिलते हैं—

अधरों के प्रान्तों पर खेलती रेखाएँ
सरस तरङ्ग-भङ्ग लेती-हुई हास्य की।
बङ्किम कर ग्रीवा
बाहु-बल्लरियों को बढ़ा कर
मिलनमय चुम्बन की कितनी वे प्रार्थनाएँ
बढ़ती थीं सुन्दर के समाराध्य मुख की ओर
तृप्तिहीन तृष्णा से।
कितने उन नयनों ने
प्रेम-पुलकित होकर
दिये थे दान यहाँ
मुक्त हो मान से!
कृष्णा घन अलकों में
कितने प्रेमियों का यहाँ पुलक समाया था!

'दिल्ली' में 'जागो फिर एक बार' और 'शिवाजी का पत्र' जैसी युग-प्रवर्तक कविताओं की ध्वनि सुनाई पड़ती है। परन्तु 'वीर' से अधिक 'शृङ्गार' का ही स्वर इन कविताओं में बोलता है। कवि पूछता है—

क्या यह वही देश है
संध्या की स्वर्णवर्ण किरणों में
दिग्वधू अलस हाथों से
थी भरती जहाँ प्रेम की मदिरा,

पीती थीं वे नारियाँ
बैठी झरोखे में उन्नत प्रासाद के ?
बहता था स्नेह-उन्माद-नस-नस में जहाँ
पृथ्वी की साधना के कमनीय अंगों में ?
ध्वनिमय ज्यों अंधकार,
दूरगत सुकुमार,
प्रणयियों की प्रिय कथा
व्याप्त करती थी जहाँ
अंबर का अंतराल ?
आनन्दधारा बहती थी शत लहरों में
अधर के प्रान्तों में;
अतल हृदय से उठ
बाँधे युग बाहुओं के
लीन होते थे जहाँ अन्तहीनता में मधुर ?—
अश्रु बह जाते थे
कामिनी के कोरों से
कमल के कोषों से प्रात की ओस ज्यों,
मिलन की तृष्णा से फूट उठते थे फिर,
रँग जाता नया राग ?—
केश-सुख-भार रख मुख प्रिय स्कंध पर
भाव की भाषा से,
कहती सुकुमारियाँ थीं कितनी ही बातें जहाँ
रातें विरामहीन करती हुई ?—
प्रिया की ग्रीवा कपोत बाहुओं से घेर
मुग्ध हो रहे थे जहाँ प्रियमुख अनुराग-मय ?

कवि का यह चित्र तो एकदम नवीन है और आज के यथार्थवाद के युग में भी प्रशंसनीय होगा—

आज वह 'फिरदौस'
सुनसान है पड़ा ।
शाही दीवान आम स्तब्ध है हो रहा,
दुपहर को, पार्श्व में,
उठता है झिल्ली रव,
बोलते हैं स्यार रात यमुना-कछार में,
लीन हो रहा है रव
शाही अंगनाओं का
निस्तब्ध मीनार,
मौन हैं मकबरे !

इन कविताओं के अतिरिक्त 'रेखा' शीर्षक एक कविता में कवि ने यौवनागम का सुन्दर चित्रण किया। 'प्रसाद' की 'प्रलय की छाया में' कविता और 'रेखा' में बहुत कुछ भावसाम्य है और वे दोनों काव्य की एक नई दिशा की ओर संकेत करती हैं। अज्ञात-यौवना का आधुनिक ढंग का वर्णन देखिये—

प्रतिमा सौन्दर्य की
हृदय के मंच पर
आई न थी तब भी
पत्र-पुष्प-अर्घ्य ही
सञ्चित था हो रहा
आगम प्रतीक्षा में,—
स्वागत की वन्दना ही
सीखी थी हृदय ने ।
उत्सुकता, वेदना,
भीति, मौन, प्रार्थना
नयनों की नयनों से,
सिञ्चन सुहाग—प्रेम,

दृढ़ता चिबुक की,
अधरों की विह्वलता,
भ्रू कुटिलता, सरल हास,
वेदना-कण्ठ में,
मृदुता हृदय में,
काठिन्य वक्षस्थल में,
हाथों में निपुणता,
शैथिल्य चरणों में।
दीखी नहीं तब तक
एक ही मूर्ति में
तन्मय असीमता।

आधुनिक पाठक भले ही इस सौन्दर्य को एकदम नवीन समझ कर आश्चर्य-विभोर हो जायें, शास्त्रज्ञ जानता है, इस प्रकार की कविता प्राचीन नारी-विषयक धारणाओं का नवीन मनोवैज्ञानिक रूप-मात्र है। जो हो, कवि नवीनता की ओर अग्रसर हुआ है और उसने शास्त्र के बँधे-तुले खाँचों से बाहर निकल कर एक नई सौन्दर्य-सृष्टि जगानी चाही है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि निराला का प्रारंभिक काव्य १९२३-२७ तक प्रकाश में आता है। परिमल (प्रकाशित, १९३०) में इस काल की कितनी ही कविताएँ हैं। परन्तु भाषा और भाव में वे उन कविताओं से प्रौढ़ हैं जो १९२३ वाली 'अनामिका' और १९३८ वाली अनामिका की पुरानी कविताओं में हैं। इन प्रारम्भिक कविताओं में हम कवि को साधना के पहले चरण में पाते हैं। अभी उसका अपना रूप सुस्पष्ट नहीं हो पाया है। वह रवीन्द्रनाथ और विवेकानन्द के काव्य की छाँह में आगे बढ़ रहा है। स्वयं उसने अभी अपना मार्ग भली-भाँति ढूँढ़ नहीं निकाला

है। इन कविताओं में जो बात सबसे महत्त्वपूर्ण है वह है भाषा की सरलता और सरसता। द्विवेदी युग के इतिवृत्तात्मक काव्य में सरलता की ओर दृष्टि भले ही गई हो, सरस वह किसी भी प्रकार नहीं कहा जा सकता। श्रीधर पाठक की एक कविता 'हेमंत' लीजिये—

बीता कातिक मास शरद का अंत है,
लगा सकल सुखदायक ऋतु हेमन्त है।
थोड़े दिन को बैल परिश्रम से थमे,
रब्बी के लहलहे नए अंकुर जमे।
दुखी बाल विधवाओं की जो है गती,
कौन सके बतला किसकी इतनी मती।
जिन्हें जगत की सब बातों से आन है,
दुख सुख मरना जीना एक समान है।
जिनको जीते जी दी गई तिलांजली,
उनकी कुछ हो दशा, किसी को क्या पड़ी।

(मनोविनोद, पृ० ७६)

या 'वसंतोत्सव' में गाँवों की सुषमा देखिये—

कोसों तक पृथ्वी पर रहती सरसों छाई,
देती दृग की पहुँच तलक पीतिमा दिखाई।
सुन्दर सुन्दर फूल वह उसके चित्र लुभाने,
बीच बीच में खेत गेहूँ-जौ के मनमाने।
वह बबूल की छाया मन को हरने वाली,
वह पीले पीले फूलों की सुन्दर छटा निराली।
आसपास पालों के वट वृक्षों का झूमर,
जिसके नीचे वह गायों भैंसों का पोखर।
ग्वाल बाल सब जिनके नीचे खेल मचाते,
बूट चने के लाते होले करके खाते।

पशुगण जिनके तले बैठ कर आनँद करते,
पानी पीते, पगुराते, स्वच्छंद विचरते।

(स्फुट कविता, पृ० ७३)

दोनों कविताओं में भाषा की सरलता के साथ इतिवृत्तात्मकता का आग्रह है। चारों ओर की कुछ वस्तुओं को शृंखलाबद्ध रूप से उपस्थित कर देना ही कविता की सबसे ऊँची उड़ान समझी जाती थी। द्विवेदीयुग में ही कुछ कवियों ने इस इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध विद्रोह किया और कविता को रस का परिचय कराया। ये कवि थे पं० रामचन्द्र शुक्ल, लोचनप्रसाद पांडेय, मुकुटधर पांडेय, रायकृष्णदास, जयशंकर प्रसाद। इन कवियों ने खड़ी बोली काव्य में प्राण की प्रतिष्ठा की और उसे प्रगति के पथ पर डाला। मुकुटधर पांडेय और सुमित्रानन्दन पंत की कविताओं में पहली बार प्रकृति के प्रति, आश्चर्य और जिज्ञासा की भावना जागी। 'रहस्यात्मक खोज' शीर्षक कविता में मुकुटधर पांडेय लिखते हैं —

अंधकार में दीप जलाकर किसकी खोज किया करते हो।
तुम खद्योत क्षुद्र हो फिर तुम क्यों ऐसा दम भरते हो॥
तम में ये नक्षत्र आज तक घूम रहे हैं उसके कारण।
उसका पता कहाँ है किसको होगा यह रहस्य उद्घाटन॥
प्रातःकाल पवन लाती है उसका कुछ संदेश।
मूक प्रकृति को ही कह जाती है उसका संदेश॥
क्षण भर में तब जड़ में हो जाता चैतन्य-विलास।
वृक्षों पर विकसित फूलों का होता हास-विकास॥

(सरस्वती, खंड २१, संख्या ३, १९२०)

पंत की 'वीणा' और 'पल्लव' की इस काल की कुछ कविताओं में यह प्रवृत्ति अपनी पराकाष्ठा को पहुँच जाती है। प्रकृति का

सरस और अलंकृत वर्णन इसी युग में पं० रामनरेश त्रिपाठी और रामचन्द्र शुक्ल की कविताओं में मिलता है। 'स्वप्न' के इस वर्णन की तुलना परवर्ती-प्रकृति सम्बन्धी काव्य से कीजिये—

जग को आँखों से ओझल कर बरबस मेरी दृष्टि उठाकर
झिलमिल करते हुए गगन में तारों के पथ पर पहुँचा कर
करता है संकेत देखने का किसका सौन्दर्य मनोरम
आकर के चुपचाप कहीं से यह संध्या का तम अति प्रियतम

इसी तरह देशप्रेम की कविता ने भी द्विवेदी-युग में रोमांचक, रहस्यात्मक और ओजस्वी रूप ग्रहण कर लिया। परन्तु इस रूप का विशेष विकास बाद में हुआ। रूपकात्मक रहस्य-प्रधान आध्यात्मिक कविताओं की परम्परा भी चली और 'प्रसाद' और रायकृष्णदास इस क्षेत्र में अग्रणी थे। उदाहरण-स्वरूप श्री रायकृष्णदास की यह कविता है—

हे राजहंस, यह कौन चाल
तू पिंजरबद्ध चला होने, बनने अपना ही आप काल
यह है कंचन का बना हुआ,
तू इससे मोहितमना हुआ,
कनकाब्ज-प्रसवि मानस भी है
उसको विस्मृत मत कर मराल।

(सरस्वती, खंड, १६, सं० ५, १६१८)

यहाँ राजहंस मानवात्मा है और यह संसार सोने का पिंजरा है। इस प्रकार धीरे धीरे १६०६ से १६२१ तक लाक्षणिक कविताओं का विकास होता गया। अभिधात्मक कविताएँ इतिवृत्तात्मक, ज्ञानात्मक और रसहीन होने के कारण पीछे पड़ने लगीं। धर्म की कविताओं के क्षेत्र में रवीन्द्र बाबू की गीतांजलि ने हिन्दी

कवियों की विचारधारा पर क्रांतिकारी प्रभाव डाला। मुकुटधर पांडेय की कविताओं पर यह प्रभाव पूर्णरूप से स्पष्ट है :

१—खोज में हुआ वृथा हैरान,
यहाँ ही था तू हे भगवान
दीन हीन के अश्रुनीर में,
पतितों की परिताप-पीर में,
सरल स्वभाव कृपक के हल में,
श्रम सीकर के सिंचित धन में,
तेरा मिला प्रमाण

(सरस्वती, खंड १६, सं० १, १९१५)

२—होने को तव सन्मुख आज,
नाथ सताती मुझको लाज
पुनः यहाँ तो भरा समाज
नाथ सताती मुझको लाज
जब संध्या को हट जावेगी भीड़ महान,
तब जाकर मैं तुम्हें सुनाऊँगा निज गान

धीरे-धीरे राम-कृष्ण काव्य से अलग इस प्रकार के एक रहस्य-प्रधान भक्तिकाव्य की नींव पड़ी। 'तेरे घर के द्वार बहुत हैं किससे होकर आऊँ मैं' जैसी कविताएँ लिखकर द्विवेदी-युग के प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण गुप्त ने नये काव्य और उसकी विचारधारा का अभिनन्दन किया। इस प्रकार साम्प्रदायिक भावों से अलग प्रतीकात्मक आध्यात्मिक काव्य का जन्म हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि निराला के प्रारंभिक काव्य में वे ही प्रवृत्तियाँ हैं जो उत्तर द्विवेदी-युग में धीरे-धीरे दृढ़ होती गईं। 'अनामिका'(१९२३) तक उस नई काव्यधारा का सूत्रपात

हो गया था जिसे बाद में 'छायावाद' के नाम से प्रसिद्ध कर दिया गया। जब निराला ने अपने प्रारम्भिक काव्य की रचना की, तब वे रवीन्द्र और विवेकानन्द से तो प्रभावित थे ही, 'सरस्वती' के सम्यक् अध्ययन के कारण उत्तरद्विवेदी-युग के उन कवियों की कविताओं से भी परिचित थे जिन्होंने द्विवेदी-युग की कविताओं की जड़ता को दूर किया और जो द्विवेदी युग और छायावाद-युग को जोड़ने वाली कड़ी हैं।

३

परिमल (१९३०)

जिस संग्रह ने निराला जी को नवीन काव्य की शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया, वह अनामिका (१९२३) नहीं था, परिमल (१९३०) था। आँसू (१९२६), पल्लव (१९२६) और परिमल (१९३०) छायावाद काव्य के वे तीन ग्रन्थ थे जिन्होंने प्रसाद, पन्त और निराला को हिन्दी पाठकों से पहली बार परिचित कराया। 'आँसू' ने जिस क्रान्ति का सूत्रपात किया था, 'पल्लव' ने जिस क्रान्ति को गहराई दी, उसी क्रान्ति का विस्तार 'निराला' के इस महत्त्वपूर्ण काव्यग्रन्थ (परिमल, १९३०) ने प्रदान किया। एक बात और। अनामिका (१९२३) की कुछ कविताओं पर स्पष्टतया बँगला-कवियों की छाप थी। निराला की प्रतिभा ने यह स्वीकार नहीं किया कि उच्छिष्ट-वृत्ति पर रहें। जो निराला से परिचित हैं, वे जानते हैं, विवेकानन्द और रवि बाबू का लगभग सारा काव्य उन्हें कंठस्थ है। सच तो यह है, निराला की स्मरण-शक्ति उनका महान् वल सिद्ध हुई; परन्तु उन्होंने अधिक से अधिक मौलिक भूमि पर खड़ा होने की चेष्टा की—और वे इसमें सफल भी कम नहीं हुए। 'परिमल' की भूमिका में लिखते हैं—"मेरी तमाम रचनाओं में दो-चार जगह दूसरों के भाव, मुमकिन है, आ गए हों; पर अधिकांश कल्पना, ९५ फ़ी-सदी, मेरी अपनी है।" (पृ० १५)। मौलिकता का इस प्रकार का दावा इस युग के लिए वड़े साहस का काम था, क्योंकि हिन्दी के वड़े-वड़े साहित्यिक वँगला के लेखकों से प्रभावित हो रहे थे और रवीन्द्र और

शरत्चन्द्र के अनुवाद हिन्दी में बराबर हो रहे थे। उस समय की परिस्थिति निराला के ही शब्दों में—'इस युग के कुछ प्रतिभाशाली अल्प-वयस्क साहित्यक प्राचीन गुरुडम के एकच्छत्र साम्राज्य में बग़ावत के लिए शासन दंड ही पा रहे हैं, अभी उन्हें साहित्य के राजपथों पर साधिकार स्वतन्त्र रूप से चलने का सौभाग्य नहीं मिला। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि इस नवीन जीवन के भीतर से शीघ्र ही एक ऐसा आवर्त बँधकर उठने वाला है, जिसके साथ साहित्य के अगणित जलकण उसे एक ही चक्र की प्रदक्षिणा करते हुए उसके साथ एक ही प्रवाह में बह जायेंगे और लक्ष्य-भ्रष्ट या निदाव से शुष्क न हो एक ही जीवन के उदार महासागर में विलीन होंगे। यह नवीन साहित्य के क्रिया-काल में सम्भव होगा। अभी तो प्रत्येक नवयुवक लेखक और कवि अपनी ही प्रतिभा के प्रदर्शन में लगा हुआ है। अभी उसमें अधिकांश साहित्यिक अपने को समझ भी नहीं सके। जो कवि नहीं, वह भी अपने को कविता के क्षेत्र पर अप्रतिद्वन्द्वी समझता है। सब लोग अपनी ही कुशलता और अपनी ही रुचि-विशेषता को लेकर साहित्य के बाज़ार में खड़े हुए देख पड़ते हैं। कहीं-कहीं तो बड़ा ही विचित्र नज्जारा है। प्रशंसा और आलोचना में भी आदान-प्रदान जारी है। दलबन्दियों के भाव जिनमें न हों, ऐसे साहित्यिक कदाचित् ही नज़र आते हैं, और प्रतिभाशाली साहित्यिकों को निष्प्रभ तथा हेय सिद्ध करके सम्मान आसन ग्रहण करने वाले महालेखक और महाकविगण साहित्य में अपनी प्राचीन गुलामी प्रथा की ही पुष्टि करते जा रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में 'परिमल' निकल रहा है।'' (पृ० २, भूमिका)।

सचमुच हिन्दी काव्य के क्षेत्र में परिस्थिति बड़ी विचित्र थी। प्रसाद और पंत का नया काव्य हिन्दी में आ गया था, उसकी एक वर्गविशेष में प्रशंसा भी हुई थी, परन्तु यह

प्रशंसा कोई महत्त्वपूर्ण नहीं थी। काव्य में इन कवियों के साथ किसी नई शक्ति का प्रवेश हुआ है, पुरोगामी इसे मानने के लिए तैयार नहीं थे। हाँ, विरोधियों का दल अधिक प्रबल था और तुलसीदास की तरह खल-वंदना करके पीछे के दरवाजे से छिप कर काव्य-क्षेत्र में प्रवेश करना नये कवि के लिए क्षम्य समझा जाता था। 'पंत' ने 'पल्लव' की भूमिका में ब्रजभाषा काव्य और द्विवेदी युग के काव्य की रूढ़ियों की जो हँसी उड़ाई थी, वह बड़े साहस का काम था। आज इतने वर्षों के बाद हम इस बात को भूल गए हैं। परन्तु सच अर्थों में रीतिकाल की कविता की उत्तराधिकारी कविता इन नए कवियों की थी। द्विवेदी युग के कवियों के काव्य को हम काव्य-गद्य (Poetical Prose) ही कह सकते हैं। सच्ची कविता में जिस रक्त-मांस की आवश्यकता है, सच्ची कविता में हृदय-मन के जो बोल चाहिये, वे द्विवेदी-युग के कवियों में कहाँ मिलेंगे। परन्तु दो दशाब्द तक कविता के नाम पर गद्य पढ़ते-पढ़ते हिन्दी के काव्य-रसिकों की रस की परख नष्ट हो गई थी—जो इस बार सामने आया वह पुरानी परम्परा से एकदम अलग था—इन कारणों से यह नई 'छायावाद' की कविता जनता के गले उतनी सरलता से नहीं उतरी। मासिक पत्रों और साप्ताहिकों में समय-समय पर 'हाला-प्याला' लिये, लम्बे बाल, बुरे हवाल, आकाश के तारों की ओर ताकते या किसी सुन्दरी से प्रणय-निवेदन करते नए कवि (छायावादी कवि) के चित्र निकलते रहे हैं, वे उस विरोध की सूचना देते हैं जिसे इन नये कवियों को सहना पड़ा। अँग्रेजी और बँगला काव्य के अध्ययन के सहारे, अभिव्यंजना-वाद और उर्दू की व्यंजनात्मक शैली से प्रभावित हो इन नये कवियों ने छाया और प्रकाश के जो नए मार्ग हिन्दी कविता में खोजे, वे अत्यन्त आवश्यक थे।

'परिमल' की कविताएँ नई काव्य-भित्ति पर परखने से आज कदाचित् उतनी महत्त्वपूर्ण न जान पड़ें जितनी १९३० में थीं। 'आँसू' की अभिव्यंजना को कम लोग ठीक-ठीक समझ पाते थे। आज भी सब सरलता से उसे समझ नहीं पाते। 'पल्लव' में मूर्तिमत्ता (कल्पना) का अतिरेक इतना था, अँग्रेज़ी रोमांटिक कवियों (विशेषकर 'शेली') की छाप इतनी अधिक थी कि उस काव्य का हिन्दीपन बहुत कुछ डूब गया था। 'निराला' के 'परिमल' (१९३०) ने इस 'हिन्दीपन' को अक्षुण्ण बनाये रखा। प्रसाद गुण, सीधी-सादी अभिव्यंजना, साधारण बोल-चाल के ढङ्ग पर वाक्य-विन्यास—ये हिन्दी के लिए नई चीज़ें थीं। 'गीतिका' (१९३६) और अनामिका (१९३८) में निराला के काव्य के ये गुण दब गए हैं—वे आधुनिक कठिन काव्य के प्रेत के रूप में हमारे सामने आते हैं, परन्तु 'परिमल' की कविताएँ लिखते समय उनका आग्रह सरल, प्रसाद-पूर्ण हिन्दी लिखने की ओर ही था।

'निराला' की 'परिमल' की कविताओं के अनेक विषय हैं, अभिव्यंजना के अनेक ढङ्ग हैं; अतः सब कविताओं को एक साथ लेना असम्भव है। १९३० के पाठकों और आलोचकों में विश्लेषण दृष्टि का अभाव था, इससे केवल कुछ रहस्यात्मक कविताओं के नाते 'निराला' को 'कठिन कवि', 'रहस्यवादी कवि,' 'दार्शनिक कवि' कह कर छुट्टी पा ली गई। परन्तु सच तो यह है कि पंत, प्रसाद और निराला तीनों नए कवियों में निराला का काव्य ही अधिक विस्तृत भूमि पर खड़ा था। न वह प्रसाद की कविता की तरह अभिव्यंजनात्मक शैली के चक्कर में पड़ा था, न उसे पंत के 'पल्लव' की कविताओं की तरह उपमाओं-उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगानी थी।

१—प्रार्थनात्मक कविताएँ

'निराला' की इन प्रारंभिक कविताओं में प्रार्थनात्मक कविताएँ बहुत अधिक थीं। संतों और भक्तों के विनय-पदों से हम परिचित हैं; परन्तु किसी विशेप आलंबन से अलग एक सार्वभौमिक सत्ता-मात्र के प्रति अश्रु-रोदनयुक्त ये कविताएँ नई चीज़ थीं। उनका भाव-विलास तो नया था ही, छन्दविन्यास भी नवीन था। 'खेवा' शीर्षक कविता में कवि कहता है—

डोलती नाव, प्रखर है धार,
सँभालो जीवन-खेवनहार !
तिर तिर फिर फिर
प्रबल तरंगों में
घिरती है,
डोले पग जल पर
डगमग डगमग
फिरती है,
टूट गई पतवार—
जीवन - खेवनहार !
भय में हूँ तन्मय
थर थर कम्पन
तन्मयता
छन छन में
बढ़ती ही जाती है
अतिशयता,
पारावार अपार
जीवन-खेवनहार !

इस कविता में संगीत के स्वर भावना के ऊपर बोझिल हो उठे हैं। जिस रूप में यह कविता कागज पर आई है, वह भी उस समय के पाठकों के लिए अपरिचित था। इसीलिए उस युग का पाठक इन कविताओं को समझ नहीं सका। वह तो इतिवृत्तात्मक काव्य और पद्यात्मक गद्य से ही परिचित था। द्विवेदीयुग की कविता में संगीत और भावना के तंतुओं का एकदम अभाव था। परन्तु निराला के इस प्रकार की सब कविताएँ एक जैसी सरल भी नहीं थीं। कहीं-कहीं सुन्दर कल्पना का प्रयोग हुआ था और कवि रूपक से सहारे आगे बढ़ता था। कवि कहता है—

प्रतिपल तुम ढाल रहे सुधा मधुर ज्योति-धार
मेरे जीवन पर, प्रिय यौवन-वन के बहार

(हे अनन्त, हे महान्, हे प्रिय ! तुम मेरे जीवन पर प्रति-पल जो प्रेम की अविरल वर्षा कर रहे हो, वह इतनी मधुर है, इतनी प्रकाशवान है कि हृदय को विह्वल कर देती है। तुम्हीं तो मेरे यौवन को सर्वोत्तम स्थिति हो, यौवन-वन की बहार हो।) आगे चलकर कवि कहता है—देखता हूँ, दूर वह तुम्हारा ज्योति-यान है। किरणें तुमसे फूटकर बह रही हैं। वे किरणें न जाने गुप-चुप क्या बातें करती हैं। मैं समझ नहीं पाता, परन्तु वे तुम्हारी अनुकंपा को इस पृथ्वी पर ला रही हैं, यह बात जानता हूँ। तुम्हारे पास से, तुम्हारे स्पर्श से शीतल हो जो परिमल बह रहा है, वह हमारी इस पृथ्वी तक भी छन-छन कर आ रहा है। मुक्त-कुन्तला वायु उसे ढो रही है। इससे मेरा यह हृदय स्वतः ही अर्पण हो रहा है। जीवन की सारी विजय, सारी पराजय, सारे सुख, सारे दुख, आशा, भय सब तुममें एकाकार हो गये हैं। जो तुम्हारा नहीं है—जो तुम्हारे कर-स्पर्श को नहीं पाता, वह सब व्यर्थ है, असार है ! परन्तु

कुछ कविताओं में कवि एकांततः संगीतमय हो गया है। इसीसे काव्य में उसने संगीत के ऐसे उपकरण गूँथ दिये हैं, ऐसे शब्द रख दिये हैं, जो भाव पर बोझिल हो उठे हैं। इन कविताओं की प्रत्येक पंक्ति और प्रत्येक पंक्ति के प्रत्येक शब्द का अर्थ लगाना असंभव-सा है। कवि कहता है—

जीवन प्रात-समीरण-सा लघु
विचरण निरत करो।
तरु-तोरण-तृण-तृण की कविता
छवि-मधु-सुरभि भरो।
अंचल-सा न करो चंचल,
क्षण-भंगुर,
नत-नयनों में स्थिर दो बल,
अविचल उर;
स्वर-सा कर दो अविनश्वर,
ईश्वर-मञ्जित
शुचि चन्दन - वन्दन - सुन्दर
मन्दर-सज्जित;
मेरे गगन-मगन मन में, अयि
किरणमयी, विचरो—
तरु-तोरण-तृण-तृण की कविता
छवि-मधु-सुरभि भरो।

कवि कविता (भारती) से प्रार्थना करता है—प्रात-समीरण का जीवन ही कितना! इतना लघु मेरा जीवन है। हे कविता, मेरे मन में तृण-तृण का (अपदार्थ से अपदार्थ प्रकृतितत्त्व का) सौन्दर्य, माधुर्य और अनिर्वचनीयता भर दो। तुम्हारे अंचल की तरह मैं चंचल न बनूँ। अपने नयनों का स्थिर बल मुझको

दे दो। मेरा हृदय, मेरा काव्य स्थायी भावनाओं से भर जाये। स्वर की भाँति मुझे अविनश्वर कर दो। स्वर (नाद) जिस प्रकार अमर है: उसी प्रकार मेरी वाणी अमर हो जाय, ईश्वर-मज्जित हो जाय, सनातन तत्त्वों में तिरोभाव प्राप्त करे। मेरी वाणी पूतता और कल्याण के सारे तत्त्वों का समावेश प्राप्त करे। हे किरणमयी मेरे मन में जो सूक्ष्म तत्त्वों (दार्शनिक भावनाओं 'गगन' जिसका प्रतीक है) के पीछे दौड़ता फिरता है; तुम अपने सौन्दर्य और माधुर्य के साथ विचरण करो। यह स्पष्ट है कि कविता के शब्द-शब्द का अर्थ करके यहाँ उतना हाथ-पल्ले नहीं पड़ता, जितना कविता की आत्मा में विभोर होने से। नया कवि विचार से अधिक भाव की ओर जाता था, छन्द से अधिक संगीत की ओर। इसे ही निराला ने कविता की मुक्ति कहा है। वे कहते हैं—"मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्म के बंधन से छुटकारा पाना है, और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना।" (भूमिका, ६) मध्य युग के कवियों के बाद धीरे-धीरे हमारा साहित्य संगीत-शून्य हो गया था। आत्मपरक भावात्मक भक्ति-काव्य के बदले परोक्षपरक, रूढ़िवादी बुद्धिवादी शृङ्गार (रीति) काव्य की प्रतिष्ठा हुई। धीरे-धीरे काव्य से व्यक्तित्व का एक-दम लोप हो गया—सारा काव्य एक ही निश्चित परिपाटी में बँध गया। द्विवेदी-युग के काव्य ने रीतिकाल की अनैतिकता और वासनात्मक प्रवृत्तियों का विरोध तो किया, परन्तु वह विरोध बुद्धि का विरोध था; अतः हृदय के तत्त्व उसमें अधिक नहीं मिल पाए। इसीसे इस युग के काव्य में न हृदय है, न संगीत, न व्यक्तित्व की झलक। इसीलिए पुरानी कविता के प्रशंसक ठीक-ठीक इस नवीन काव्य को नहीं समझ सके। सच तो यह है हमारे देश के काव्य में व्यक्ति के स्वर बहुत नहीं । अधिक से अधिक

विनय की कविताओं (विनय पदों) में उनके दर्शन होते हैं। कवि अपनी बात न कह कर वर्गविशेष या सामान्य मानव हृदय की बात कहता है। हिन्दी का अधिकांश प्राचीन काव्य या तो विशेष-विशेष धार्मिक आन्दोलनों की छाया है, या विशेष साहित्य-परिपाटी का पालक है। उसमें व्यक्ति का किंचित भी स्थान नहीं है। छायावाद के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यही थी। वह कवि के व्यक्तित्व को उभारकर हमारे सामने लाता है। कवि क्या चाहता है, क्या समझता है, प्रकृति, नारी, जीवन, प्रेम के प्रति उसका दृष्टिकोण क्या है, यह इस काव्य मे उसी तरह स्पष्ट है जिस तरह दिन के साथ प्रकाश का प्रकृत्यः सम्बन्ध है!

२—प्रकृति-सम्बन्धी कविताएँ

प्रकृति-सम्बन्धी स्वतन्त्र काव्य का हिन्दी में लगभग अभाव रहा है। धर्मचेतना-प्राण काव्य में प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता हो भी नहीं सकती थी। अतः तुलसी-सूर प्रभृति महान् कवियों के काव्य में प्रकृति धर्म-तत्त्वों के सहायक रूप में ही आयी है। केवल दो-चार संश्लिष्ट चित्रों को छोड़ कर प्राचीन हिन्दी काव्य में प्रकृति उद्दीपन विभाव के रूप में ही सामने आती है।

सच तो यह है हिन्दी कविता का आरम्भ संघर्ष की गोद में हुआ। उस समय कवियों को इतना समय ही नहीं था कि वे प्रकृति के सौन्दर्य की ओर मुड़ते। इसके बाद का जितना भी साहित्य है, वह अधिकतर नैतिकता-प्रधान है। संत-साहित्य प्रकृति की उपेक्षा करता है। वह आत्मा के द्वन्द्व और नैतिकता एवं नैतिक आदर्शों के आलोक में लौकिक व्यवहार के प्रश्न सामने रखकर चला है। उसका भौतिक सौन्दर्य के प्रति दृष्टि-कोण ही दूसरा है। यह संसार जब माया है तो प्राकृतिक

सौन्दर्य भी छलावा है। इसमें भूल जाना आत्मा का नाश करना है।

भक्ति-काव्य की दृष्टि भी अपने आदर्शों के कारण संकीर्ण हो गई। हाँ, उसकी कृष्ण-शाखा ने अपने आराध्य को सौन्दर्य और प्रेम की अन्यतम विभूति मानकर उसकी उपासना की। स्वयं कृष्ण-चरित्र का सम्बन्ध व्रज से था। इसलिए लोक-नायक के चरित्र के सम्बन्ध में व्रजभूमि के प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण हुए। व्रजकाव्य की प्रकृति गोपियों के हृदय की परछाईं है। उसके दर्पण में उनके हृदय के अनुभाव-विभाव प्रतिबिंबित होते हैं। प्रकृति और मनुष्य की अन्यतम भावनाओं का इतना एकात्म है कि हम चकित रह जाते हैं। अलबत्ता सूफी कवियों का प्रकृति के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण है और उसने उनके काव्य में एक महत्त्वपूर्ण स्थान पाया है। ये कवि रहस्यवादी थे। इनकी दृष्टि में प्रकृति परमात्मसत्ता की ही अभिव्यक्ति है। वह दर्पण है जिसमें पुरुष (अव्यक्त सत्ता) का चित्र झलकता है। इसीसे उन्होंने उसे चिदात्म की प्राप्ति का एक माध्यम माना। उन्होंने प्रकृति का जो चित्र उपस्थित किया है, वह उनकी रहस्यानुभूतियों में रँगा होने के कारण अतिरंजित है। साथ ही वह जीवित, स्पंदित और सहानुभूति-शील है। साधक के सुख-दुख के साथ प्रकृति भी सुख-दुख का अनुभव करती है। उसके उतने ही मूड (mood) है, जितने मनुष्य के। सूफियों ने विरह को प्रेम की परम अभिव्यक्ति माना है, इससे उनकी प्रकृति भी क्रन्दनशीला, पुरुष-परित्यक्ता, आजीवन विरहिणी है।

हिन्दी काव्य को संस्कृत की काव्य-परम्परा और संस्कृत रीति की विकसित निश्चित भूमि मिली। इससे जहाँ उसके विकास में सहायता हुई, वहाँ उसका दृष्टिकोण भी संकीर्ण हो

गया। यह बात हिन्दी के प्रकृति-चित्रण की ओर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाती है। जब कवि के पास एक विकसित साहित्य होता है जिसके उपमेय-उपमान और प्राकृतिक एवं मानवी चित्र निश्चित होते हैं, तो कभी-कभी उसे उनके प्रति लोभ हो जाता है, और स्वयं अपनी इन्द्रियों-द्वारा अपने चारों ओर देखने की अपेक्षा वह यह कहीं अच्छा समझता है कि साहित्य के माध्यम से वस्तुजगत् को देखे। इससे जहाँ साहित्य की एक युग की प्रगति अगले युग से अविच्छिन्न रहती है, वहाँ दूसरी ओर प्रकृति और जीवन से नये प्रतीकों और उपमानों के प्रवेश न होने से साहित्य में रूढ़िवादिता आ जाती है, वह समय से पीछे पड़ जाता है।

संस्कृत काव्य के जो उपमान प्रकृति से लिये गए थे, वह अब हमारे प्रत्येक दिन के अनुभव में नहीं आते। वह उस समय लिये गए थे जब नागरिक जीवन प्रकृति से इतनी दूर नहीं गया था, जितनी दूर वह आज है। इस कारण वे प्रभावशील थे। कमल, मृग, खंजन, लता—ये आज कल्पना की वस्तुएँ हैं; परन्तु हमारा साहित्य युगों से इनमें सोचता रहा है। इसका फल यह हुआ कि हमारे सारे प्राचीन काल में कवियों ने प्रकृति को पूर्ववर्ती साहित्य के अंदर से देखा, फिर चाहे सूरदास की तरह, वह प्रकृति के बीच ही घिरे क्यों न रहे हों।

रीतिकाल की तुलना अँग्रेजी के पोप और ड्रायडन के काल से की जा सकती है। इस समय जो कविता हुई वह पूर्णतया नागरिक थी। उसका विकास नगरों में हुआ। उसमें या तो प्रकृति को कोई स्थान नहीं मिला या उसका परम्परा से आया रूप, अनुभूत न होने पर भी स्वीकार कर लिया गया। वह भी शृङ्गार के भावों, अनुभावों, विभावों के संबंध में या उद्दीपन के लिए। रीतिकाल की प्रकृति स्वतंत्र नहीं है। उसकी बाढ़ रुक सी

सौन्दर्य भी छलावा है। इसमें भूल जाना आत्मा का नाश करना है।

भक्ति-काव्य की दृष्टि भी अपने आदर्शों के कारण संकीर्ण हो गई। हाँ, उसकी कृष्ण-शाखा ने अपने आराध्य को सौन्दर्य और प्रेम की अन्यतम विभूति मानकर उसकी उपासना की। स्वयं कृष्ण-चरित्र का सम्बन्ध ब्रज से था। इसलिए लोक-नायक के चरित्र के सम्बन्ध में ब्रजभूमि के प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण हुए। ब्रजकाव्य की प्रकृति गोपियों के हृदय की परछाईं है। उसके दर्पण में उनके हृदय के अनुभाव-विभाव प्रतिबिंबित होते हैं। प्रकृति और मनुष्य की अन्यतम भावनाओं का इतना एकात्म है कि हम चकित रह जाते हैं। अलबत्ता सूफ़ी कवियों का प्रकृति के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण है और उसने उनके काव्य में एक महत्त्वपूर्ण स्थान पाया है। ये कवि रहस्यवादी थे। इनकी दृष्टि में प्रकृति परमात्मसत्ता की ही अभिव्यक्ति है। वह दर्पण है जिसमें पुरुष (अव्यक्त सत्ता) का चित्र झलकता है। इसीसे उन्होंने उसे चिदात्म की प्राप्ति का एक माध्यम माना। उन्होंने प्रकृति का जो चित्र उपस्थित किया है, वह उनकी रहस्यानुभूतियों में रँगा होने के कारण अतिरंजित है। साथ ही वह जीवित, स्पंदित और सहानुभूति-शील है। साधक के सुख-दुख के साथ प्रकृति भी सुख-दुख का अनुभव करती है। उसके उतने ही मूड (mood) हैं, जितने मनुष्य के। सूफ़ियों ने विरह को प्रेम की परम अभिव्यक्ति माना है, इससे उनकी प्रकृति भी क्रन्दनशीला, पुरुष-परित्यक्ता, आजीवन विरहिणी है।

हिन्दी काव्य को संस्कृत की काव्य-परम्परा और संस्कृत रीति की विकसित निश्चित भूमि मिली। इससे जहाँ उसके विकास में सहायता हुई, वहाँ उसका दृष्टिकोण भी संकीर्ण हो

गया। यह बात हिन्दी के प्रकृति-चित्रण की ओर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाती है। जब कवि के पास एक विकसित साहित्य होता है जिसके उपमेय-उपमान और प्राकृतिक एवं मानवी चित्र निश्चित होते हैं, तो कभी-कभी उसे उनके प्रति लोभ हो जाता है, और स्वयं अपनी इन्द्रियों-द्वारा अपने चारों ओर देखने की अपेक्षा वह यह कहीं अच्छा समझता है कि साहित्य के माध्यम से वस्तुजगत् को देखे। इससे जहाँ साहित्य की एक युग की प्रगति अगले युग से अविच्छिन्न रहती है, वहाँ दूसरी ओर प्रकृति और जीवन से नये प्रतीकों और उपमानों के प्रवेश न होने से साहित्य में रूढ़िवादिता आ जाती है, वह समय से पीछे पड़ जाता है।

संस्कृत काव्य के जो उपमान प्रकृति से लिये गए थे, वह अब हमारे प्रत्येक दिन के अनुभव में नहीं आते। वह उस समय लिये गए थे जब नागरिक जीवन प्रकृति से इतनी दूर नहीं गया था, जितनी दूर वह आज है। इस कारण वे प्रभावशील थे। कमल, मृग, खंजन, लता—ये आज कल्पना की वस्तुएँ हैं: परन्तु हमारा साहित्य युगों से इनमें सोचता रहा है। इसका फल यह हुआ कि हमारे सारे प्राचीन काल में कवियों ने प्रकृति को पूर्ववर्ती साहित्य के अंदर से देखा, फिर चाहे सूरदास की तरह, वह प्रकृति के बीच ही घिरे क्यों न रहे हों।

रीतिकाल की तुलना अँग्रेजी के पोप और ड्रायडन के काल से की जा सकती है। इस समय जो कविता हुई वह पूर्णतया नागरिक थी। उसका विकास नगरों में हुआ। उसमें या तो प्रकृति को कोई स्थान नहीं मिला या उसका परम्परा से आया रूप, अनुभूत न होने पर भी स्वीकार कर लिया गया। यह भी शृङ्गार के भावों, अनुभावों, विभावों के संबंध में या उद्दीपन के लिए। रीतिकाल की प्रकृति स्वतंत्र नहीं है। उसकी बाढ़ रुक सी

गई है। वह कवि की दासी है और उसके बुलाने-चलाने पर वेश्या की तरह अनैसर्गिक शृङ्गार करके उसके सामने आती है। गृहिणी-जैसा सरल, निश्चल और पातिव्रत-पूर्ण व्यवहार उसका नहीं है।

द्विवेदी-काल के कवियों ने पहली बार प्रकृति की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार किया। नई पश्चिमी सभ्यता के साथ नगरों का जीवन तेजी से बदल रहा था। प्रकृति के जो चिह्न विलासिता के पिछले युग में थे, वह भी नष्ट हो रहे थे। आर्थिक संघर्ष ने जीवन को और भी जटिल और नीरस कर दिया था। इससे कवियों की दृष्टि प्रकृति की ओर गई। वे नगर के रहने वाले थे। उनकी भावुकतापूर्ण सहानुभूति कभी काश्मीर की सुषमा पर जाती, कभी ग्राम्य-जीवन की सरलता और ग्राम की प्रकृति की ओर। जो हो, उन्होंने प्रकृति की ओर देखा, चाहे उनका दृष्टिकोण उनके इस आदर्श-भाव से प्रभावित होकर निरर्थक ही क्यों न हो गया हो जिससे प्रेरित होकर बाद में प्रेमचंद गाँवों पर मोहित हो गये थे।

नवयुग के कवियों (लोकप्रिय शब्दों में छायावादी कवियों) ने जीवन की कटुता के प्रति भावुक विद्रोह किया और अपनी भावना-प्रिय प्रवृत्ति के कारण उसकी उपेक्षा करके उन्होंने उसे आँख की ओट करना चाहा। उनकी प्रवृत्ति उस शुतुरमुर्ग-जैसी थी जो रेत में मुँह छिपा कर शत्रु के ओट हो जाने की कल्पना करके अपने हृदय को संतुष्ट कर लेता है। उन्होंने वर्ड्सवर्थ की तरह कहा—Back to Nature (प्रकृति की ओर लौटो); परंतु वे अति की ओर झुक चुके थे। उनके दृष्टिकोण में आसक्तिपूर्ण भावुकता ने प्रवेश कर लिया था। शीघ्र ही वे प्रकृति के प्रति रहस्यवादी हो गये। पंत, निराला और प्रसाद के प्रकृति-चित्र उनके रहस्यवाद या उनकी रोमांटिक भावनाओं

के कारण अतिरंजित हैं। उनमें न प्रकृति की स्वाभाविकता है, न उसकी विशदता। उनकी प्रकृति स्वयं उनकी निर्माण की हुई है, यद्यपि कहीं-कहीं वस्तुवादी चित्र भी बड़े सुन्दर मिलते हैं। इन कवियों ने प्रकृति के प्राकृत रूप की ओर भी दृष्टिपात किया है। वे प्रत्येक दिन के दृश्यों में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में सफल हुए हैं। उन्होंने उपेक्षित क्षेत्रों में प्रवेश किया है और उन क्षेत्रों के अनेक चित्र साहित्य-सेवियों के सामने रखे हैं। यद्यपि उनका दृष्टिकोण आदर्शवाद से प्रभावित है, फिर भी वे प्रकृति के अत्यंत निकट हैं। कविता में यथार्थवाद की जो नई धारा आ रही है, वह इन्हीं छायावादी कवियों के कारण प्रकाश का मुँह देख सकी है। जड़ प्रकृति-चित्रों को कल्पना और कला द्वारा पहली बार जीवित-स्पंदित बनाने का श्रेय इन्हीं छायावादी कवियों को है।

'निराला' के परिमल (१९३०) में प्रकृति के अनेक सुन्दर चित्र मिलेंगे। प्रभाती, यमुना के प्रति, वासन्ती, तरंगों के प्रति, जलद के प्रति, वसन्त समीर, प्रथम प्रभात, संध्यासुन्दरी, शरदपूर्णिमा की विदाई, वन-कुसुमों की शय्या, रास्ते के फूल से, प्रपात के प्रति, बादलराग, शेफालिका और 'जागो फिर एक बार' जैसी कविताएँ हिन्दी प्रकृति-काव्य के लिए एकदम नई चीजें थीं। निराला के अध्यात्म और उनके दर्शन के प्रति लोगों में चाहे जितना मतभेद रहा हो, चाहे जितना कोलाहल हुआ हो, प्रकृति-संबंधी ये कविताएँ प्रारम्भ से ही लोकप्रिय रहीं। इनके तो दो अर्थ हो ही नहीं सकते थे। इन कविताओं में हमें प्रकृति का स्वस्थ, नैसर्गिक रूप भी मिलता है और रूपकों के पीछे एक रहस्यमयी आदिशक्ति की भी सूचना मिलती है। 'शेफालिका' शेफाली की आत्मा का प्रतीक है। आत्मा के परमात्मविलास को कवि ने इस सुन्दर रूपक द्वारा स्पष्ट किया है। यह सब कुछ

है; परंतु प्रकृति का स्वतन्त्र चित्र भी कम मौलिक नहीं। पूर्ववर्ती हिन्दी साहित्य में प्रकृति को इस प्रकार दिगन्तव्यापी रूप में नहीं देखा गया था। कवि कहता है—

बन्द कंचुकी के सब खोल दिये प्यार से
यौवन-उभार ने
पल्लव-पर्यंक पर सोती शेफालि के।
मूक-आह्वान भरे लालसी कपोलों के
व्याकुल विकास पर
झरते हैं शिशिर से चुम्बन गगन के।
जागती प्रिया के नक्षत्रदीप कक्ष में
वक्ष पर संतरण-आशी आकाश है,
पार करना चाहता
सुरभिमय समीर-लोक,
शोक-दुःख जर्जर इस नश्वर संसार की क्षुद्रसीमा,
पहुँच कर प्रणय छाए
अमर विराम के
सप्तम सोपान पर।

'जुही की कली' में यही रूपक कुछ अधिक प्रौढ़ रूप में हमारे सामने आता है। यहाँ अनन्त की राह पवन है। पहली कविता में आत्मा अपने पूर्ण सौन्दर्य में जब खुल जाती है, तो उसे अनंत (ईश्वर = परमात्मा) का संस्पर्श मिलता है। इस कविता में पवन (परमात्मा, व्याप्ति का प्रतीक) क्रियमाण है। वैष्णव भक्त यह भी मानते हैं कि विश्वात्मा स्वयं पुष्टि की भावना में भरकर जीवात्मा के प्रति क्रियाशील होती है। सूरदास का सारा काव्य ही इस रहस्यवादी* दर्शन के आधार पर खड़ा है और रवीन्द्रनाथ ने अनेक कविताओं में इसी भाव की पुनरुक्ति की है। विशेषता यह है कि वैष्णव भक्ति-काव्य से इतर नये ही रूपकों

* इससे सूरदास को रहस्यवादी कवि समझने की भ्रांति न होनी चाहिए। सं

का प्रयोग है। राधा-कृष्ण और गोपियों के रूपक इतने प्रचलित हो गये थे, दार्शनिकों ने उसकी इतनी व्याख्याएँ कर दी थीं कि जनता इस रहस्यदर्शन को बड़ी सरलता से समझ लेती थी।

परन्तु इन प्राकृतिक रूपक-चित्रों से अधिक महत्त्वपूर्ण कवि की वे प्रकृति कविताएँ हैं जिनमें उसने प्रकृति के स्वच्छंद (Romantic) रूप को अनेक वर्णच्छटा में सँवार कर हमारे सामने उपस्थित किया है। जायसी के प्रकृति-वर्णन में जिस प्रकार का ऐश्वर्य है उस प्रकार का ऐश्वर्य इन कविताओं में भी मिलेगा। परन्तु भाषा, छंद और शैली नये युग के अनुरूप बदल गए हैं। संध्या का यह वर्णन कैसा ऐश्वर्य-प्रधान है :

अस्ताचल ढले रवि,
शशि-छवि विभावरी में
चित्रित हुई है देख
यामिनी-गंधा जगी,
एकटक चकोर-कोर दर्शनप्रिय,
आशाओं भरी मौन भाषा बहुभावमयी
घेर रहा चन्द्र को चाव से,
शिशिर-भार-व्याकुल कुल
खुले फूल झुके हुए,
आया कलियों में मधुर
मद-उर यौवन-उभार
पिउ-रव पपीहे प्रिय बोल रहे,
सेज पर विरह-विदग्धा वधू
याद कर बीतीं बातें, रातें मन-मिलन की
मूँद रहीं पलकें चारु,
नयन-जल ढल गये
लघुतर कर व्यथा-भार

स्वच्छन्दतावादी कवि जहाँ ऐश्वर्यपूर्ण प्रकृति-चित्रण के प्रति आकर्षित होते हैं, वहाँ वे प्राचीन युग के चित्रण की ओर भी जाते हैं। वर्तमान को कल्पना के स्वर्णजाल से बाँधना उतना ही प्रिय है जितना पुरातन काल के स्मृति-चित्रों से विलास। इसीलिए 'प्रसाद' और 'पंत' प्राचीनकाल के प्रकृति-चित्रण भी हमें देते हैं। 'जागरण' शीर्षक कविता में उपनिषद् काल की आश्रम-सभ्यता का वर्णन कवि इस प्रकार करता है—

हरित पत्रों से ढके
श्यामल छाया के वे
शांति के निविड़ नीड़,
मलयज-सुवास स्वच्छ,
पुष्परेणु-पूरित वे आश्रम तपोवन,
प्रांगण विभूति का—
बालिका की क्रीड़ा-भूमि—
कल्पना की धन्य गोद
सभ्यता का प्रथम विकासस्थल।

कभी कवि पंत की तरह निराला भी प्रकृति के व्यापारों के प्रति आश्चर्य प्रकट करते हैं; परन्तु यहाँ उनकी जिज्ञासा पंत की तरह बाल-जिज्ञासा नहीं है। उसमें वे एक सतर्क दार्शनिक के रूप में हमारे सामने आते हैं। परन्तु, जैसे 'प्रपात' शीर्पक कविता में, उनकी भाषा इतनी सरलता से उनके विचारों को वहन कर लेती है कि हमें आश्चर्य होता है। प्रपात से वे पूछते हैं—'घने वन के अंधकार के साथ तुम क्या खेल खेलते हो? वहाँ कौन-सा आनन्द तुम्हें मिलता है? अंधकार तुम्हें इतना प्यारा क्यों है? अंधकार और प्रकाश के साथ तुम्हारी जो यह आँखमिचौनी है यह बालकों का अविचार है या वृद्ध का साम्य व्यवहार।'

कवि प्रकृति की जरा-सी भंगिमा को भी किस सावधानी से पकड़ता है, यह इन पंक्तियों से प्रकट होगा—

तुम्हारा करता है गतिरोध
पिता का कोई पूत अबोध—
किसी पत्थर से टकराते हो
फिरकर जरा ठहर जाते हो;
उसे जब लेते हो पहचान
समझ जाते हो उस जड़ का सारा अज्ञान,
फूट पड़ती है ओठों पर तब मृदु मुसकान,
बस अजान की ओर इशारा करके चल देते हो,
भर जाते हो उसके अंतर में तुम अपनी तान।

कहीं-कहीं कवि नई मूर्तिमत्ता की स्थापना भी करता है और इस अमूर्त प्रकृति-विलास को मूर्त रूप दे देता है। शरद् और शिशिर दो आह्लादक ऋतुएँ हैं और इतनी आस-पास आती हैं कि कब शरद् गया, शिशिर आया, यह जानना कठिन है। फिर शिशिर को कविपरंपरा में त्रासपूर्ण मान लिया गया है। शरद्-शिशिर को दो बहनें बनाकर निराला ने हिंदी काव्य-जगत् के समक्ष एक नई रूढ़ि का विस्तार किया। 'वन कुसुमों की शय्या' शीर्षक कविता में कवि लिखता है—

सोती हुई सरोजअंक पर
शरत्-शिशिर दोनों बहनों के
सुख विलास-मद-शिथिल अंग पर
पद्मपत्र पंखे चलते थे,
मलती थी कर-चरण-समीरण धीरे-धीरे आती—
नींद उचट जाने के भय से थी कुछ कुछ घबराती।
बड़ी बहन वर्षा ने उन्हें जगाया,—
अंतिम झोंका बड़े जोर से एक

किंतु क्रोध से नहीं, प्यार से,
अमल-कमल-मुख देख,
मृदु हँसते हुए लगाया,—सोते से उन्हें उठाया।
वे उठीं, सेज मुरझाई,
एक दूसरी का थीं पकड़े हाथ,
और दोनों का ऐसा ही था अविचल साथ,
कभी-कभी वे लेती थीं अँगड़ाई,
क्योंकि नींद वह उचटी,
थी मदमाती आँखों में उनकी छाई।

यही नहीं, प्रकृति के व्यापक, विस्तृत, गंभीर रूपों का चित्रण भी निराला की सिद्ध लेखनी ने किया। है जहाँ पंत हाथीदाँत पर मीनाकारी करते हैं, वहाँ उनके विपरीत निराला रंग में कूची डुबो कर, महान् चित्रकार निकोलस रोरिक की तरह, दो-चार सीधे-टेढ़े स्पर्शों में ही प्रकृति के अनंत रूपों और उन रूपों की अनंत पटभूमि का आभास देते हैं। 'संध्यासुन्दरी' कविता में सन्ध्या का यह चित्रण कदाचित् सारी भारतीय भाषाओं की रचनाओं में बेजोड़ होगा। इतनी व्यापक चित्रपटी और इतनी सहज कला जहाँ छायावाद के युग में अलभ्य थी, वहाँ आज इतने वर्ष बाद आज भी दुष्प्राप्य है।

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्यासुन्दरी परी-सी
धीरे धीरे धीरे,
तिमिराञ्चल में चञ्चलता का नहीं कहीं आभास,
मधुर मधुर हैं दोनों उसके अधर—
किंतु जरा गंभीर—नहीं है उनमें हास-विलास।
हँसता है तो केवल तारा एक

गुँथा हुआ उन घुँघराले काले बालों से,
हृदय-राज्य की रानी का वह करता है अभिषेक।
अलसता की-सी लता
किंतु कोमलता की वह कली
सखी नीरवता के कंधे पर डाले बाँह
छाँह-सी अंबर पथ से चली।
नहीं बजती उसके हाथों में कोई वीणा,
नहीं होता कोई अनुराग-राग आलाप,
नूपुरों में भी रुनझुन रुनझुन रुनझुन नहीं;
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा "चुप चुप चुप"
है गूँज रहा सब कहीं—
व्योममंडल में—जगतीतल में—
सोती शांत सरोवर पर उस अमल कमलिनी-दल में—
सौन्दर्यगर्विता-सरिता के अति विस्तृत वक्षःस्थल में—
धीर वीर गंभीर शिखर पर हिमगिरि अटल अचल में—
उत्ताल तरंगाघात प्रलयघनगर्जन जलधि प्रबल में—
क्षिति में, जल में, नभ में, अनिल-अनल में—
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा "चुप चुप चुप"
है गूँज रहा, सब कहीं—

'यमुना के प्रति' और 'वसंत समीर' शीर्षक कविताएँ तुकांत हैं, परन्तु भावविस्तार और चित्रण की व्यापकता की दृष्टि से ये कविताएँ इसी श्रेणी में आती हैं जिस श्रेणी में 'संध्यासुन्दरी।' निराला की कला के संबंध में विचार करते हुए हम इन कविताओं की विस्तृत विवेचना करेंगे।

परन्तु छायावाद-काव्य के अन्य प्रतिनिधि कवियों की प्रकृति संबंधी रचनाओं और निराला की इसी श्रेणी की कविताओं

ग्रहण देश-काल का ।
निर्वीज हुआ मैं
पाया स्वरूप निज
मुक्ति रूप से हुई ।
नीड़स्थ पत्नी की
तम-विभावरी गई;
विस्तृत अनन्त पथ
गगन का मुक्त हुआ,
मुक्त पंख उज्ज्वल प्रभात में
ज्योतिर्मय चारों ओर
परिचय सब अपना ही ।
स्थिति में आनन्द में चिरकाल
जाल मुक्त ।

आनन्दमय चिदात्मतत्त्व में सृष्टि की इच्छा हुई । उसने त्रिगुणात्मक रूप रचे; फिर मन, फिर बुद्धि, चित्त, अहंकार पंचभूत, रूप-रस-गंध-स्पर्श विकसित किये । यह इच्छा प्रेम का एक स्वरूप थी । उसमें ज्ञान का आकर्षण था, मोह नहीं था । उसने अपनी माया का प्रसार किया; परन्तु प्रेम के रूप में, छलना के रूप में नहीं—

ज्योति वह दिखाती थी
संचालित करती थी उसी की ओर

इस प्रकार कवि यह बताना चाहता है कि माया असत्य है, यदि उसे किसी हद तक सच भी माना जाय तो वह आनंद की अभिव्यक्ति ही है जो प्रेम का रूप धारण किए है। हमारे मन ने उसे विकृत रूप से ग्रहण किया । माया का शुद्ध रूप, प्रेम-रूप, समझने पर 'सोऽहम्' 'अरावप्युचित्तम्' 'तत्त्वमसि'

मंत्रों द्वारा एकत्व में बहुत्व के विश्लेषण की बात समझ लेने पर परमाणुओं के प्रतिघातों से बचा जा सकता है।

कवि ने किस दार्शनिक सिद्धांत का सहारा लिया है, यह बात समझने के लिये यह कविता महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि यहाँ हमें वे विचार मिल जाते हैं जिन्होंने उसकी रचनाओं के एक बड़े अंश में कवित्वपूर्ण रूप प्राप्त किया। इसी कविता में निराला ने सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में एक दूसरा दृष्टिकोण रखा है —"शब्दज संसार यह"। 'गीतिका' की भूमिका में एवं गीतों में इस विचार की पुष्टि हो गई है।

'परिमिल' और 'गीतिका' की कविताओं के अध्ययन से पाठक इस सिद्धांत पर पहुँचता है कि निराला वेदांती हैं परंतु उनका 'वेदांत' या अद्वैतवाद विशुद्ध नहीं रह सका। उसमें भक्ति की भावना मिल गई है। विशुद्ध वेदांत-ज्ञान कविता का विषय नहीं हो सकता। इस भक्ति के साथ सूफी प्रेमभावना का भी सम्मिश्रण है। एक प्रकार से अद्वैतवाद के मेरुदंड को पकड़े हुए भी निराला ने पिछले युगों की कितनी ही धाराओं का सहारा लिया है। 'परिमल' के 'पंचवटी-प्रसंग' में राम के इस कथन में कई दार्शनिक दृष्टिकोणों का समन्वय करने की चेष्टा की गई है।

भक्ति-योग-कर्म-ज्ञान एक हैं
यद्यपि अधिकारियों के निकट भिन्न दीखते हैं।
एक ही है दूसरा नहीं है कुछ—
द्वैत-भाव ही है भ्रम।
तो भी प्रिये,
भ्रम के ही भीतर से
भ्रम के पार जाना है।

मुनियों ने मनुष्यों के मन की गति
सोच ली थी पहले ही।
इसीलिए द्वैत भाव-भावुकों में
भक्ति की भावना भरी।

एक प्रकार से यह कोई तर्क नहीं हुआ; परंतु तर्क द्वारा समन्वय नहीं किया जा सकता।

निराला का सारा काव्य ही अद्वैतभक्ति दर्शन से प्रभावित एवं संचालित है। वे प्रकृति और परमसत्ता में अद्वैतता मानते हैं। परंतु उनका दर्शन ज्ञानमूलक होने के कारण महादेवी या जायसी की तरह वह प्रकृति परमात्मा का एकात्म नहीं कर पाते, भिन्नता का भान बना रहता है।

प्रकृति के विषय में रहस्यवादी दृष्टिकोण रखने के कारण ऐसे कवियों के प्रकृति के चित्रण में कई प्रकार की विशेषताएँ आ जाती हैं। एक तो कवि प्रकृति का यथार्थ वर्णन नहीं कर सकता। उसके रंग साधारण रंग से कहीं गहरे होते हैं। उसके लिये पवन में जैसे केसर घुला है। एक प्रकार से उसकी इंद्रियाँ सूक्ष्मतम हो जाती हैं और उसकी इंद्रियों के विषय में विपर्यय हो सकता है। वह रंगों को सुनता है और स्वरों को देखता है। उसका प्रकृति-चित्रण प्रकृति के व्यापारों को बढ़ा-चढ़ा देता है, या उनमें उलट-पुलट कर देता है। जायसी सिंहलदीप के सरोवर का वर्णन करते हैं—

फूले कुमुद सेत उजियारे। मानहुँ उए गगन महँ तारे॥
उतरहिं मेघ चढ़हिं लेइ पानी। चमकहि मच्छ बीजु कै बानी॥
पौरहिं पंख सुसंगहि संगा। सेत पीत राते बहुरंगा॥
नग अमोल तेहि तालहि दिनहिं बरहिं जस दीप
जो मरजिया होइ तहँ सो पावै वह सीप।

एक दूसरी कविता शेफालिका में शेफाली वासकसज्जा है। प्रेमी गगन (अनन्त का सूचक) उसके लिए शिशिर के चुंबन भेजता है। शोक-जर्जर इस नश्वर संसार की क्षुद्र सीमा को पार कर प्रियालिंगन में प्रेमिका आत्मा आध्यात्मिक विकास की सबसे ऊँची सीमा तक (अमर विराट् के अंतिम सोपान पर) पहुँच जाती है। इस मिलन के फलस्वरूप वह भवबंधन से मुक्त होती है। कहती है—

पाती अमर प्रेम धाम
आशा की प्यास एक रात में भर जाती है।
सुबह को आली, शेफाली झर जाती है।

शेफाली का झर जाना, आत्मा का पृथ्वी के विकार के संबंध को छोड़ देना ही मनुष्य के ईश्वर-प्रेम की परिणति है।

कुछ कविताओं में प्रकृति परमात्मतत्त्व की प्राप्ति के लिए—पूर्ण विकास के लिए—तप करती है। "सोचती अपलक आप खड़ी।" और "सूखी री यह डाल वसन वासन्ती लेगी" शीर्षक कविताओं में यही दृष्टिकोण विकसित हुआ है। फलस्वरूप प्रकृति में जो वसंत आता है, वह प्रियमिलन की सूचना है—

अमरण भर वरण गान
वन वन उपवन उपवन
जागी छवि, खुले प्राण
वसन विमल तनु वलकल
पृथु उर-सुर पल्लवदल
उज्ज्वल दृग कलिकल पल
निश्चल, कर रही ध्यान

प्रकृति के प्रति निराला का एक और दृष्टिकोण भी है। जब वे प्रकृति में परमात्मतत्व का अनुभव करने लगते हैं तब प्रकृति

का अपरोक्ष रूप अधिक स्पष्ट होकर निखरने लगता है और एक सुन्दर स्त्री-रूप में उसकी कल्पनामूर्त्ति सामने आती है। यही वास्तव में शुद्ध वेदान्ती दृष्टिकोण है जिसके अनुसार प्रकृति और पुरुष में कोई भेद नहीं। उन्होंने प्रकृति में अव्यक्त के सौन्दर्य की सुन्दर व्यंजना की है—

रही आज मन में
वह शोभा जो देखी थी वन में
उमड़े ऊपर नवघन, घूम-घूम अंबर
नीचे लहराता वन हरित श्याम सागर
उड़ा वसन वहती रे पवन तेज क्षण में
नदी तीर, श्रावण, तट नीर छाप वहता
नील छोर का हिंदोर चढ़ी पैंग रहता
गीत मुखर तुम नवम्बर विद्युत ज्यों घन में
साथ साथ नृत्यपग कलि कलि की अप्सरा
ताल लगाएँ देतीं करतल-पल्लव-धरा
भक्त मोग चरणों के नीचे नत तन में

निराला की कविता इस प्रकार के सुन्दर प्राकृतिक मनोभावों और प्रकृति-चित्रणों से भरी हुई है। नये काव्य में प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण ही वदल गया। हम कह चुके हैं कि इस परिवर्तन के अग्रगण्य पंडित श्रीधर पाठक थे: परंतु द्विवेदीयुग में जिस तरह का इतिवृत्तात्मक वर्णन-प्रधान प्रकृति-संबन्धी काव्य चल रहा था, वह हिंदी कविता को बहुत दूर तक नहीं ले जाता। छायावादी कवियों ने नई भाषा, नई शैली, नए छंद ही नहीं गढ़े, उन्होंने मनुष्य, जीवन, प्रकृति और परमात्मा को देखने का अपना एक नया दृष्टिकोण ही विकसित किया। उनकी कविता को अंग्रेजी के उन्नीसवीं शताब्दी के रोमांटिक काव्य या रवीन्द्र-काव्य की नकल मात्र कहकर ही टाला नहीं जा सकता। इन

छायावादी कवियों ने वर्जित प्रदेशों में प्रवेश किया और प्रकृति-चित्रण ऐसा ही एक प्रदेश था। निराला इन छायावादी कवियों में अग्रगण्य हैं।

३—प्रेम

'परिमल' में मानव-प्रेम संबंधी रचनाएँ बहुत थोड़ी हैं। द्विवेदी युग के काव्य में प्रेमी लांछित विषय था। इसलिए पंत, प्रसाद और निराला के काव्य में कवि व्यक्तिगत रूप से प्रेम का प्रकाश नहीं करता। जहाँ प्रेम का उल्लेख है भी, वहाँ एक ही साथ अलौकिक और पारलौकिक है। छायावाद-काव्य की प्रेम संबंधी रचनाओं में जो लाक्षणिकता जान पड़ती है, वह इसी द्वैत के कारण है। छायावाद-काव्य की सामाजिक पृष्ठभूमि से यह पता चलेगा कि १९०९ ई० से १९३० तक इस काव्य का प्रारम्भिक चरण समाप्त हुआ। इस समय तक नारी के बंधन उतने ही दृढ़ बने हुए थे, जितने द्विवेदीयुग के काव्य में। १९३० के बाद गांधीजी की प्रेरणा से भारतीय नारी घर की चहार दीवारी से बाहर निकल कर जीवन के क्षेत्र में आई और नरेन्द्र, अंचल और भगवतीचरण वर्मा की कविताओं और गीतों में उसने पहली बार वाणी का स्वतंत्र प्रकाश पाया। 'अनामिका' की कुछ कविताओं जैसे 'सरोजस्मृति' में, कवि ने अपनी व्यक्तिगत अनुभूति का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है; परन्तु इस अनुभूति का प्रेम से कोई संबंध नहीं है। 'परिमल' की कुछ कविताओं में प्रच्छन्न उद्‌गार अवश्य मिलते हैं। कवि कहता है—

एक दिन थम जायगा रोदन
तुम्हारे प्रेम-अंचल में,
लिपट स्मृति बन जायँगे कुछ कन—
कनक सींचे नयन-जल में (निवेदन)।

याद थी आई
एक दिन जब शांत
वायु थी, आकाश
हो रहा था क्लांत
ढल रहे थे मलिन-मुख रवि, दुख-किरण
पद्म-मन पर थी, रहा अवसन्न वन,
देखती यह छवि खड़ी मैं, साथ वे
कह रहे थे हाथ में यह हाथ ले
'एक दिन होगा
जब न मैं हूँगा...'

(शेष)

इन कविताओं के पीछे जो दारुण दुख के स्वर बज रहे हैं, उनके पीछे निराला के पारिवारिक जीवन की भयंकर निष्फलता छिपी है। विवाह के कुछ वर्षों बाद ही निराला सदा के लिए विधुर हो गए। अतः प्रेम के कुछ स्मृतिचित्रों के अतिरिक्त उनके काव्य में और कुछ मिलना कठिन था। 'प्रिया के प्रति' और 'उसकी स्मृति' शीर्षक रचनाएँ इसी श्रेणी की हैं। प्रिया की स्मृति में विभोर कवि स्मरण करता है—

मन्द पवन के झोंको से लहराते काले बाल
कवियों के मानस की मृदुल कल्पना के-से जाल
वह विचर रही थी मानस की प्रतिमा-सी
उतरी इस जगतीतल में
वन के फूलों को चुनकर बड़े चाव से
रखती थी लघु अंचल में

+ + +

क्या जाने उसने किसको पहनाई थी
अपने फूलों की सुंदर अपनी माला,
क्या जाने किसके लिये यहाँ आई थी
वह सुर-सरिता-सैकत-सी गोरी बाला ?
वह भटक रही थी वन में मारी-मारी,
था मिला उसे क्या उसका वही अनंत ?
वह कली सदा को चली गई दुनिया से,
पर सौरभ से है पूरित आज दिगन्त !

(उसकी स्मृति)

वियोग में संभाव्य मिलन की स्मृति कवि की कल्पना के पंख खोल देती है। मृत्यु के पार के अज्ञात देश को किसने देखा है; परन्तु मनुष्य की आशा तो हार नहीं मानती। मनुष्य की तृष्णा का अंत नहीं है। इसीलिए कवि प्रिया के पुनर्मिलन के चित्र भी सँजोता है—

एक बार भी यदि अजान के
अंतर से उठ आ जातीं तुम
एक बार भी प्राणों की तम—
छाया में आ कह जातीं तुम
सत्य हृदय का अपना हाल
कैसा था अतीत वह अब यह
बीत रहा है कैसा काल !
मैं न कभी कुछ कहता,
बस, तुम्हें देखता रहता !
चकित, थकी, चितवन मेरी रह जाती
दग्ध हृदय के अगणित व्याकुल भाव
मौन दृष्टि की ही भाषा कह जाती !

तप वियोग की चिर ज्वाला से
कितना उज्ज्वल हुआ हृदय यह,
पिष्ट कठिन साधना-शिला से
कितना पावन हुआ प्रणय यह।
मौन दृष्टि सब कहती हाल,
कैसा था अतीत मेरा, अब
बीत रहा यह कैसा काल।
क्या तुम व्याकुल होतीं?
मेरे दुःख पर रोतीं?
मेरे नयनों में न अश्रु प्रिय आता
मौन दृष्टि का मेरा चिर अपनाव
अपना चिर-निर्मल अंतर दिखलाता।

'स्वप्नस्मृति' में इसी बात को कुछ लाक्षणिक ढङ्ग से कवि इस प्रकार कहता है—

आँख लगी थी पल भर,
देखा, नेत्र छलछलाए दो
आए आगे किसी अजाने दूर देश से चल कर।
मौन भाषा थी उनकी किन्तु व्यक्त था भाव,
एक अव्यक्त प्रभाव
छोड़ते थे करुणा के अन्तस्तल में क्षीण,
सुकुमार लता के वाताहत मृदु छिन्न पुष्प-से दीन।
भीतर नग्न रूप था घोर दमन का,
बाहर अचल धैर्य था उनके उस दुखमय जीवन का;
भीतर ज्वाला धधक रही थी सिंधु अनल की
बाहर थीं दो बूँदें—पर थीं शांत भाव में निश्चल—
विकल जलधि के जर्जर मर्मस्थल की।

इस कविता की अज्ञात दो आँखें स्वर्गीया प्रिया-प्रकृति पत्नी की ही आँखें हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 'परिमल' में प्रेम का स्वस्थ चित्रण नहीं है। केवल परलोक-गत पत्नी से सम्बन्धित कुछ स्मृति-चित्र हैं। यह एक आश्चर्य की बात है कि छायावाद के कवियों ने जहाँ सब बन्धनों को छोड़ कर भाषा, भाव, छंद सबको स्वतन्त्रता प्रदान कर दी, वहाँ वे नारी के प्रति केवल कामुक एवं अतींद्रिय और रहस्यमय सम्बन्ध ही स्थापित कर सके। यह अवश्य है उनकी सारी कल्पनाओं पर नारी छाई हुई थी। उनकी उपमाएँ-उत्प्रेक्षाएँ, उनके रूपक, उनके भावविलास सब इसी बात के प्रमाण के रूप में उपस्थित हो सकते हैं। परंतु नारी-कल्पना-जीवी होते हुए भी ये कवि न साधारण प्रेमविकास के चित्र उपस्थित कर सके, न नारी का सहज स्वाभाविक चित्रण ही इन्होंने किया। पंत, निराला और प्रसाद के काव्य में नारी अतिमानवीय सृष्टि है। कोई भी कवि अपने युग की सामाजिक धारणा से ऊपर नहीं उठ सकता, छायावाद के कवि की भी अपनी सीमाएं थीं। वह नारी को भावुकता प्रधान अतींद्रिय दृष्टि से देखता था। वह उसके लिए 'रूप की तन्वि' थी, 'सजनि, सहचरि, माँ, प्राण' थी। परन्तु न नारी के रूप-सौन्दर्य के इतने सुन्दर और उत्कृष्ट चित्र इस काव्य में मिलेंगे जितने कृष्णकाव्य में, न इस प्रेयसी के अतिरिक्त नारी के अन्य रूप ही हमें दिखलाई पड़ेंगे। पंत की एक पंक्ति है—'योनिमात्र रह गई मानवी।' इस पंक्ति से छायावादी काव्य के नारी-सम्बन्धी दृष्टिकोण की व्याख्या हो जाती है।

४—नारी-सौन्दर्य

जैसा हमने ऊपर बताया है, छायावाद-काव्य में नारी के

रूप चित्रण की ओर विशेष आग्रह नहीं है। इसी से रूप-चित्रण कम मिलेगा। जैसे-जैसे नारी के प्रति नए कवि की वासना स्पष्ट रूप पाती गई, वैसे-वैसे चित्रण अधिक स्पष्ट होता गया। परन्तु इस स्थूल रूप-चित्रण में भी अनेक मानसिक तत्वों का समावेश कर दिया गया। 'परिमल' में नारी-सौन्दर्य के चित्र अधिक नहीं हैं। जो हैं, वे अप्रासंगिक हैं। पंचवटी-प्रसंग में शूर्पनखा का रूप-चित्रण इस प्रकार है—

प्रकृति की सारी सौन्दर्यराशि लज्जा से
सिर झुका लेती जब देखती है मेरा रूप,—
वायु के झकोरे से वन की लताएँ सब
झुक जातीं—नजर बचाती हैं,—
अंचल से मानों हैं छिपाती मुख
देख यह अनुपम स्वरूप मेरा।
बीच-बीच-पुष्प-गुँथे किन्तु तो भी बंधहीन
लहराते केश-जाल, जलद-श्याम से क्या कभी
समता कर सकती है
नील-नभ तड़ित्तारिकाओं का चित्र ले
क्षिप्रगति चलती अभिसारिका यह गोदावरी?
हरगिज़ नहीं।
कवियों की कल्पना तो
देखती ये भौंएँ बालिका-सी खड़ी
छूटते हैं जिनसे आदिरस के सम्मोहन शर
वशीकरण-मारण-उच्चाटन भी कभी-कभी।
हारे हैं सारे नेत्र नेत्रों को हेर-हेर—
विश्व भर को मदोन्मत्त करने की मादकता
भरी है विधाता ने इन्हीं दोनों नेत्रों में।
मीन-मदन फाँसने की वंशी-सी विचित्र नासा—

फूलदल तुल्य कोमल लाल ये कपोल गोल—
चिबुक चारु और हँसी बिजली सी,—
योजन-गंध-पुष्प जैसा प्यारा यह मुखमण्डल—
फैलते पराग दिङ्मंडल आमोदित कर—
खिंच आते भौंरे प्यारे।
देख यह कपोत-कंठ
बाहुवल्ली कर-सरोज
उन्नत उरोज पीन—क्षीण कटि—
नितम्ब-भार—चरण सुकुमार—
गति मन्द मन्द,
छूट जाता धैर्य ऋषि मुनियों का,
देवों-भोगियों की तो बात ही निराली है।

ऊपर नारी-सौन्दर्य का जो चित्र है उसमें भक्तिकाव्य और रीतिकाव्य की नारी-सौन्दर्य-सम्बन्धी मूर्तिमत्ता को स्वीकार कर लिया गया है। 'अनामिका' और 'तुलसीदास' में सौन्दर्य के और भी उत्कृष्ट चित्र हैं, परन्तु निराला की कला परुष है, वह नारी-रूपों से अधिक मोह नहीं करती। कालिदास और रवीन्द्रनाथ की कला के उपासक होने के नाते निराला को नारी-सौन्दर्य के अनेक उत्कृष्ट चित्र देने चाहिये थे; परन्तु स्वयं निराला का परुष-प्रधान व्यक्तित्व उन्हें कोरे भावुक, रोमांटिक चित्रों से ऊपर उठा देता है। जहाँ जहाँ नारी-सौन्दर्य को उनकी लेखनी ने स्पर्श किया है, वहाँ वे कालिदास और रवीन्द्रनाथ का ऋण लेकर चले हैं, उनसे आगे नहीं बढ़ गये तो उनसे बहुत पीछे भी नहीं रहे हैं। परन्तु निराला मूलतः अपने व्यक्तित्व, प्रकृति, देश-प्रेम और दर्शन-मनोविज्ञान को लेकर ही सफल कवि बन सके हैं।

५—देशप्रेम की कविता

हिन्दू राष्ट्रीयता के उन्नायक रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द की मंत्र-छाया में रह कर और वंग-विच्छेद काल के बंगाल का परिचय प्राप्त कर कोई भी कवि देशप्रेम की स्फूर्ति से अलग नहीं रह सकता था। 'परिमल' से पहले ही निराला 'दिल्ली' जैसी कविताएँ लिखकर देश-भक्तिपूर्ण काव्य की एक नई शैली दे चुके थे। 'परिमल' की कुछ बहुत सुन्दर कविताओं में निराला उत्कृष्ट शिल्पी-चित्री के साथ-साथ उत्कृष्ट देशप्रेमी के रूप में हमारे सामने आते हैं। 'जागो फिर एक बार' और 'महाराज शिवाजी का पत्र' शीर्षक रचनाएँ हिन्दी कविता की बहुमूल्य सम्पत्ति हैं। इन दोनों कविताओं में कवि अपने युग की राष्ट्रीय चेतना से प्रभावित जान पड़ता है; परन्तु इस चेतना को उसने कला और दर्शन के माध्यम से देखा है, केवल राजनीति के दृष्टिकोण से नहीं। कवि गर्जना करता है—

जागो फिर एक बार !
सिंही की गोद से
छीनता रे शिशु कौन ?
मौन भी क्या रहती वह
रहते प्राण ? रे अजान
एक मेष-माता ही
रहती है निर्निमेष—
दुर्बल वह—
छिनती संतान जब
जन्म पर अपने अभिशप्त
तप्त आँसू बहाती है ;—
किन्तु क्या,
योग्य जन जीता है,

पश्चिम की उक्ति नहीं—
गीता है, गीता है—
स्मरण करो बार बार

'शिवाजी के पत्र' में यही गर्जना ऐतिहासिक व्यक्तियों का स्पंदन पाकर और भी प्रभावशाली हो जाती है। इस कविता में शिवाजी नाटक के मुख्य पात्र हैं, परन्तु इस पत्र में जो आदर्शों का संघर्ष दिखाया गया है, वह आज इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है। शिवाजी और औरङ्गजेब के विरोधी चरित्र कविता में नाटकीयता का सामावेश कर देते हैं। कविता में बहुत कुछ ऐसा है जो आज की वीथिका में राजनीतिक सत्य जान पड़ेगा—

छोड़ो यह हीनता,
साँप आस्तीन का,
फेंको दूर
मिलो भाइयों से,
व्याधि भारत की छुट जाय।
बँधे हो, बहा दो ना
मुक्त तरंगों में प्राण,
मान, धन, अपनापन;
कब तक तुम तट के निकट
खड़े हुए चुपचाप
प्रखर उत्ताप के फूल-से रहोगे म्लान
मृतक, निष्प्राण, जड़।
टूट पड़ो—बह जाओ—
दूर तक फैलाओ अपनी श्री, अपना रंग,
अपना रूप, अपना राग।
व्यक्तिगत भेद ने
छीन ली हमारी शक्ति।
कर्षण-विकर्षण भाव

जारी रहेगा यदि
इसी तरह आपस में,
नीचों के साथ यदि
उच्च जातियों की घृणा,
द्वन्द्व, कलह, वैमनस्य,
क्षुद्र उर्मियों की तरह
टक्कर लेते रहे तो
निश्चय है,
वेग उन तरंगों का
और घट जायगा—
क्षुद्र से वे क्षुद्रतर होकर मिट जायँगी,
चंचलता शांत होगी,
स्वप्न-सा विलीन हो जायगा अस्तित्व सब,
दूसरी ही कोई तरङ्ग फिर फैलेगी।

आज के राजनीतिक संघर्षों की भूमिका में कवि की ये उक्तियाँ विशेष अर्थ रखती हैं। आज हम आपस के लड़ाई-झगड़ों के कारण दुर्बल हो रहे हैं। सात समुद्र पार की एक विदेशी सत्ता हमारी दुर्बलताओं के कारण ही हम पर शासन कर रही है। तब निराला का यह कथन विशेष अर्थ रखता है—

जितनी विरोधी शक्तियों से
हम लड़ रहे हैं आपस में,
सच मानो खर्च है यह
शक्तियों का व्यर्थ ही।

छायावाद काव्य में इतना भी राजनीतिक इंगित निराला को छोड़ कर और किसी कवि के काव्य में नहीं है। पंत और प्रसाद और महादेवी का सारा काव्य (पंत की नई प्रगतिवादी कविताओं

को छोड़कर) राजनीतिक चेतना से हीन है। इस राजनीतिक इंगित और परुषकंठ ने भी निराला के काव्य को लोकप्रिय बनाने में सहायता दी।

६—सामान्य मानव-भूमि

'परिमल' में हिंदी काव्य ने पहली बार सामान्य मानव-भूमि की ओर देखा था। अब तक काव्य के विषय महान् थे। परंतु निराला के काव्य में पहली बार दरिद्रों, हीन मानवों और उपेक्षितों के प्रति सहानुभूति जगी—कहीं खुले रूप में, कहीं लाक्षणिक ढङ्ग पर। इन्हीं कविताओं के बल पर आज हम निराला को नये प्रगतिवाद काव्य का नायकत्व देते हैं। अधिकांश छायावादी कवि अपनी स्वप्नों की रंगीनी में खो गये। उन्होंने बाहर के जगत् से अपना नाता तोड़ दिया; परन्तु निराला के संबंध में यह बात लागू नहीं है। वह खुली आँखों से अपने चारों ओर के दुःखों को देखते हुए, दुःखियों को अपने कवि-हृदय की सारी सहानुभूति दे सके हैं। उन कविताओं में न छायावादी काव्य की रंगीनी है, न आदर्शवादिता, न जड़ कल्पना। यह एक नई श्रेणी की चीजें हैं। आज की नई कविता की टेकनीक इन कविताओं से अधिक भिन्न नहीं है। 'भिक्षुक' निराला की प्रसिद्ध कविता है—

वह आता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।

साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाए,
बाएँ से वे मलते हुए पेट को चलते,
और दाहिना दयादृष्टि पाने की ओर बढ़ाए।
भूख से सूख ओंठ जब जाते
दाता—भाग्यविधाता से क्या पाते ?
घूँट आँसुओं के पीकर रह जाते।
चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।

'विधवा' शीर्षक कविता में कवि एक अछूते विषय को लेकर नये काव्य की लीक डालता है। विधवा की पवित्रता और उसके करुणापूर्ण जीवन का चित्र एक ही साथ उपस्थित होता है :—

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी,
वह दीपशिखा सी शांत, भाव में लीन,
वह क्रूर काल-तांडव की स्मृति रेखा-सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन—
दलित भारत की विधवा है।
षड्‌ऋतुओं का शृङ्गार,
कुसुमित कानन में नीरव पद संचार,
अमर कल्पना में स्वच्छंद विहार—
व्यथा की भूली हुई कथा है,
उसका एक स्वप्न अथवा है।
उसके मधु सुहाग का दर्पण
जिसमें देखा था उसने
एक बार बिम्बित अपना जीवन-धन,
अबल हाथों का एक सहारा—
लक्ष्य जीवन का प्यारा—वह ध्रुवतारा—

दूर हुआ वह बहा रहा है
उस अनंत पथ से करुणा की धारा।

'रास्ते के फूल से' कविता में यही विषय रूपक द्वारा उपस्थित किया गया है। परंतु कवि का व्यंग कितना सचेष्ट, कितना तीखा है, यह भी स्पष्ट है। रास्ते में पड़ा मुरझाया कुसुम कवि की सहज करुणा को जाग्रत कर देता है। परंतु इसके साथ ही उसे मनुष्य के स्वार्थ की याद आती है। कवि मुरझाये फूल को मनुष्य के स्वार्थ की याद दिलाता है—

ढके हृदय में स्वार्थ लगाये ऊपर चन्दन,
करते हुए नदीश-नंदिनी का अभिनंदन,
तुम्हें चढ़ाया कभी किसी ने था देवी पर,
दिन भर में जब मुरझाए,
रूप-सुवास-रंग चरणों पर यद्यपि अर्पित कर पाये,
किन्तु देख कर तुम्हें जरा से जर्जर,
फेंक दिया पृथ्वी पर तुमको
रक्खे हुए हृदय में अपने उस निर्दय ने पत्थर?

इस प्रकार नायिका की वियोग-व्यथा, श्वासों-निःश्वासों और प्रेम की करुणापूर्ण परिस्थितियों से बाहर निकल कर हिंदी के कवि ने पहली बार जनता के दुःखों को काव्य का विषय बनाया। महान् को छोड़ कर तुच्छ और अपदार्थ की ओर सहानुभूति से देखने की प्रवृत्ति बलवती हुई। निराला इस विषय में अग्रगण्य रहे। जिस देश में कविता का काम देव-प्रशंसा, चाटुकारिता या नायक-नायिका की चुहलें रहा हो, उसके आगे निराला ने एक नया आदर्श उपस्थित किया है। वह भी पंद्रह वर्ष पहले। कविता का कोई विषय नहीं—सभी कविता के विषय हैं—साधारण कण से लेकर हिमालय तक और क्षुद्र भिक्षुक से लेकर भगवान्

तक। यह एकदम नया संदेश था; परंतु समसामयिक कविता रंगीन सपनों में फँसी रही और निराला का यह नया संदेश उस समय सर्वमान्य नहीं हो सका। वास्तव में, पुरानी कविता की जितनी कड़ियाँ निराला ने तोड़ी हैं, उतनी किसी दूसरे कवि ने नहीं तोड़ी। छंदों की मुक्ति के प्रवर्तक के रूप में तो उनकी प्रसिद्धि है ही; परंतु आधुनिक कविता के विषय-विकास की दृष्टि से भी वह उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं।

७—दर्शन

निराला दार्शनिक कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। वह अद्वैत वेदांती हैं। रामकृष्ण परमहंस के शिष्यों में वर्षों रह चुके हैं। उनकी प्रवृत्ति भी दार्शनिकता की ओर है। परंतु इन ज्ञातव्य बातों से निराला की कविता के दर्शनवाले अङ्ग पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। परंतु निराला की कविता की सबसे दृढ़ भित्ति उनका दार्शनिक चिंतन है, इसे कदाचित् कोई भी समीक्षक अस्वीकार नहीं करेगा। 'पंचवटी प्रसंग' में उन्होंने जीव, ब्रह्म, ज्ञान, कर्म आदि आध्यात्मिक विषयों का विवेचन किया है; परंतु सच तो यह है, कि कवि की दार्शनिक चिंता में हमें उस प्रकार की क्रम-शृंखला नहीं मिलती जितनी दार्शनिक की इसी प्रकार की विचारधारा में। आधुनिक हिंदी साहित्य की पृष्ठभूमि में कबीर और सूरदास-तुलसीदास प्रभृति कवियों का सारा काव्य आ जाता है और इन कवियों के अध्ययन के कारण नए काव्य में दार्शनिक चिंता-पद्धति ही चल पड़ी है जिसके पीछे स्वयं कवि की अनुभूति का कोई बल नहीं।

निराला का विश्वास है कि दृष्ट सत्ता के पीछे एक अदृष्ट महान् सत्ता है। इसी अदृष्ट सत्ता के प्रति कवि ने प्रार्थना-त्मक गीत लिखे हैं। संभव है जिसे निराला ने 'जीवन-खेवन'

हार, (खेवा') कहा है वह रवीन्द्रनाथ का 'जीवनदेवता' हो। परन्तु निराला की सारी आध्यात्मिक कविताएँ इसी स्वीकृति को लेकर आगे बढ़ती हैं। 'जूही की कली' और 'शेफालिका' कविताओं में जीवात्मा का इस अदृष्ट सत्ता से संबंध दिखाया गया है। दोनों परस्पर अनन्य रूप से आश्रित हैं। कहीं अनन्त सांत की खोज में निकल पड़ता है, कहीं जीव के पूर्णतम विकास प्राप्त कर लेने पर परमात्मा स्वयं सहज रूप में प्राप्त हो जाता है। जीव-ब्रह्म का यह अनन्य संबंध 'तुम और मैं' शीर्षक वाली कविता से एकदम स्पष्ट हो जाता है। रवीन्द्रनाथ और इक़बाल ने भी इन्हीं शीर्षकों से कविताएँ लिखी हैं, परन्तु निराला की कविता में अनेक रूपकों के द्वारा इस संबंध को सहज में ही उभार दिया है। ब्रह्म के प्रति जीव के संबंध को किसी एक रूपक से स्पष्ट नहीं किया जा सकता। अनेक कड़े-कोमल संबंधों से जीव ब्रह्म से बँधा हुआ है। कवि कहता है—

तुम आशा के मधुमास
　　　　और मैं पिक-कल-कूजन तान,
तुम मदन पंच-शर-हस्त
　　　　और मैं हूँ मुग्धा अनजान!
　तुम अंबर, मैं दिग्वसना,
　तुम चित्रकार, घट पटल श्याम,
　मैं तड़ित् तूलिका रचना!
तुम रण-तांडव-उन्माद नृत्य
　　　　मैं मुखर मधुर नूपुरध्वनि,
तुम नाद-वेद ओंकार सार
　　मैं कवि-शृङ्गार शिरोमणि।
　तुम यश हो, मैं हूँ प्राप्ति,

तुम कुंद इन्दु अरविंद शुभ्र
तो मैं हूँ निर्मल व्याप्ति।

परन्तु जहाँ भाव भाषा के साथ पूर्ण रूप से गुंफित नहीं हो सके हैं, वहाँ कवि की कविता इतनी जटिल हो गई है कि साधारण पाठक उसे समझ ही नहीं सकता। 'परलोक' शीर्षक कविता है—

नयन मुँदेंगे जब, क्या देंगे ?
चिर-प्रिय- दर्शन ?
शतसहस्र-जीवन-पुलकित, प्लुत
प्यालाकर्षण ?
अमरण-रणमय मृदु-पद-रज ?
विद्युत्-घन-चुम्बन ?
निर्विरोध, प्रतिहत भी
अप्रतिहत आलिङ्गन ?

"जब नयन मुँदेंगे (जब मैं मृत्यु को प्राप्त हूँगा) तब क्या वे चिरप्रिय मुझे दर्शन देंगे, जिनका दर्शन मात्र ही सहस्रों जीवनों को पुलकित करने वाला है, जिनमें सैकड़ों मदिरा के प्यालों की भाँति मादकता है ? जिनकी पदरज ही अमृत्व-दान करती है ? जिस प्रकार विद्युत और घन का गहरा प्रेम-विनिमय है, वैसा ही क्या मेरा-उनका प्रेम-विनिमय होगा ? उस आलिंगन में कोई विरोध नहीं होगा, बाधा-बंधनविहीन, अप्रतिहत वह आलिंगन होगा ? क्या अंत में इस तरह ही यह मिलन सम्भव नहीं हो सकेगा ?"

सच तो यह है कि मूल भाव में कहीं भी अस्पष्टता नहीं है। जो अस्पष्टता है, वह भाव-प्रकाशन-शैली में। वास्तव में, जिस समय यह कविता लिखी गई थी, उस समय तक हिन्दी कवित की भाषा इतनी प्रौढ़ नहीं हुई थी कि वह महान् भावों

का सहज प्रकाशन कर सकती। 'निराला' को इस बात का श्रेय मिलना चाहिए कि उन्होंने अनेक प्रौढ़ दार्शनिक भावों के प्रकाशन के उपयुक्त भाषा गढ़ी। कहीं-कहीं उनकी दार्शनिक कविताएँ एवं दार्शनिक उक्तियाँ इतनी सुन्दर बन पड़ीं कि वे आज भी हमारा मन मोह लेंगी। 'युक्ति' शीर्षक कविता लीजिये—

"काल-वायु से स्खलित न होंगे
कनक प्रसून ?
क्या पलकों पर विचरेगी ही
यौवन-धूम ?"
गत रागों का सूना अन्तर
प्रतिपल तब भी मेरा सुखकर
भर देगा यौवन—
मन ही सर्वसृजन

* * *

फिर ऐसी ही क्यों न रहेगी
यौवन-धूम ?

"(जीवन और यौवन के) ये कनक-फूल क्या काल के पवन से सूखकर मुरझा नहीं जायेंगे ? यह यौवन के सपने क्या सदा बने रहेंगे ?" कवि के इस प्रश्न पर उसके भीतर से उत्तर की गूँज उठती है। नहीं, यह तो सम्भव नहीं है। सदा तो यौवन रह नहीं सकता। परन्तु मन तो सर्वसृजन है। बीते हुए यौवन के, सुख के स्मृतिपुष्पों से तब मैं अपने जीवन को भर लूँगा। जब सब मन का खेल है, तो यह यौवन की धूम इसी तरह क्यों न रहेगी ?" संसार की अनश्वरता और जीवन के असफल स्वप्नों के प्रति कुण्ठा और प्रबोध वैराग्य-प्रधान संत और भक्त काव्य की प्रमुख रूढ़ियाँ रही हैं। परन्तु निराला ने इन भावनाओं को नई भाषा दी है। 'वृत्ति' शीर्षक कविता में कवि कहता है—

तुम कुंद इन्दु अरविंद शुभ्र
तो मैं हूँ निर्मल व्याप्ति।

परन्तु जहाँ भाव भाषा के साथ पूर्ण रूप से गुंफित नहीं हो सके हैं, वहाँ कवि की कविता इतनी जटिल हो गई है कि साधारण पाठक उसे समझ ही नहीं सकता। 'परलोक' शीर्षक कविता है—

नयन मुँदेंगे जब, क्या देंगे ?
चिर-प्रिय- दर्शन ?
शतसहस्र-जीवन-पुलकित, प्लुत
प्यालार्पण ?
अमरण-रणमय मृदु-पद-रज ?
विद्युत्-घन-चुम्बन ?
निर्विरोध, प्रतिहत भी
अप्रतिहत आलिङ्गन ?

"जब नयन मुँदेंगे (जब मैं मृत्यु को प्राप्त हूँगा) तब क्या वे चिरप्रिय मुझे दर्शन देंगे, जिनका दर्शन मात्र ही सहस्रों जीवनों को पुलकित करने वाला है, जिनमें सैकड़ों मदिरा के प्यालों की भाँति मादकता है ? जिनकी पदरज ही अमृत्व-दान करती है ? जिस प्रकार विद्युत और घन का गहरा प्रेम-विनिमय है, वैसा ही क्या मेरा-उनका प्रेम-विनिमय होगा ? उस आलिंगन में कोई विरोध नहीं होगा, बाधा-बंधनविहीन, अप्रतिहत वह आलिंगन होगा ? क्या अंत में इस तरह ही यह मिलन सम्भव नहीं हो सकेगा ?" सच तो यह है कि मूल भाव में कहीं भी अस्पष्टता नहीं है। जो अस्पष्टता है, वह भाव-प्रकाशन-शैली में। वास्तव में, जिस समय यह कविता लिखी गई थी, उस समय तक हिन्दी कविता की भाषा इतनी प्रौढ़ नहीं हुई थी कि वह महान् भावों

का सहज प्रकाशन कर सकती। 'निराला' को इस बात का श्रेय मिलना चाहिए कि उन्होंने अनेक प्रौढ़ दार्शनिक भावों के प्रकाशन के उपयुक्त भाषा गढ़ी। कहीं-कहीं उनकी दार्शनिक कविताएँ एवं दार्शनिक उक्तियाँ इतनी सुन्दर बन पड़ीं कि वे आज भी हमारा मन मोह लेंगी। 'युक्ति' शीर्षक कविता लीजिये—

"काल-वायु से स्खलित न होंगे
कनक प्रसून ?
क्या पलकों पर विचरेंगे ही ग्री
यौवन-धूम ?"
गत रागों का सूना अन्तर
प्रतिपल तब भी मेरा सुखकर
भर देगा यौवन—
मन ही सर्वसृजन

* * *

फिर ऐसी ही क्यों न रहेगी
यौवन-धूम ?

"(जीवन और यौवन के) ये कनक-फूल क्या काल के पवन से सूखकर मुरझा नहीं जायेंगे ? यह यौवन के सपने क्या सदा बने रहेंगे ?" कवि के इस प्रश्न पर उसके भीतर से उत्तर की गूँज उठती है। नहीं, यह तो सम्भव नहीं है। सदा तो यौवन रह नहीं सकता। परन्तु मन तो सर्वसृजन है। बीते हुए यौवन के, सुख के स्मृतिपुष्पों से तब मैं अपने जीवन को भर लूँगा। जब सब मन का खेल है, तो यह यौवन की धूम इसी तरह क्यों न रहेगी ?" संसार की अनश्वरता और जीवन के असफल स्वप्नों के प्रति कुण्ठा और प्रबोध वैराग्य-प्रधान संत और भक्त काव्य की प्रमुख रूढ़ियाँ रही हैं। परन्तु निराला ने इन भावनाओं को नई भाषा दी है। 'वृत्ति' शीर्षक कविता में कवि कहता है—

देख चुका जो जो आये थे, चले गए,
मेरे प्रिय सब बुरे गए, सब भले गए!

क्षण-भर की भाषा में,
नव-नव अभिलाषा में,
उगते पल्लव-से कोमल शाखा में,
आए थे जो निष्ठुर कर से
भले गए
मेरे प्रिय सब बुरे गए, सब
भले गए!

चिन्ताएँ, बाधाएँ,
आती ही हैं, आएँ
अंध हृदय है, बन्धन निर्दय लाएँ,
मैं ही क्या, सब ही तो ऐसे
छले गए,
मेरे प्रिय सब बुरे गए, सब
भले गए!

कभी-कभी जीवन में ऐसे क्षण आते हैं जब अज्ञात अनन्त का स्पर्श साफ़ जान पड़ता है। ऐसा लगता है जैसे सारा जीवन पूर्णता से भर गया हो। जान पड़ता है, अनेक साधनाओं, अनेक कष्टों के बाद प्रिय हम पर अनुग्रह कर हमारे पास आप ही चला आया है। हम तब अदृष्ट प्रिय का स्वागत करते हैं। जीवन के कठिन क्षणों में प्रिय के इतने नैकट्य का अनुभव कर हम आनन्द-विभोर हो जाते हैं। कवि कहता है—

कितने ही विघ्नों का जाल
जटिल, अगम, विस्तृत पथ पर विकराल;
कंटक कर्दम भय-श्रम-निर्मम कितने शूल;

हिंस्र निशाचर, भूधर, कंदर, पशु-संकुल—
पथ घन-तम, अगम अकूल—
पार-पार करके आए, हे नूतन !
सार्थक जीवन ले आए;
श्रम-कण में, बंधु, सफल श्रम !
सिर पर कितना गरजे
वज्र-बादल,
उपल-वृष्टि, फिर शीत घोर, फिर ग्रीष्म प्रबल।
साधक, मन के निश्चल,
पथ के सचल,
प्रतिज्ञा के हे अचल, अटल।
पथ पूरा करके आए तुम,
स्वागत ऐ प्रिय-दर्शन,
आए, नव जीवन भर लाये

इस अज्ञात स्पर्श से कवि का जीवन धन्यवाद से भर जाता है। वह बार-बार उस अदृष्ट सत्ता के प्रति प्रेम और विश्वास के गीतों में मुखर हो उठता है। क्षुब्ध हृदय को सांत्वना के अमृत से भरने वाले महान् के प्रति मनुष्य श्रद्धांजलियाँ तो चढ़ा ही सकता है। इसी से निराला कहते हैं—

भर देते हो
बार-बार, प्रिय, करुणा की किरणों से
क्षुब्ध हृदय को पुलकित कर देते हो।
मेरे अंतर में आते हो देव निरन्तर,
कर जाते हो व्यथा-भार लघु
बार-बार कर-कंज बढ़ाकर;
अन्धकार में मेरा रोदन

सिक्त धरा के अंचल को
करता है क्षण-क्षण—
कुसुम-कपोलों पर वे लोल शिशिर-कण;
तुम किरणों से अश्रु पोंछ लेते हो,
नव प्रभात जीवन में भर देते हो

भाव वही है जो वैष्णव कवियों में है, संत कवियों में है और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताओं में है; परन्तु निराला की भावना राम कृष्ण जैसे देवी-देवताओं को छोड़कर नये प्रतीक-विधानों के साथ सामने आती है। वास्तव में यह हिंदी साहित्य की आधुनिक रहस्यवाद की धारा वैष्णव साहित्य धारा का ही एक नया रूप है जो पश्चिमी प्राकृतवाद (Pantheism) और ब्रह्म-समाज के औपनैषदिक रहस्यवाद से प्रभावित है। पश्चिमी प्राकृतवाद वर्डस्वर्थ और शेली की कविताओं के द्वारा आया और औपनैषदिक रहस्यवाद रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'गीतांजलि' 'निर्माल्य' आदि संग्रहों की कविताओं द्वारा। इस रहस्यवाद की परंपरा निर्गुण और सूफ़ी मतवाद में ढूँढ़ना निष्फल है। पाश्चात्य सभ्यता के विकास के साथ भारतीय ईश्वरवाद के प्रतीकों (राम-कृष्ण इत्यादि) के प्रति संदेह उठने लगा था। वह ईश्वर के ऊँचे सिंहासन से उतर कर मानवीय धरातल पर पहुँच गये थे। इसीलिए साम्प्रदायिक नामरहित सर्वमान्य निर्विशेष ईश्वर की प्रतिष्ठा हुई जिसे रवीन्द्रनाथ ने 'जीवनदेवता' कहा। हिन्दी रहस्य-काव्य में यही 'जीवनदेवता' कई नामों के साथ हमारे सामने आता है।

ऊपर हमने 'परिमल' के कई तत्त्वों पर प्रकाश डाला है। १९३० ई० में 'परिमल' का प्रकाशन साहित्य की एक बड़ी घटना थी। उसका ऐतिहासिक महत्त्व तो आज भी बना है;

परन्तु उसकी दो दर्जन से अधिक रचनाएँ हिंदी भारती के कंठ में मणिमुक्ताहार की भाँति सदैव प्रकाशवान रहेंगी, इसमें भी कोई संदेह नहीं। इस संग्रह में कविता को छंद, कविता की भाषा और कविता के विषय तीनों दिशाओं में क्रांति की सूचना मिली। अमिताक्षर, अतुकांत और लयात्मक मुक्तछंद के रूप में निराला ने हिंदी काव्य-छंद और शैली में इतना विस्तार उत्पन्न कर दिया कि उनके प्रति विद्रोह की आवाज उठने लगी और लोग उनके छंद को 'केंचुआ' छंद और 'रबड़' छंद कह कर लांछित करने लगे। निराला के लंबे बाल, उनकी मदभरी आँखें, उनका पियक्कड़पन—ये सब नये काव्य के प्रतीक बन बैठे और साप्ताहिक और मासिक पत्रों में छायावादी कवि के लम्बे बाल बनाकर और उसके हाथ में शराब की बोतल देकर, उसे अनन्त-अज्ञात की ओर ताकता दिखाकर अनेक कार्टून बने। जितने बड़े बवंडर का सामना 'निराला' को करना पड़ा, हिंदी कविता के इतिहास में उसकी मिसाल नहीं है। पर निराला अडिग रहे। पारिवारिक दुर्घटनाओं और वैयक्तिक कमजोरियों से ऊपर उठकर उन्होंने निबन्ध, कहानी, उपन्यास, गीत और कविता के माध्यम से हिंदी को समर्थ बनाया।

४

गीतिका (१९३६)

'परिमल' (१९३०) में निराला के कुछ गीत प्रकाशित हुए थे और विद्वानों में उनका बड़ा आदर हुआ था। संगीत-विशारदों ने उनकी संगीतमयता की प्रशंसा की थी। वैसे तो सभी कविताओं में संगीत की मात्रा बहुत अधिक थी, परंतु 'मौन' 'प्रार्थना' 'प्रभाती' 'दूत अलि ऋतुपति के आए' (गीत), 'अलि, फिर आए घन पावस के' और 'निशा के उर की खुली कली' जैसे गीत काव्य में नई संगीत-संस्कृति को सामने लाए और लगा कि ध्रुपद-धम्मार और ख्याल के ब्रजभाषा गीतों के समक्ष खड़ी बोली हिंदी भी एक नई चीज़ रख सकती है। इन गीतों में किसी एक सुन्दर भाव को लेकर दो, तीन या चार 'बंद' उपस्थित किये जाते थे। बंगला में रवीन्द्रनाथ इस प्रकार के गीतों की सहस्रशः रचना कर चुके थे। अतः रवीन्द्रनाथ के गीतों की छाया में पलने वाले 'निराला' का ध्यान इस ओर जाना स्वाभाविक ही था। परंतु निराला की मौलिकता ने उन्हें रवीन्द्रनाथ के गीतों के अनुकरण से बचा लिया और उन्होंने हिंदी को ऐसी चीज़ दी जो नई होते हुए भी प्राचीन गीति-परंपरा से एकदम अलग नहीं थी।

'गीतिका' के परिचय में श्री जयशंकर प्रसाद लिखते हैं—

"गीतिका हिंदी के लिए सुन्दर उपहार है। उसके चित्रों की रेखाएँ पुष्ट, वर्णों का विकास भास्वर है। उसका दार्शनिक पक्ष गंभीर और व्यंजना मूर्तिमती है। आलम्बन के प्रतीक उन्हीं के

लिए अस्पष्ट होंगे जिन्होंने यह नहीं समझा है कि रहस्यमयी अनुभूति, युग के अनुसार, अपने लिए विभिन्न आधार चुनती है। केवल कोमलता ही कवित्व का मापदंड नहीं है। निराला जी ने ओज और सौन्दर्य-भावना और कोमल कल्पना का जो माधुर्यमय संकलन किया है, वह उनकी कविता में शक्ति-साधना का उज्ज्वल परिचायक है।" स्वयं निराला ने अपने वक्तव्य में इन गीतों के संबंध में एक क्रांतिकारी कथन किया है। वे कहते हैं—"खड़ी बोली की संस्कृति जब तक संसार की अच्छी-अच्छी सौन्दर्य-भावनाओं से युक्त न होगी, वह समर्थ न होगी। उसकी संपूर्ण प्राचीनता जीर्ण है। * * * प्राचीन गवैयों की शब्दावली, संगीत की रक्षा के लिए, किसी तरह जोड़ दी जाती थी। इसीलिए उसमें काव्य का एकांत अभाव रहता था। आज तक उनका यह दोष प्रदर्शित होता है। मैंने अपनी शब्दावली को काव्य के स्वर से भी मुखर करने की कोशिश की है। ह्रस्व-दीर्घ की घट-बढ़ के कारण पूर्ववर्ती गवैये शब्दकारों पर जो लांछन लगता है, उससे भी बचने का प्रयत्न किया है। दो-एक स्थलों को छोड़ कर अन्यत्र सभी जगह संगीत के छंदशास्त्र की अनुवर्तिता की है। भाव प्राचीन होने पर भी प्रकाशन का नवीन ढङ्ग लिए हुए हैं। साथ ही उनके व्यक्तीकरण में एक-एक कला है।" (गीतिका; भूमिका, पृ० ६)

'गीतिका' के गीतों का मुख्य विषय रहस्यवाद है। इस संबंध में श्री नंददुलारे वाजपेयी का यह कथन महत्त्वपूर्ण है—"रहस्यवाद तो इस युग की प्रमुख चिंताधारा है। परोक्ष की रहस्यपूर्ण अनुभूति से उनके गीत रञ्जित है। रहस्य की कलात्मक अभिव्यक्ति की जो बहुविध चेष्टाएँ आधुनिक हिंदी में की गई हैं उनमें निराला की कृतियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। कुछ कवियों ने तो रहस्यपूर्ण कल्पनाएँ ही की हैं; किन्तु निराला के

काव्य का मेरुदंड ही रहस्यवाद है। उनके अधिकांश पदों मानवीय जीवन के चित्र हैं सही, किंतु वे सबके सब रहस्यानुभूति से अनुरंजित है। जैसे सूरदास जी के पद अधिकांश श्रीकृष्ण की लोकलीला से संबद्ध होते हुए भी अध्यात्म की ध्वनि से आपूरित हैं, वैसे ही निरालाजी के भी पद हैं। इस रहस्यप्रवाह के कारण कवि के रचित साधारण जीवन के गीत भी असाधारण आकर्षण रखते हैं। 'अस्ताचल रवि जल छल-छल छवि' जैसे पदों में रहस्यपूर्ण वातावरण की सृष्टि की गई है। 'हुआ प्रात प्रियतम तुम जाओगे चले' जैसे पदों में परकीया की उक्ति के द्वारा प्रेम-रहस्य प्रकट किया गया है। 'देकर अंतिम कर रवि गए अपर पार' जैसे संध्यावर्णन के पद में भी प्रकृति की सौम्य मुद्राएँ और भाव-भङ्गिमाएँ अंकित कर रहस्य-सृष्टि की गई है। इनसे भी ऊपर उठ कर उन्होंने शुद्ध Impersonal (परोक्ष) के भी ज्योति-चित्र उपस्थित किये हैं; जैसे 'तुम्हीं गाती, हो अपना गान, व्यर्थ मैं पाता हूँ सम्मान' आदि पदों में। ऐसे गीतों में कतिपय प्रार्थना-परक और कतिपय वस्तु-निर्देशपरक हैं। कहीं शुद्ध अपूर्व प्रकाशमात्र और कहीं मूर्त कामिनी या मारूप है। निराला की विशेषता इसी अमूर्त्त प्रकाश की अभिव्यक्ति-कला का अनुलेखन है। यदि उनका कोई विशेष सम्प्रदाय का अनुयायी वर्ग माना जाय, तो वह यही है और वास्तव में निरालाजी के अनुयायी इसी का अभ्यास भी कर रहे हैं। मूर्त्तरूप में प्रकट होने वाले प्रकाश-चित्र भी निराला जी की तूलिका की विशेषता लिये हुए हैं। वह विशेषता यही है कि रूप-रंगों में प्रकट होकर भी वे अमूर्त्त का ही अभिव्यंजन करते हैं।' 'प्रिय, यामिनी जागी' जैसे पदों में इस युग के कवि के द्वारा भक्तों की श्री राधा की ही अवतारणा हुई है। इस स्थिति से एक सीढ़ी नीचे उतरने पर, या इस पर से ही, निराला जी के मानवीय चित्रण आरंभ होते

हैं जिनके संबंध में मैं ऊपर कह चुका हूँ। इनमें अनहोनी परिस्थितियाँ नहीं हैं, संचित जीवन-सौन्दर्य का आलेखन है, यद्यपि इनमें कोई रहस्य प्रकट नहीं तथापि रहस्यवादी कवि का स्वर सर्वत्र व्याप्त है। इसीसे इन पदों में असाधारण आकर्षण आया है। कला की दृष्टि से भी इन गीतों के लौकिक की अवतारणा अलौकिक स्वर से ही हुई है। इससे सिद्ध है कि निरालाजी के इन गीतों में रहस्यवाद भी साहित्य-साधना का ही विकास हुआ है।" (भूमिका, पृ० १९—२१।

परन्तु 'गीतिका' के रहस्यवाद के अनेक पहलू हैं और इन अनेक पहलुओं को अलग-अलग समझना अधिक सरल होगा।

१—जीव-ब्रह्म-परक रहस्यवाद

अज्ञात, अनंत प्रिय है। आत्मा अभिसारिका है। यह अभिसारिका लोक में चाहे जितनी लांछित हो, प्रिय के चरणों को छोड़ कर और कहाँ शरण पायेगी। इसे कवि रूपक में बाँध कर इस तरह कहता है—

मौन रही हार—
प्रिय पथ पर चलती,
सब कहते शृङ्गार !
कण-कण कर कङ्कण, प्रिय
किण् किण् रव किङ्किणी;
रणन रणन नूपुर, उर लाज,
लौट रङ्किणी;
और मुखर पायल स्वर करें बार-बार;
प्रिय-पथ पर चलती, सब कहते शृङ्गार!
शब्द सुना हो, तो अब
लौट कहाँ जाऊँ ?

कवि निराला

उन चरणों को छोड़, और
शरण कहाँ पाऊँ ?—
बजे सजे उर के इस सुर के सब तार
प्रिय पथ पर चलती, सब कहते शृङ्गार

आत्मा को चिंता है; हार कर प्रिय-पथ पर चलना पड़ रहा है। प्रत्येक आभरण से इसी आत्मसमर्पण की ध्वनि आ रही है। हृदय में लाज आती है, परन्तु लौट गई, तो वह प्रिय-धन फिर कहाँ मिलेगा ? फिर संभव है, प्रिय ने आगमन की प्रतीक्षा के वाद नूपुरों का शब्द सुन लिया हो। फिर किसकी शरण मिलेगी ? प्रिय की ओर बढ़ती हुई अभिसारिका (परमात्म-तत्त्व की ओर बढ़ती हुई जीवात्मा) में यही संवादी-विवादी स्वर बज रहे हैं, यही तर्क-वितर्क हो रहा है। इसी प्रकार एक दूसरे गीत में आत्मा द्वारा परमात्मा के कर्तृत्व की बात है। कवि कहता है : आत्मा का कहना है : हे प्रिय, कर्मों के बंधन में पड़ती हूँ मैं। करती हूँ मैं और तुम मेरे कर्मों के कुफल सहते हो। यह माना कि मेरा अस्तित्व तुम्हारे बिना संभव भी नहीं है, फिर कर्तृत्व कहाँ संभव है, मेरे सारे कार्यों में तुम ही प्रेरणा रूप में हो। इसीसे मैं इस सारी लांछा को चुप-चुप सह लेती हूँ। लोग तुम्हें दोष देते हैं, दें। मैं तो सच बात जानती हूँ—

लिखती सब कहते;
तुम सहते, प्रिय, सहते।
होते यदि तुम नहीं,
लिखती मैं क्या कहो ?
पत्रों में तुम हो सर्वत्र
रहोगे, रहो।
(वे) कहें, रहें कहते,
तुम सहते, प्रिय, सहते।

परंतु कवि यह जानता है कि उस अज्ञात, अनंत, प्रिय को बाहर नहीं ढूँढ़ने जाना है, वह तो भीतर ही है—

पास ही रे हीरे की खान,
खोजता कहाँ और नादान ?

सहसा उर में अज्ञात की वीणा बजने लगती है और हृदय में प्रेम के संस्कार जग जाते हैं। साधक को आश्चर्य होता है, यह क्या हो रहा है :

वह रूप जगा उर में
बजी मधुर वीणा किस सुर में ?
कहता है कोई, तू उठ अब,
खुले हृदय-शतदल के दल सब,
अर्घ्य चढ़ा उनको जो जब तब
आते हैं तेरे मधुपुर में—
वह रूप जगा सुर में।
अब तक मैं भूली थी क्या, बता,
उनका क्या यही सही है पता ?
वे ही क्या, मेरे उर की लता
हिल उठती जिन्हें देख उर में—
वह रूप जगा सुर में !

जिस मुरली ध्वनि को गोपिकाओं ने वृन्दावन में सुना था, वही मुरली ध्वनि जीवात्मा को जब भीतर-भीतर सुनाई पड़ती है, तब उसके जगत के बंधन धीरे-धीरे टूटने लगते हैं। तब अभिसारिका-रूपी जीवात्मा के मन में उस प्रिय के प्रति जिज्ञासा जाग उठती है :

कैसी बजी बीन ?
हृदय में कौन जो छेड़ता बाँसुरी ?
हुई ज्योत्स्नामयी अखिल मायापुरी ;

लीन स्वर सलिल में मैं बन रही मीन।
स्पष्ट ध्वनि : 'आ धनि, सजी यामिनी भली,
मंद-पद आ बंद कुञ्ज उर की गली ;
मंजु, मधु-गुँजरित कलि दल-समासीन ?
'देख, आरक्त पाटल-पटल खुल गये,
माधवी के नये खुले गुच्छे नये,
मलिन मन, दिवस-निशि, तू क्यों रही क्षीण ?'

इस आश्चर्य-वेणु के बाद प्रिय-मिलन होता है और अंत में प्रिय-वियोग। मिलन के बाद वियोग और वियोग के बाद मिलन यही साधना की सीढ़ियाँ हैं। मिलन के अंत में जब विछोह के क्षण आते हैं तो आत्मा चीत्कार कर उठती है—

हुआ प्रात, प्रियतम, तुम जावगे चले ?
कैसी थी रात, बन्धु, थे गले-गले।

जिस प्रकार कबीर के काव्य में मिलन-वियोग के स्वर उठे हैं, उसी प्रकार के मिलन-वियोग के स्वर निराला के रहस्यवादी काव्य में प्रधानता पाते हैं। अंतर केवल अनुभूति का है। कबीर अद्वैतावस्था की आनंद-स्थिति का वर्णन इस भाँति करते हैं—

मोतिया बरसै रौरे देशवा दिन-राती
मुरली शब्द-सुनि मन आनंद भयो, जोति बरै दिन-राती
बिना मूल के कमल प्रगट भया, फुलवा फुलत भाँती-भाँती
जैसे चकोर चंद्रमा चितवै, जैसे चातक स्वाती

इसे वे 'विदेह का देश' कहते हैं—

हम बासी उस देश के, जहाँ बारह मास विलास
प्रेम झरैं बिलसैं कमल, तेजपुंज परकास
हम वासी उस देश के, जहवाँ नहिं मास बसन्त
नीझर झरै जहाँ अमी भीजत हैं सब संत

हम वासी उस देश के जहाँ बरन कुल नाहिं
शब्द मिलाया होय रहा, देह मिलावा नाहिं
हम वासी वा देश के, जहाँ पारब्रह्म का खेल
दीपक जरै अगम्य का, बिन बाती बिन तेल

इस रहस्यमयी अद्वैत स्थिति में

गगन गरजै बरसै अमी बादल गहर गँभीर
चहुँ दिसि दमकै दामिनी, भीजै दास कबीर

परंतु इस अद्वैत स्थिति तक पहुँचने के लिए आत्मा को वियोग के दुःख को सहना पड़ता है। इस अभिसार का वर्णन कबीर के काव्य में इस तरह है—

भीजै चुनरिया प्रेमरस बूँदन
आरती साज कै चली है सुहागिनि
प्रिय अपने को ढूँढन
मिलना कठिन है कैसे मिलौंगी प्रिय जाय
समझि सोचि पग धरौं जतन से, बार-बार डिग जाय
ऊँची गैल राह रपटीली, पाँव नहीं ठहराय
लोकलाज, कुल की मरजादा, देखत मन सकुचाय

वियोग के अवसर पर जीवात्मा चिल्ला पड़ती है—

वै दिन कब आवैंगे माइ
जा कारनि हम देह धरी है, मिलिबौ अंग लगाइ
हौं जानूँ जे हिलिमिलि खेलूँ, तन-मन-प्रान समाइ
याँ कामना करौ परिपूरन, समरथ हौ रामराइ

और संयोग के अवसर पर प्रियतम के अलौकिक रूप को देख कर वह कहने लगती है—

माई ये अद्भुत रूप अनूप कथो है, कहौं तो को पतियाई
जहँ जहँ देखो तहँ तहँ सोई सब घट रहा समाई

लख बिनु सुख नहिंदखि बिनु दुख है नींद बिना सुख सोवै
जस बिनु ज्योति रूप बिनु आसिक राम बिहूना रोवै

और मिलन के बाद वियोग की संभावना देखकर पुकारती है—

अब तोहि जांन न देहूँ राम पियारे
ज्यूँ भावै त्यूँ होइ हमारे

आधुनिक रहस्यवादी काव्य में जीव और ब्रह्म के संबंध में इस प्रकार की सारी परिस्थितियाँ मिल जाती हैं। निराला की गीतिका में ही इस प्रकार के अनेक गीत मिलेंगे जो संसार की सर्वश्रेष्ठ रहस्यवादी कविता के सम्मुख रखे जा सकें। 'प्रसाद' ने ठीक ही कहा है—कि रहस्यमयी अनुभूति युग के अनुसार अपने लिये विभिन्न आधार चुना करती है। निराला के जीव-ब्रह्मसंबंधी रहस्यवादी गीतों की अस्पष्टता का कारण यह है कि उन्होंने वैष्णव काव्य के प्रतीकों का प्रयोग नहीं किया, नये प्रतीक गढ़े हैं, जो अधिकतर प्रकृति के व्यापारों से लिये गये हैं। जहाँ कहीं उन्होंने पुराने प्रतीक (जैसे पार्वती का शिव के लिए तप) लिये हैं, वहाँ भी उन्होंने पौराणिकता को हटा कर एक नये ही भाव-संघात की सृष्टि की है। आधुनिक पाठक इन नये प्रतीकों को भली भाँति समझ नहीं पाता, इसीसे वह नये काव्य को 'प्रेत काव्य' कहने लगता है और या तो उससे भाग जाता है, या उसकी खिल्ली उड़ाता है। कभी तो छायावादी कवि अपने को प्रियतमा मान कर कहता है—'कब से मैं पथ देख रही, प्रिय' और कभी उस अज्ञात सत्ता की नारी रूप में खोज करता है—

कितने बार पुकारा,
खोल दो द्वार, बेचारा।
मैं बहुत दूर का, थका हुआ,
चल ढुलकर श्रम-पथ, रुका हुआ,

आश्रय दो आश्रमवासिनी,
मेरी हो तुम्हीं सहारा।

आधुनिक पाठक संवोधन के इन द्विविध-रूपों को समझ नहीं सकता। इसीसे यह सारा काव्य अस्पष्टता से लांछित जान पड़ता है। इस अस्पष्टता के पीछे कवि का दोष इतना ही है कि वह उतनी अनुभूति की गहराई से नहीं बोल रहा जिस गहराई ने हमें जायसी और कबीर की रहस्यवादी कविता दी है। उसका प्रयास अधिकतर बौद्धिक है; अतः हृदय की रसधारा से सिक्त न होने के कारण हमें प्राचीन रहस्यवादी काव्य की तरह विभोर नहीं कर पाता। अधिक दोष तो नई भाषा की अपूर्णता, नए प्रतीक-विधान और विदेशी ढंग की लाक्षणिकता का है। जो हो, आधुनिक रहस्यवादी काव्य में निराला अग्रगण्य हैं।

२—प्राकृतिक रहस्यवाद

यों तो निराला की कविता में प्रकृति के चित्र प्रारंभ से ही मिलते हैं, परन्तु 'गीतिका' की चित्र-राशि इस प्रकार के चित्रों से भरी पड़ी है। कई गीत तो ऐसे हैं कि उन्हें हमें किसी भी भाषा के उत्कृष्ट प्राकृतिक चित्रों के सामने रख सकते हैं। इन चित्रों में भाव के साथ भाषा भी आनन्द के हिंडोल पर झूलने लगती है। वसंत के कुछ चित्र देखिये—

१—सखि, वसंत आया।
भरा हर्ष वन के मन
नवोत्कर्ष छाया।
\+ \+ \+
लता मुकुल-हार-गंध भार भर
बही पवन बंद मंद मंदतर

कवि निराला

जागी नयनों में वन—
यौवन की माया।
आवृत-सरसी-उर सरसिज उठे,
केशर के केश कली के छुटे,
स्वर्ण-शस्य-अंचल
पृथ्वी का लहराया।
२—अमरण भर वरण-गान
वन-वन उपवन-उपवन
जागी छवि, खुले प्राण।
वसन विमल तनु वल्कल,
पृथु उर सुर-पल्लव-दल,
उज्ज्वल दृग, कलि कल, पल
निश्चल, कर रही ध्यान
मधुप निकर कलरव भर,
गीति मुखर पिक प्रिय स्वर,
स्मर-शर हर केशर-झर,
मधु पूरित गंध ज्ञान।

इन गीतों में भाव के अमर संगीत की प्रतिष्ठा है। पंक्तियों के अर्थ हमें उतना नहीं देते जितना शब्दों की झंकार। कहीं-कहीं भाव के द्वारा भी प्रकृति का सुन्दर चित्रण संभव हो सका है। संध्या का एक बड़ा सुन्दर चित्र है—

देकर अंतिम कर
रवि गये अपर पार;
अमित चरण आये
गृहिजन निज निज द्वार
अम्बर-पथ से मन्थर
संध्या श्यामा

उतर रही पृथ्वी पर
कोमल-पद-भार।
मन्द-मन्द बही पवन,
खुल गई जुही,—
अञ्जलि कल विनत नवल
पदतल उपहार।
सुवासना उठी प्रिया
आनत-नयना,
भवन-दीप जला, रही
आरती उतार।

* * * *

अस्ताचल रवि, जल छलछल छवि,
स्तब्ध विश्व कवि, जीवन उन्मन;
मन्द पवन बहती सुधि रह-रह
परिमल की वह कथा पुरातन

दूर नदी पर नौका सुन्दर
दीखी मृदुतर बहती ज्यों स्वर,
वहाँ स्नेह की प्रतनु देह की
बिना गेह की बैठी नूतन

ऊपर शोभित मेघ छत्र सित,
नीचे अमित नील जल दोलित;
ध्यान-नयन-मन-चिन्त्य प्राण-धन,
किया शेष रवि ने कर अर्पण।

इन कविताओं के अतिरिक्त वे कविताएँ हैं जहाँ विश्व को प्रकृति-प्रेयसी का रूप दिया गया है। 'रहा तेरा ध्यान' शीर्षक गीत में कवि इसी प्रेयसी के सम्बन्ध में कह रहा है—

रहा तेरा ध्यान,
गगन घन-विटपी, सुमन नत्र-ग्रह, नव ज्ञान
बीच में तू हँस रही ज्योत्स्ना-वसन-परिधान

कवि निराला

कौन तुम शुभ्र किरण-वसना ?
सीखा केवल हँसना, केवल हँसना—
शुभ्र-किरण वसना।
मंद मलय भर अङ्ग-गंध मृदु,
बादल अलकावलि कुंचित ऋजु,
तारक हार, चन्द्र मुख, मधु-ऋतु
सुकृत पुंज अशना—

इस प्रकार के आश्चर्य और रहस्य के गीत निराला की प्रकृति-संबंधी कविताओं को बहुत सुन्दर रूप दे देते हैं। परन्तु यह बात नहीं कि कवि प्रकृति के सहज-सुन्दर रूप का स्वाभाविक वर्णन नहीं कर सकता। श्रावण के मेघों से ढके हुए प्रकृति-सौन्दर्य का वर्णन कवि इस प्रकार करता है—

रही आज मन में
वह शोभा जो देखी थी वन में।

उमड़े ऊपर नव घन, धूम-धूम अंबर,
नीचे लहराता बन, हरित श्याम सागर,
उड़ा वसन बहती रे पवन तेज क्षण में।
नदी तीर, श्रावण, तट नीर छाप बहता,
नील डोर का हिंडोर चढ़ी-पैंग रहता,
गीत-मुखर तुम नवस्वर विद्युत ज्यों घन में।
साथ-साथ नृत्यपरा कलि-कलि की अप्सरा,
तरल लताएँ देता करतल-पल्लव-धरा,
भक्त मोर चरणों के नीचे, नत तन में।

रही आज मन में
वह शोभा जो देखी थी वन में।

'अनामिका' और 'नये पत्ते' और 'बेला' में अत्यन्त अलंकृत भाषा में प्रकृति के सँवारे रूप मिलेंगे, परन्तु, 'गीतिका' के उत्कृष्ट चित्र फिर भी बेजोड़ हैं। पतझर के समय सूखी डाल को सबने देखा होगा, परन्तु सूखी डाल को लेकर पौराणिक पार्वती के तप का विशद वर्णन है। कवि ने उसी से प्रेरणा लेकर एक सुन्दर रूपक बाँध दिया है :

सूखी री यह डाल वसन वासंती लेगी।
देख खड़ी करती तप अपलक,
हीरक-सी समीर-माला जप,
शैल-सुता अपर्ण-अशना,
पल्लव-वसना बनेगी—
वसन वासन्ती लेगी।
हार गले पहना फूलों का,
ऋतुपति सकल सुकृत-कूलों का,
स्नेह, सरस भर देगा उर-सर
स्मरहर को वरेगी
वसन वासन्ती लेगी।
मधुव्रत में रत वधू मधुर फल
देगी जग को स्वाद तोष दल,
गरलामृत शिव आशुतोष-बल
विश्व सकल नेगी—
वसन वासन्ती लेगी।

थोड़ी व्याख्या से इस कविता की सुन्दरता और स्पष्ट हो जायेगी। कवि कहता है—'यह सूखी डाल अवश्य ही (तपफल-स्वरूप) मधु ऋतु को (वरस्वरूप) प्राप्त होगी (वसंती वसन पहनेगी)। (देखो, यह अपलक निश्चल) खड़ी तप कर रही है, समीर की माला जपती जान पड़ती है। यह तो शैलसुता है

गूँजने लगती है, तब मनुष्य (आत्मा) के सारे कार्य उस प्रिय की ओर इंगित करने लगते हैं। अभिसारिका भले ही इस बात से लज्जित हो; परन्तु जब प्रिय ने उसके अभिसार की बात जान ली, तो वह भला किस तरह लौटे ? इसी भाव का प्रकाशन इस गीत में है—

मौन रही हार,
प्रिय-पथ पर चलती,
सब कहते शृङ्गार !
कण-कण कर कङ्कण, प्रिय
किण्-किण् रव किङ्कणी,
रणन-रणन नूपुर, उर लाज,
लौट रङ्किणी;
और मुखर पायल स्वर करें बार बार,
प्रिय पथ पर चलती, सब कहते शृङ्गार ?
शब्द सुना हो, तो अब
लौट कहाँ जाऊँ ?
उन चरणों को छोड़, और
शरण कहाँ पाऊँ ?
बजे सजे उर के उस सुर के सब तार—
प्रिय-पथ पर चलती, सब कहते शृङ्गार ।

इस प्रिय (अनन्त) की बीन भी आत्मा को सुनाई पड़ती है। यह प्रिय का बुलावा है। कितनी आकर्षक है यह ध्वनि—

कैसी बजी बीन ?
सजी मैं दिन दीन !
हृदय में कौन जो छेड़ता बाँसुरी ?
हुई ज्योत्स्नामयी अखिल मायापुरी ;

यह सिद्धि कैसे मिले ?—

चक्र के सूक्ष्म छिद्र के पार,
वेधना तुझे मीन, शर मार
चित्त के जल में चित्र निहार,
कर्म का कार्मुक कर में धार,
मिलेगी कृष्णा, सिद्धि महान,
खोजता कहाँ उसे नादान।

आत्मा के अकृतत्व को कवि मूल में सत्य मानता है। ब्रह्म ही चेतन है। मनुष्य के सारे कर्म, सारे भाव ब्रह्म द्वारा ही परिवेष्टित हैं। यह ब्रह्म न होता, तो आत्मा का अस्तित्व ही कहाँ होता। इसीसे आत्मा के कर्तृत्व की बात झूठ है, यद्यपि इसे ही लोक ने सत्य मान लिया है। आत्मा के कर्तृत्व को सत्य मानना ब्रह्म के साथ अन्याय करना होगा—

लिखती, सब कहते;
तुम सहते, प्रिय सहते
होते यदि तुम नहीं,
लिखती मैं क्या कहो ?
पत्रों में तुम हो सर्वत्र,
रहोगे, रहो
(वे) कहें, रहें कहते,
तुम सहते, प्रिय सहते।

इस प्रकार जीव-ब्रह्म के सम्बन्ध को कवि ने अनेक रूपकों के द्वारा काव्य की भूमि पर उतारा है। इन गीतों में अधिक स्पष्टता नहीं है, यह इसलिए है कि इस युग की आध्यात्मिक कविता हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क की ही उपज है। उसे ही यह छूती है।

४—देश-भक्ति और देश

'गीतिका' में भारत के प्राकृतिक और आध्यात्मिक वैभव के अनेक सुन्दर चित्र मिलते हैं। इस प्रकार के गीतों का श्रीगणेश पं० श्रीधर पाठक की कविताओं से आरम्भ होता है। उन्होंने देशभक्ति के अनेक गीत लावनी और स्तोत्र-शैलियों में लिखे। परन्तु देशभक्ति के गीतों में कला का रूप पहली बार 'गीतिका' में ही मिलता है। स्तोत्र-शैली से मिलती-जुलती शैली एक सुन्दर गीत लीजिये—

बन्दूँ पद सुन्दर तव
छन्द नवल स्वर-गौरव ;
जननि, जनक-जननि-जननि,
जन्मभूमि भाषे !
जागो, नव-अम्बर-भर—
ज्योतिस्तर-वासे।
उठे स्वरोर्मियों-मुखर
दिक्-कुमारिका-पिक-रव।

एक अन्य गीत में कवि देश के प्रति वंदना के गीत गाता है—

अनगिनित आ गये शरण में जन, जननि,
सुरभि-सुमनावली खुली, मधुऋतु अवनि !
स्नेह से पंक-उर
हुए पंकज मधुर,
ऊर्ध्व दृग गगन में
देखते मुक्ति-मणि !
बीत रे गई निशि,
देश लख हँसी दिशि,
अखिल के कंठ की
उठी आनन्द ध्वनि

इन वन्दना गीतों के अतिरिक्त देश के दुख-सुख के और भी गीत हैं—

जागो जीवन धनिके।
विश्व-पण्य प्रिय वणिके

इस उद्बोधन के बाद कवि आज के भारत की दुर्दशा के प्रति क्षोभ प्रकट करता है—

दुःख-भार भारत तम केवल,
वीर्य-सूर्य के ढके सकल दल,
खोलो उषा-पटल निज कर अयि
छविमय, दिन-मणिके।

भावी भारत के प्रति कवि की बड़ी-बड़ी आकांक्षाएँ हैं। वह कहता है—

गह कर अकल तूलि, रँग रँग कर
बहु जीवनोपाय, भर दो घर,
भारति, भारत को फिर दो वर
ज्ञान-विपणि-खनिके।

इसके बाद वह भारत को विश्व के सारे प्राकृतिक विलास, सारी ऐतिहासिक चेतना के बीच में रख कर देखता है—

दिवस-मास-ऋतु-अयन-वर्ष भर
अयुत-वर्ण युग-योग निरन्तर
बहते छोड़ शेष सब तुम पर
लव-निमेष-कणिके!

भारत के भविष्य के स्वप्न से भर कर कवि नई-नई आशा के गीत गाता हुआ नहीं थकता। जो अनेक बंधन आज देश के बल को क्षीण कर रहे हैं, किसी तरह उनका नाश हो, यह उत्कट इच्छा लेकर कवि काव्य लिखने की प्रेरणा आगे बढ़ा रहा है—

रुद्ध जो धार रे
शिखर-निर्झर झरे
मधुर कलरव भरे
शून्य शत शत रंध्र ।
रश्मि ऋजु खींच दे
चित्र शत रंग के,
वर्ण-जीवन फले
जागे तिमिर अंध ।

अन्त में देश-सम्बन्धी एक अपूर्व गीत उद्धृत कर हम इस प्रसंग को समाप्त करते हैं। भारती की वंदना करता हुआ कवि गाता है—

भारति, जय, विजयकरे !
कनक-शस्य-कमल धरे !
लङ्का पदतल—शतदल,
गर्जितोर्मि सागर-जल
धोता शुचि चरण युगल
स्तव कर बहु-अर्थ-भरे ।
तरु-तृण-वन-लता वसन,
अंचल में खचित सुमन,
गंगा ज्योतिर्जल-कण
धवल-धार हार गले ।
मुकुट शुभ्र हिम तुषार,
प्राण प्रणव ओंकार,
ध्वनित दिशाएँ उदार,
शतमुख—शतरव-मुखरे ।

'गीतिका' के ऐसे कितने ही गीत रवीन्द्र बाबू के प्रसिद्ध गीतों से सफलतापूर्वक होड़ ले सकते हैं। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ राष्ट्रीय गीतों में उनका स्थान होगा, इसमें कोई संदेह नहीं।

५—प्रेम और नारी-सौन्दर्य

निराला के प्रेम के गीतों में वासना का स्थान अत्यन्त गौण है। वे देह की ओर कम, हृदय, मन और आत्मा के सौन्दर्य की ओर अधिक देखते हैं। प्रकृति संबन्धी अनेक गीत प्रेम की पटभूमि पर ही अंकित है। अनेक गीतों में कवि प्रकृति को नारी-सौंदर्य के भीतर से देखता है। रात का एक चित्र है—

खुले केश अशेष शोभा भर रहे,
पृष्ठ ग्रीवा बाहु-उर पर तर रहे
× × ×
हरे उर-पट फेर मुख के बाल,
लख चतुर्दिक चली मंद मराल

वसन्त के एक दूसरे चित्र में—

आवृति सरसी-उर-सरसिज उठे,
केशर के केश कली के छुटे,
स्वर्ण-शस्य-अंचल
पृथ्वी का लहराया

इसी प्रकार जहाँ आध्यात्मिक रूपक विकसित करते हुए कवि ने आत्मा के अभिसार का वर्णन किया है, वहाँ भी परोक्ष में नारी-सौन्दर्य का ही चित्रण हो गया है।

'कल्पना के कानन की रानी'-गीत से छायावादी कवियों की नायिका का रूप स्पष्ट हो जाता है। कवि कहता है—

कल्पना के कानन की रानी!
आओ, आओ मृदु-पद, मेरे
मानस की कुसुमित वाणी!
सिहर उठें पल्लव के दल, नव अंग,
बहे सुप्त परिमल की मृदुल तरंग;

जागे जीवन की नव ज्योति अमंद;
हिले वसंत-समीर-स्पर्श से
वसन तुम्हारा धानी
मार्ग मनोहर हो मेरे जीवन का;
खुल जाये पथ रूंधा कंटक-वन का;
धुल जाये मल मेरे तन का, मन का;
देख तुम्हारी मूर्ति मनोहर
रहें ताकते ज्ञानी।

इसी कल्पनामूर्ति को कवि अनेक प्रकार सजा कर सामने उपस्थित करता है—

चुम्बन-चकित चतुर्दिक चंचल
हेर, फेर मुख, कर बहु सुख-छल;
कभी हास, फिर त्रास, साँस-बल
उर-सरिता उमगी
स्पर्श से लाज लगी

कभी वैष्णव गीतों की राधा-माधुरी को अपनी प्रियतमा में जगाता हुआ कवि गाता है—

देख दिव्य छवि लोचन हारे।
रूप अतंद्र, चंद्र मुख, श्रम रुचि,
पलक तरल तम, मृग-हग-तारे।

कभी इस 'मानसी' (कल्पनामूर्ति) के प्रति अपनी लालसा की बाहुएँ फैला कर उसे बाँधना चाहता है—

आओ मधुर-सरण, मानसि, मन।
नूपुर-चरण-रणन जीवन नित
बंकिम चितवन चित्त-चारु-मरण!
नील वसन शतद्रु-तन-ऊर्मिल,
किरण-चुंबि मुख अंबुज रे खिल,

अंतस्तल मधु गंध अनामिल,
उर-उर तव नव राग जागरण।
पलक-पात उत्थित-जग-कारण,
स्मिति आशा-चल-जीवन-धारण,
शब्द अर्थ भ्रम-भेद-निवारण,
ध्वनि शाश्वत-समुद्र-जग मज्जन

कभी छंद-बंध से प्रेम की नई भाव-भंगिमा पकड़ने की चेष्टा करता है—

लाज लगे तो
जाओ तुम जाओ।
फेर लो नयन,
चलो मंजु-गुंजर, धर
नूपुर शिंजित चरण,
करूँ वरण, प्राणों में आ
छवि पाओ—
लाज लगे तो।
मेरा जीवन
छाया, छाया-प्रशमन,
मेरा जीवन, मरण;
आवरण सदा, न लोक-नयन,
सुहाओ—
लाज लगे तो।

परन्तु कुछ गीत ऐसे भी हैं जहाँ कवि अपनी कल्पना के आकाश से नीचे उतर सामान्य मानव के धरातल पर आ बैठता है। 'होली' का एक चित्र है—

मार दी तुझे पिचकारी
कौन री, रँगी छवि वारी?

फूल-सी देह,—द्युति सारी,
हल्की तूल-सी सँवारी,
रेणुओं-मली सुकुमारी,
कौन री, रँगी छवि वारी ?

एक दूसरी 'होली' में कवि और भी पास आ जाता है। प्रियतमा प्रिय के साथ होली खेलती है—

नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे, खेली होली !
जागी रात सेज प्रिय पति-संग रति सनेह-रंग घोली,
दीपित दीप-प्रकाश, कंज छवि मंजु मंजु हँस खोली.
मली मुख चुम्बन-रोली।

और अंत में—

बीती रात सुखद बातों में प्रात पवन प्रिय डोली,
उठी सँभाल बाल, मुख लट, पट, दीप बुझा हँस बोली
रही यह एक ठठोली।

इस प्रकार के स्थूल चित्रण छायावाद काव्य में अधिक नहीं हुए। छायावाद की नारी 'मानसी' ही रही; परन्तु जो थोड़ा-बहुत प्रेम का प्रकृत चित्रण निराला के काव्य में मिलता है, उसमें वासना के स्वर बहुत मुखर नहीं हुए हैं। छायावादी कवि अपनी प्रेयसी के प्रति 'पावन करो नयन' की भावना रखता था। देह का विलास उसे रीति-काव्य की याद दिला देता था। लता-कली का प्रेमविलास तो वह स्वच्छंद रूप से लिख सकता था; परन्तु नर-नारी के विलास-चित्रों को वह घृणात्मक कहकर उनसे दूर रहना चाहता था। निराला के काव्य में हमें प्रेम, नारी और विलास का यही आकाश-चारी रूप अधिक मिलेगा।

'गीतिका' में और भी कितने ही विषय हैं। निराला की बहुमुखी प्रतिभा ने ज़ीवन के प्रत्येक क्षेत्र से अपने उपकरण

लिये हैं और उनकी कविताओं के विषय इतने अधिक, इतने भिन्न-भिन हैं कि उन सबको एक, दो या दस शीर्षकों के भीतर नहीं रखा जा सकता। 'धूलि के कण' से लेकर तुलसी के महाभाव तक, जीवात्मा-परमात्मा के विलास तक, सब विषय कवि ने अपनाये हैं। 'गीतिका' में तो विशेष रूप से गीतों में सारे विषयों का समावेश कर दिया गया है। नये गीतों में कवि अपनी आकाशचारी कल्पना को भूमि पर उतार लाया है और 'वह जो बछड़े को नहला रहा' और 'मसुरिया-बलई' जैसे सामान्यों को लेकर कविता की नई जमीन उसने गढ़ी है। हिंदी काव्य में अनेक प्रवृत्तियों के प्रवर्तन का श्रेय निराला की मौलिक प्रतिभा और उनके साहस को मिलना चाहिये और आधुनिक ढंग के गीत इनमें से एक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति है।

अनामिका (१९३८)

'अनामिका' नाम के प्रति निराला को मोह होना स्वाभाविक था। वह उनका प्रथम काव्य-संग्रह था जो १९२३ में प्रकाशित हुआ। १५ वर्ष बाद अपने एक अन्य प्रौढ़ संग्रह का नाम ढूँढ़ते हुए कवि को इस पहले संग्रह का ध्यान आया और उसने इस संग्रह का नाम भी 'अनामिका' रखा। इस संग्रह में पिछले संग्रह की कोई भी कविता नहीं है। परन्तु अन्य अनेक प्रारम्भिक कविताओं को कवि ने पहली बार इस संग्रह में स्थान दिया है। इन प्रारम्भिक कविताओं के सम्बन्ध में हम पहले विचार कर चुके हैं। अब हम 'अनामिका' (१९३८) की उन प्रौढ़ कविताओं को लेंगे जो रचना-कालक्रम से परिमल (१९३०) और गीतिका (१९३६) के बाद आती है।

'परिमल' और 'अनामिका' की प्रौढ़ रचनाओं की तुलना करने में पहली बात जो बड़ी सरलता से समझ में आ जाती है, वह यह है कि इस नये काव्य-संग्रह में निराला का स्वर बदल गया है। नये प्रयोग यहाँ भी हैं, विशेषकर छंदों के क्षेत्र में, परंतु शैली और विचारधारा की दृष्टि से महान् अंतर हो गया है। कवि निःसन्देह एक नये प्रकार की काव्य-सृष्टि कर रहा है। वह स्वच्छंदवाद से कुछ दूर हट गया है। रवीन्द्रनाथ और विवेकानन्द के प्रभाव को भी उसने पीछे छोड़ दिया। अब उसका स्वर उसका अपना निजी स्वर है। जान पड़ता है,

कालिदास-प्रभृति क्लासिकल कवियों का प्रभाव उसने स्वीकार कर लिया है। महान् आकांक्षा के साथ वह अपनी एक नितांत अभिनव सृष्टि में प्रवेश कर रहा है। सच तो यह है कि 'अनामिका' (१९३८) और तुलसीदास (१९३८) निराला की अन्य रचानाओं की श्रेणी में नहीं आते। इन दोनों ग्रन्थों में कवि ने अपने ऊपर विजय प्राप्त कर ली है। वह श्रेष्ठ कलाकार-कवि के रूप में हमारे समाने आता है। जो कुछ कहता है, वह विचार की दृष्टि से ही पुष्ट नहीं है, शैली-गत प्रौढ़ता के भी दर्शन प्रत्येक रचना में हो जाते हैं। 'परिमल' की कविताएं कवि का पहला काव्योच्छ्वास था। अनामिका तक पहुँचते-पहुँचते भाषा, छंद, शैली और विचार सब में उसने प्रौढ़ता प्राप्त कर ली है। जहाँ शैली (Diction) का सम्बन्ध है, वह तुलसीदास और कालिदास की प्रौढ़ रचनाओं से प्रभावित है। एक महान् कला-साधना को लेकर वह एक नये काव्य-जीवन में प्रवेश कर रहा है। इसी कारण 'अनामिका' की कुछ कविताएँ और 'तुलसीदास' आधुनिक हिंदी साहित्य में एक विशेष श्रेणी की चीजें हैं। अधिकांश कविताएँ लम्बी हैं और आश्चर्य की बात यह है कि उनमें कहीं ज़रा भी शिथिलता नहीं आई है। लगता है, जैसे सब पूर्ण हो, कहीं भी कुछ एक दो शब्द जोड़ने को शेष नहीं रह गया।

१९३५ तक आते-आते छायावाद-काव्य के प्रति विरोध बहुत कुछ कम हो गया था; परन्तु वह एकदम निःशेष हो गया है, यह बात नहीं। ब्रजभाषा के प्रेमी साहित्यिक और कवि इस नये काव्य के प्रति उदासीन ही नहीं थे, वह इसका बराबर तीव्र विरोध कर रहे थे, इस संदर्भ को समझ लेने पर निराला की कविता 'मित्र के प्रति' की ये पंक्तियाँ अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती हैं। प्राचीनता के प्रेमी के प्रति व्यंग्य करता हुआ कवि कहता है—

कहते हो, "नीरस यह
बन्द करो गान—
कहाँ छन्द, कहाँ भाव,
कहाँ यहाँ प्राण ?
"था सर प्राचीन सरस,
सारस-हंसों से हँस;
वारिज-वारिद में बस
रहा विवश प्यार;

जल तरङ्ग ध्वनि, कलकल
बजा तट-मृदङ्ग सदल;
पैंगें भर पवन कुशल
गाती मल्लार !"

सत्य, बन्धु, सत्य; वहाँ
नहीं अर्र-बर्र;
नहीं वहाँ भेक, वहाँ
नहीं टर्र-टर्र;

एक यहीं आठ पहर
वही पवन हहर-हहर,
तपा तपन, ठहर ठहर
सजल कण उड़े;

गये सूख भरे ताल,
हुए रूख हरे शाल,
हाय रे मयूर-व्याल
पूंछ से जुड़े

वस्तुतः यह उस समय की साहित्यिक परिस्थिति का बड़ा सुन्दर दिग्दर्शन था। ब्रजभाषा काव्य और खड़ी बोली काव्य—'मयूर'

ज्वाल पूँछ से जुड़े।' परन्तु अगली पंक्तियों में कवि का व्यंग्य अधिक स्पष्ट हो जाता है। वह कहता है—

देखे कुछ इसी समय
दृश्य और और
इसी ज्वाल में लहरे
हरे ठौर ठौर

नूतन पल्लव दल, कलि,
मँडलाते व्याकुल अलि,
तनु-तन पर जाते बलि
बार-बार हार;
बही जो सुवास मन्द,
मधुर-भार-भरण छन्द
मिली नहीं तुम्हें, बन्द
रहे, बंधु, द्वार ?

स्पष्ट है, कवि ने अब अपने ऐतिहासिक महत्त्व को समझ लिया है। इसी से उसके स्वर में उसकी पंक्ति पंक्ति में आत्मविश्वास बोल रहा है। सारे साहित्य में, नई धारा के किसी प्रवर्तक ने इतने आत्मविश्वास के साथ नई-नई लीकें नहीं डाली हैं। कवि अबाध गति से बढ़ना चाहता है। छन्द, भाव, भावना, समाज संस्कार—किसी भी प्रकार के रूढ़ि-बंधन उसे वांछनीय नहीं हैं। वह चिल्ला पड़ता है—

तोड़ो, तोड़ो, तोड़ो कारा
पत्थर की, निकलो फिर,
गंगा-जल-धारा

इसी से जहाँ भी, जो कोई भी, रूढ़ि के विरुद्ध हथियार उठाता है, यह विद्रोही कवि उसके साथ है। 'सम्राट एडवर्ड अष्टमके

प्रति' कविता में वह उनके सिंहासन त्याग से प्रभावित हुआ जान पड़ता है। जातिगत, धर्मगत, साहित्यगत सारे भेदों को वह निरर्थक समझता है। वह युगसंदेश को इस प्रकार हमारे सामने रखता है—

'जो करे गंध-मधु का अर्जन,
वह नहीं भ्रमर;
मानव-मानव से नहीं भिन्न,
निश्चय, हो श्वेत, कृष्ण अथवा,
वह नहीं क्लिन्न;

भेद कर पङ्क
निकलता पवन जो मानव का
वह निष्कलङ्क,
हो कोई सर''

नरेन्द्र-वन्दित इस महान् सम्राट् ने क्या छोड़ा, जो छोड़ा, उसका ऐश्वर्य यह पढ़िये—

वैभव विशाल
साम्राज्य सप्तसागर तरंग-दल-दत्त-माल,
है सूर्य छत्र
मस्तक पर सदा विराजित,
ले कर-आतपत्र,
विच्छुरित घटा—
जल-स्थल-नभ में
विजयिनी वाहिनी—विपुल घटा,
क्षण क्षण भर पर
बदलती इन्द्रधनु इस दिशि से
उस दिशि सत्वर,

वह महासद्म
लक्ष्मी का शत-मणि-लाल-जटित
ज्यों रक्तपद्म,
बैठे उस पर,
नरेन्द्र-वंदित, ज्यों देवेश्वर।

निराला का यह ओजस्वी स्वर और अनेक कविताओं में गूँज रहा है। अधिकांश कविताओं में स्वयं कवि ही कविता का विषय है। संघर्षों के बीच में भी उसका स्वर दब नहीं गया है। 'वनवेला' लीजिये। लड़ते-लड़ते थक कर कवि सोचता है।

'हो गया व्यर्थ जीवन,
मैं रण में गया हार।'

वह फिर सोचता है—

"मैं भी होता
यदि राजपुत्र—मैं क्यों न सदा कलंक ढोता,
ये होते—जितने विद्याधर—मेरे अनुचर,
मेरे प्रसाद के लिये विनत-सिर उद्यत-कर;
मैं देता कुछ, रख अधिक, किन्तु जितने पेपर;
सम्मिलित कंठ से गाते मेरी कीर्ति अमर
जीवन-चरित्र
लिख अग्रलेख अथवा छापते विशाल चित्र
इतना भी नहीं, लक्षपति का भी यदि कुमार
होता मैं, शिक्षा पाता अरब समुद्र पार,
देश की नीति के मेरे पिता परम पंडित
एकाधिकार रखते भी धन पर, अविचल चित
होते उग्रतर साम्यवादी, करते प्रचार,
चुनती जनता राष्ट्रपति उन्हें ही सुनिर्धार,

पैसे में दस राष्ट्रीय गीत रच कर उन पर
कुछ लोग बेचते गा गा गर्दभ-मर्दन स्वर
हिन्दी-सम्मेलन भी न कभी पीछे को पग
रखता कि अटल साहित्य कहीं यह हो डगमग,
मैं पाता ख़बर तार से त्वरित समुद्र पार,
लार्ड के लाड़लों को देता दावत-विहार;
इस तरह ख़र्च केवल सहस्र षट मास मास
पूरा कर आता लौट योग्य निज पिता पास
वायुयान से, भारत पर रखता चरण-कमल,
पत्रों के प्रतिनिधि दल में मच जाती हलचल,
दौड़ते सभी, कैमरा हाथ, कहते सत्वर
निज अभिप्राय, मैं सभ्य मान जाता झुक कर,
होता फिर खड़ा इधर को मुख कर कभी उधर,
बीसियों भाव की दृष्टि सतत नीचे ऊपर;
फिर देता दृढ़ सन्देश देश को मर्मांतिक,
भाषा के बिना न रहती अन्य गंध प्रांतिक,
जितने रूस के भाव मैं कह जाता अस्थिर,
समझते विलक्षण ही जब वे छपते फिर फिर,
फिर पिता संग
जनता की सेवा का व्रत मैं लेता अभंग
करता प्रचार
मंच पर खड़ा हो, साम्यवाद कितना उदार

यहाँ व्यंग्य स्पष्ट है। पं० जवाहरलाल और मोतीलाल की ओर उँगली उठाई गई है। साहित्य और राजनीति की साधनाओं की तुलना है। साहित्यिक वनबेला है। प्रसिद्धि की उसे आकांक्षा नहीं। वह तो एकांत में तपता है। जहाँ बेला खिली है, उस निर्जन की ओर लोगों का ध्यान भी नहीं जाता। इस बेला ने-

'केवल आपा खोया, खेला
इस जीवन में'

वेला कवि को नया जीवन तत्त्व देती है। राजनीति में बाहरी चमक-दमक है, इसीलिए प्रसिद्धि है। साहित्य अपने भीतर-भीतर तपता है। राजनीति में एक बड़ा है, शेष छोटे। साहित्य में सब सम। इसी से कवि कहता है—

'''देख मंद हँस दी बेला,
बोली अस्फुट स्वर से—'यह जीवन का मेला
चमकता सुघर बाहरी वस्तुओं को लेकर,
त्यों-त्यों आत्मा की निधि पावन बनती पत्थर।
बिकती जो कौड़ी मोल
यहाँ होगी कोई, इस निर्जन में,
खोजो, यदि हो समतोल
वहाँ कोई विश्व के नगर-धन में।
है वहाँ मान,
इसलिए बड़ा है एक, शेष छोटे अजान;
पर ज्ञान जहाँ,
देखना,—बड़े, छोटे, असमान, समान वहाँ :—
सब सुहृद् वर्ग
उनकी आँखों की आभा से दिग्देश स्वर्ग।

तप, परसेवा और बलिदान को ही कवि ने श्रेष्ठ जीवन माना है और उसी के अनुसार अपने जीवन और काव्य की संस्कृति गढ़ी है। बारबार यही तपनिष्ट भावना कवि में भर उठती है। 'कविता के प्रति' कविता में कवि विश्रुत कवियों के सामने विनम्र होकर 'मेरे कुछ भी नहीं' कहकर अपनी साधना भारती के चरणों पर धर रहा है। काव्य के विषय में कवि का प्रगतिशील दृष्टिकोण

साहित्य-सेवा का रूपक बाँधा गया है। वनबेला कवि है। एकांत निर्जन में वनबेला ने रूप, सौन्दर्य और सुगन्ध में जो सहस्र सहस्र छंद उठाये हैं उन्हें कवि के काव्य में सहस्रावधि चमत्कार समझा जा सकता है। 'दान' शीर्षक कविता में उन दयालु धार्मिकों के ऊपर व्यंग्य है जो मनुष्य की उपेक्षा करते हैं और धर्म के नाम पर पशु पक्षियों का प्रसाद बाँटते हैं :

एक ओर पथ के, कृश काय
कंकाल शेष नर मृत्यु-प्राय
बैठा सशरीर दैन्य दुर्बल,
भिक्षा को उठी दृष्टि निश्चल;
अति क्षीण कंठ, है तीव्र श्वास,
जीता ज्यों जीवन से उदास।
ढोता जो वह, कौन-सा शाप?
भोगता कठिन, कौन-सा पाप?
यह प्रश्न सदा ही है पथ पर,
पर सदा मौन इसका उत्तर।

आधुनिक युग की दानशीलता पर कैसा व्यंग्य है—

विप्रवर स्नान कर चढ़ा सलिल
शिव पर दूर्वादल, तंडुल, तिल,
लेकर झोली आये ऊपर,
देखकर चले तत्पर वानर।
द्विज रामभक्त, भक्ति की आश
भजते शिव को बारहों मास;
कर रामायण का पारायण
जपते हैं श्रीमन्नारायण;
दुख पाते जब होते अनाथ,
कहते कपियों से जोड़ हाथ,

मेरे पड़ोस के वे सज्जन
करते प्रतिदिन सरिता-मज्जन
झोली से पुए निकाल लिये
बढ़ते कपियों के हाथ दिये;
देखा भी नहीं उधर फिर कर,
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर,
चिल्लाया किया दूर दानव,
बोला मैं—"धन्य, श्रेष्ठ मानव!"

'सरोजस्मृति' में यह व्यंग्य कुछ अधिक पुष्ट होकर आया है। उन्नीस वर्ष की छोटी आयु में निरालाजी की एकमात्र कन्या का देहावसान हो गया। कन्या विवाहित थी, परन्तु उसका वैवाहिक जीवन विशेष सुखी न हो सका। इन दिनों निरालाजी कुटुम्ब की चिन्ता में पागल से हो गये थे। तिल-तिल करते उन्होंने अपने सगे-सम्बन्धियों को घुलते देखा है; परन्तु साहित्य-साधना लक्ष्मी की साधना नहीं है। 'पुत्री' की स्वर्गगता आत्मा को सम्बोधित करके कवि कहता है—

धन्ये, मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित कर न सका।
जाना तो अर्थागमोपाय,
पर रहा सदा संकुचित-काय;
लख कर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ-समर।
शुचिते, पहना कर चीनांशुक
रख सका न तुझे अतः दधिमुख।
क्षीण का न छीना कभी अन्न,
मैं लख न सका वे दृग विपन्न;

७

नई कविता

(अ) भूमिका

१९२४ ई० में जब पुच्छलतारे की भाँति निराला साहित्य-क्षितिज पर एकाएक उदित हुए, तो उन्हें अपने युग के सबसे बड़े क्रांतिकारी कवि माने जाने का श्रेय मिला। काव्य की परंपरागत रूढ़ियों और नये-पुराने बंधनों पर जितने प्रहार उन्होंने किये, उतने प्रहार कदाचित् किसी कवि ने नहीं किये। उनकी प्रारंभिक कविताएँ मतवाला, नारायण, सरोज और माधुरी में प्रकाशित हुईं। उन दिनों किसी कवि को लेकर इतना बवंडर, इतना वाद-विवाद नहीं उठा था। उन वज्रप्रहारों से छोटा-मोटा साहित्यिक तो एकदम पिस जाता। परन्तु निराला में इतना दम-खम था कि उन्होंने अपने विरोधियों का अखाड़े में उतर कर सामना किया। 'परिमल', 'अनामिका' और 'गीतिका' की कविताओं पर एक महान् व्यक्तित्व की छाप है जो अपने निश्चित पथ पर अबाध गति से बढ़ा चला जा रहा है। चोटों से वह एकदम बच गया हो, यह बात नहीं; परन्तु उसे उसकी परवाह भी नहीं है। जिन लोगों का निराला के क्रांतिकारी प्रयोगों में विश्वास नहीं था, उनके हाथों उन्हें दुःख उठाना पड़ा, कड़वाहट झेलनी पड़ी और इसी से उनकी कविताओं में मानसिक संघर्ष, अहंता और विद्रोह के चिन्ह स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ते हैं। ऐसा होना स्वाभाविक भी था। वर्षों तक निराला अकेले अखाड़े में जूझते रहे। तिल-तिल कर वे गले। परन्तु अपने युग के कवियों और साहित्यिकों के लिए वह बराबर

अगाध शक्ति के स्रोत बने रहे, इसमें भी कोई संदेह नहीं। दरिद्रता से उनकी भेंट हुई। छोटे-छोटे भतीजों और बालकों को लेकर उन्हें अकेले गृहस्थी चलानी पड़ी। तरुणाई के पहले स्वप्न भी खत्म नहीं हुए थे कि वे विधुर बन गये। उनकी एकमात्र पुत्री सरोज़ का वैवाहिक जीवन अशांत रहा और उन्नीस वर्ष की छोटी अवस्था में उसका देहांत हो गया। उनके एकमात्र पुत्र चिरंजीव रामकृष्ण को विशेष अध्ययन की सुविधाएँ नहीं मिल सकीं और पिता की ओर से उसका मन कुंठित हो गया। घर के बाहर, बाजार में, सड़क पर, साहित्य-गोष्ठियों में निराला अपने विद्रोही काव्य की बात इतने जोर से उठाते, इतने उग्र बन जाते कि उन्हें बहुत कम समर्थक मिलते। उनके लिए साहित्य साधना थी और उस युग में साहित्य को जीवन-साधना कहने वाले पर लोग हँसते थे।

यह विद्रोह-भरा, क्रांतिकारी अतिमानव अतीव मानसिक और आर्थिक संघर्ष के बीच भी बराबर लेखनी चलाता रहा। सुन्दर कविताएँ, साहसपूर्ण नवीनता जिनमें थी ऐसी कविताएँ, विद्रोही कविताएँ उसने लिखीं। अर्थ के लिए उसने गद्य से नाता जोड़ा और एक नये प्रकार के प्राणवान, व्यंग-प्रधान अत्यंत अलंकृत गद्य की नींव उसने डाली। अप्सरा, अलका, निरुपमा, चतुरी चमार, सखी, प्रभावती और कुल्ली भाट— ये उनकी सर्वोत्तम गद्य-रचनाएँ थीं। हिंदी कथा-साहित्य में निराला ने नई कला, नई शैली, नए प्रकार के चरित्रों का समावेश किया। उनकी रचनाओं ने हिंदी कथा-साहित्य को बल दिया है, इसमें कोई संदेह नहीं है। सम-सामयिक आलोचकों ने निराला की प्रतिभा को पहचाना नहीं और इन विरोधी आलोचकों का मुँहतोड़ उत्तर देने के लिए निराला ने स्वयं अपने गीतों और कविताओं की व्याख्या की, आलोचना लिखी;

और अपने आलोचकों को धिक्कारा। हिंदी साहित्य के सारे इतिहास में निराला से अधिक संघर्षों के बीच गुज़रने वाला साहित्यक नहीं मिलेगा। इस महान् व्यक्ति के लिए साहित्य क़लम की साधना नहीं, जीवन की साधना रही है।

निराला की नई कविताओं को इस पृष्ठभूमि में रखना होगा। उनकी विचारधारा, उनके प्रयोगों और उनकी कला का इतिहास स्वयं उनके व्यक्तित्व में सम्मिलित है। 'कुकुरमुत्ता' (१९४२), 'अणिमा' (१९४३), 'बेला' और 'नये पत्ते' (१९४६) उनकी नई रचनाएँ हैं। इन संग्रहों में पिछले आठ वर्षों की काव्य-साधना छिपी हुई है। इन कविताओं को 'युद्धकालीन प्रयोगात्मक कविताएँ' भी कह सकते हैं। उनमें से कुछ कविताएँ १९३८ ई० में 'उच्छृङ्खल' (मासिक पत्र, प्रयाग) में पहली बार प्रकाशित हुई थी। तब उन्हें लेकर अनेक प्रकार के वितंडावाद उठ खड़े हुए थे। अनेक आलोचक उनकी ओर आकर्षित हुए, परंतु निराला के प्रशंसक अनेक आलोचकों को इन कविताओं से धक्का भी लगा। आज के अनेक पाठक इन कविताओं की उपेक्षा करते हैं। आलोचक इन्हें समझ ही नहीं पाते। वे निराला के व्यक्तित्व के विकास को लेकर नहीं चलते। निराला की कविता उनके व्यक्तित्व से इतनी गुँथी चलती है कि अलग-अलग रहकर स्वतन्त्र रूप से कदाचित् उसका अध्ययन ही नहीं हो सकता।

'कुकुरमुत्ता' और 'खजोहरा' निराला की दो प्रसिद्ध नई कविताएं हैं। वे हमारे समाज और हमारी अपनी सामाजिक धारणाओं पर तीव्र व्यंग्य हैं। 'कुकुरमुत्ता' असंस्कृत सामान्य का प्रतीक है जो अपने चारों ओर के स्वाभाविक प्राकृत वातावरण से बल लेकर विकास को प्राप्त होता है। कुकुरमुत्ते में क़लम नहीं लगती, वह उगाया नहीं जाता। इसी तरह सामान्य

मानवता स्वतः विकसित चीज़ है। वह नक़द है, उधार नहीं। एक नवाब हैं। फ़ारस से गुलाब मँगाया है और उनसे अपने बाग़ की रविशें सजा रखी हैं। बेटी बहार मालिन की लड़की गोली के यहाँ कुकुरमुत्ते का कबाब खाती है तो घर लौटकर नवाब साहब से उसके स्वाद की बड़ाई करती है। नवाब माली को बुलाकर गुलाब की रविश में कुकुरमुत्ता उगाने की आज्ञा देते हैं, परन्तु उत्तर मिलता है—

मुआफ करें ख़ता;
कुकुरमुत्ता उगाया नहीं जाता

व्यंग्य स्पष्ट है, यद्यपि 'कुकुरमुत्ता' की श्रेष्ठता दिखाने के लिए उसको इतना महत्त्व दे दिया जाता है, संसार की इतनी अधिक चीज़ों पर उसका आरोप किया जाता है कि व्यंजना विस्तार के आगे दब जाती है। इसी तरह की एक दूसरी व्यंग्य-प्रधान कविता 'खजोहरा' है। इस कविता में कुछ नग्न अश्लीलता का भी समावेश हो गया है, यद्यपि बीच-बीच में कुछ स्वस्थ व्यंग्य भी गुँथ गये हैं। वर्षा के बादलों का वर्णन करते हुए कवि काला चोग़ा पहने हुए हाईकोर्ट के वकीलों के थोथे निरुद्देश्य जीवन और उनके अर्थहीन हास-परिहास की खिल्ली उड़ाता है—

दौड़ते हैं बादल ये काले-काले
हाईकोर्ट के बगुले मतवाले
जहाँ चाहिये वहाँ नहीं बरसे,
धान सूखा देखकर नहीं तरसे,
जहाँ पानी भरा वहाँ छूट पड़े,
कहकहे लगाते हुए टूट पड़े

कुछ गाँव के यथार्थ चित्रण तो ऐसे हैं कि आधुनिक हिंदी काव्य में ढूँढ़े भी नहीं मिलेंगे—

१—कच्चे घर ऊबड़ खाबड़, गंदे
गलियारे, बन्द पड़े कुल धन्धे
लोग बैठे लेते हैं जमहाई,
ठंडी ठंडी चलती है पुरवाई

खरीफ निराई जा चुकी है, नहीं
करने को रहा कोई काम कहीं
बारिश से बढ़ी ज्वार, बाजरा, उर्द,
गाँव हरे-भरे कुल, कलाँ और खुर्द
लोग रोज रात को आल्हा गाते
ढोलक पर, अपना जी बहलाते
झूला झूलती गातीं हैं सावन
औरतें, "नहीं आये मन भावन"
लड़के पैंगें मारते हैं बढ़-बढ़ कर
गूँज रहा है भरा हुआ अम्बर

२—बाईं बगल कुछ आगे बढ़ी पड़ी
गाँव के किनारे की बड़ी गड़ही
भरी हुई किनारे तक, उमड़ चली
बहती हुई गाँव के नाले से मिली
मेंढक एक बोलता 'है जैसे सुकरात,
दूसरा फलातूँ सुन रहा है बात
तेज हवा से पछाँह को झुके
ज्वार के पौधे सिपाही जैसे दिखे
बनबिलाव यालिब से जैसा अड़ा
घोंसले के पास गूलर पर चढ़ा
इसी वक्त बिल से लोमड़ी निकली,
इधर-उधर देखती आगे बढ़ी

मुजैल एक बोलती है "पंडित जी"
मेंड़ के किनारे चुगती है पिड़की
सतभैये एक पेड़ के नीचे
दूसरी पार्टी से लड़ाती है पंजे
एक डाल पर बैठी हुई रुकमिन
बुआ को याद आये पी से मिलने के दिन
एक पेड़ पर बये की झोंझ दिखीं
अलग-अलग झूले जैसी कितनी लटकीं।
एक तरफ भगा हुआ मोर गया,
झाड़ी से चौगड़ा कूदता निकला
दूर चला जाता है हिरनों का झुंड
भैंसों के लेवारे वाला मिला कुंड;
दौड़ कर बबूल पर चढ़ा गिरदान,
देखा बुआ ने भवों की तिरछी तान

'प्रेम-संगीत' शीर्षक कविता में वह प्रेम की स्वर्गीय ईश्वरता और समाजगत धारणा के प्रति व्यंग्य करते हैं—

वम्हन का लड़का
मैं उसे प्यार करता हूँ।
जात की कहारिन वह,
मेरे घर की है पनहारिन वह;
आती है होते तड़का,
उसके पीछे मैं मरता हूँ।
कोयल-सी काली, अरे,
चाल नहीं उसकी मतवाली,
व्याह नहीं हुआ, तभी भड़का
दिल मेरा; मैं आहें भरता हूँ।

रोज आकर जगाती है सबको,
मैं ही समझता हूँ इस ढब को,
ले जाती है मटका बड़का,
मैं देख-देख कर धीरज धरता हूँ।

इस प्रकार की विद्रोह-प्रधान कविताओं में हमारे अपने युग का प्रतिबिंब स्पष्ट रूप से खिल उठा है। समाजवादी और साम्यवादी, (कम्यूनिस्ट) आलोचकों ने छायावादी (स्वच्छंदवादी, रोमांटिक) कवियों के प्रति यह लांछा लगाई थी कि उनका काव्य जीवन की वास्तविकता से दूर भागता है। उन्होंने अपील की कि साहित्य को जीवन के निकटतम लाया जाये। राजनीति में काँग्रेस और गांधीवाद की प्रधानता थी। इन्हें नई राजनीतिक संस्थाओं ने प्रतिक्रियावादी कहा और राजनीतिक शक्ति को हस्तांतरित करने के लिए नये साधनों की बात चलाई। अहिंसा और सत्याग्रह इनके लिए कोई महत्त्वपूर्ण साधन नहीं थे। इस प्रकार के नये दृष्टिकोण से प्रभावित होकर जो धारा चली उसे 'प्रगतिवाद' कहा गया। स्वच्छन्दतावाद (छायावाद) के कई प्रधान कवियों (निराला, पंत, भगवती बाबू) ने इस नई साहित्य-धारा में योग दिया। वे इस नई साहित्यिक प्रवृत्ति के नेता अवश्य नहीं बन सके। उनके काव्य में बारंबार पुराने काव्य की झलक दिखलाई पड़ जाती थी। निराला अपने पहले क्रांतिकारी प्रयोगों और रूढ़ियों के प्रति जीवन-व्यापी संघर्ष के कारण इस नये काव्य के उन्नायक के रूप में विशेष लोकप्रिय हुए। नये साहित्य के नेता के रूप में उन्हें स्वीकार किया गया। विशेष वर्ग से प्रोत्साहन पाकर निराला और भी उग्र हो उठे और उनके काव्य में संयम की मात्रा बराबर कम होती गई। उनका अधिकांश नया काव्य न अच्छा गद्य है, न अच्छा काव्य। परंतु नए साहित्य के प्रचारकों ने निराला के नए काव्य को कला की श्रेष्ठ-

तम वस्तु प्रसिद्ध किया और प्रगतिवादी लेखकों में उन्हें शीर्ष-स्थान दिया।

परंतु निराला की लोकप्रियता के और कारण भी थे। प्रगतिवादी लेखकों का यौन-व्यापार, नंगेपन (नग्न, स्थूल नारीसौन्दर्य का चित्रण), प्रयोगों और साधारण जन (प्रोलेतरेत) के प्रति मोह था। काव्य की भाषा गद्य की भाषा से बहुत अधिक भिन्न नहीं थी। नए काव्य में 'हिन्दुस्तानी' आदर्श भाषा थी। निराला जैसे पुरातन काव्य के प्रेमी, क्लासिकल कवि से जिसने 'तुलसीदास' और 'राम की शक्ति-पूजा' जैसे सुन्दर खंडकाव्य-हिंदी को दिये, यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वह प्रतिदिन-की भाषा में जनता के सफल कवि हो सकेंगे। उनकी काव्य-सृष्टि का बहुत कुछ महत्त्वपूर्ण अंश इस नये काव्य में आ ही नहीं सकता था। स्वयं 'निराला' जानते थे कि भारतीय काव्य परंपरा में काव्य की उत्कृष्टता किन विशेषताओं पर आश्रित है। 'पंत' ने जब नया काव्य लिखना शुरू किया था तो उन्हें एक पत्र लिख कर उन्होंने चेतावनी दी थी। "एक बात कहता हूँ, हिंदी में अपनी कल्पना-शक्ति के लिए आप बेजोड़ समझे जाते हैं और अपनी अपराजिता भाषा के लिए; इसी मौलिक सागर की ओर हिंदी के नवयुवकों के हृदय के नदी-नद बहे हैं; वे आपसे कुछ हताश हो गये हैं, इसी ओजस्विनी वाणी का कल्पनामृत पिलाइये। हिंदी बड़ी ग़रीब है; कवि कल्पना से बड़ा धन साहित्य में और नहीं।" परंतु स्वयं निराला जनकाव्य की आवाज़ सुनते ही अपने प्रकृत क्षेत्र से बाहर आ गये। फल यह हुआ कि उनका नया काव्य उनके पिछले काव्य की 'पैरोडी' (उपहास) बन गया। उन्हें घेरकर एक महान बवंडर उठ खड़ा हुआ। निराला ने उसे झेला तो, परंतु उनके पैर डगमगा गये, हाथ काँप गये। इसके बाद कुछ क्लासिकल कविताओं को

छोड़ कर निराला बराबर प्रयोग करते रहे; बराबर टूटी वंशी में सुर भरते रहे। इन कविताओं में नवीनता थी, युग का चैलेञ्ज था। कलाकार निराला, क्लासिकल निराला, स्वच्छंदतावादी निराला की प्रतिष्ठा इन कविताओं के भीतर नहीं हो सकी थी। इन कविताओं से यह स्पष्ट है कि कोई भी कवि सारे जीवन भर न स्वस्थ रूप से क्रांतिकारी हो सकता है, न उच्छृङ्खलता और प्रयोगों का नाम ही श्रेष्ठ काव्य है।

इन नई कविताओं में कुछ कविताएँ ऐसी हैं जिनमें निराला ने उर्दू ग़ज़ल के नये ढङ्ग अपनाये हैं। जहाँ तक भाषा और प्रकार का संबंध है, ये गज़ल हैं; परन्तु उनमें उर्दू गज़ल की आत्मा वे नहीं भर सके हैं। जहाँ तक प्रयोग का संबंध है, वह अभिनंदनीय हैं। मराठी में माधव जूलियन और बँगला में काज़ी नजरुल इस्लाम ने ग़ज़लें लिखी हैं। यदि हिंदी कवि उर्दू ग़ज़ल को अपना लें तो वे एक नए प्रकार के मुक्तक काव्य की सृष्टि कर सकेंगे। इससे पिंगलशास्त्र में भी विशेष वृद्धि होगी और भाषा और भावना की दृष्टि से हिंदी उर्दू काव्य पास आ जायँगे। निराला की अधिकांश ग़ज़लें उर्दू-भाषा और उर्दू विचारावली का पिष्टपेषण हैं। परन्तु कहीं-कहीं कुछ पंक्तियाँ बड़ी प्रभावोत्पादक बन पड़ी हैं जैसे—

बीन की झंकार कैसी
बस गई मन में हमारे
धुल गई आँखें जगत की
खुल गये रवि चंद्र तारे

परन्तु इस प्रकार की गज़लें बहुत कम हैं। इन नई कविताओं में कई कविताएं ऐसी हैं जिनमें निराला का प्रकृत, सशक्त स्वर

बोल रहा है। निराला अथक संघर्ष, अटूट साहस के कवि हैं वे लिखते हैं—

क्या दुःख, दूर कर दे बंधन,
यह पाशव पाश और क्रन्दन

या

तू कभी न ले दुःख की आड़
शत्रु को समर जीते पछाड़

कुछ कविताओं में 'गीतिका' के गीतों की रहस्यवादी धारा बह रही है—

प्रभु के नयनों से निकल कर
ज्योति के सहस्रों कोमल शर
हर गये धरा के व्याध शत्रु
वह चली अमृत जल की शतद्रु
जीवन के मरु का छायातरु
लहराया उत्कल-जल निर्भर

एक दूसरा गीत है—

नाथ, तुमने गहा हाथ, वीणा बजी;
विश्व यह हो गया साथ; द्विविधा लजी
खुल गये डाल के फूल, रँग गये मुख
विहग के, धूल मग की हुई विमल सुख;
शरण में मरण का मिट गया महादुख,
मिला आनन्द पथ-पाथ; संसृति सजी
जल-भरे जलद जैसे, गगन में चले,
अनिल अनुकूल होकर लगी साले;

नमित जैसे पनस-आम-जामुन फले,
स्नेह के सुने गुण-गाथ, माया तजी

कई प्रार्थना-गीत ऐसे हैं जो सामान्य मानव में देवत्व की स्थापना करते हैं। कवि गर्व के साथ कहता है—

प्रति जन को करो सफल।
जीर्ण हुए जो यौवन,
जीवन से भरो सकल।
नहीं राजसिक तन-मन,
करो मुक्ति के बंधन,
नन्दन के कुसुम-नयन,
खोलो मृदु-गंध विमल।
जागरूक कलरव से,
भरें दिशाएँ स्तव से,
सरसी के नव, नव से
मुँदे हुए खुलें कमल।
रँगे गगन अन्तराल,
मनुजोचित उठे भाल,
छल का छुट जाय जाल,
देश मनावे मंगल।

ऐसी सुन्दर कविताएँ निराला के परवर्ती काव्य का गौरव हैं, परन्तु ऐसी कविताएँ बहुत कम हैं और दूर-दूर बिखरी पड़ी हैं। कभी-कभी ऐसा लगता है, निराला की काव्य-प्रतिभा फिर जागरूक हो उठी है, परन्तु शीघ्र ही उनका स्पर्श शिथिल हो जाता है, प्रतिभा प्रयोगों के पथ चलती-चलती लड़खड़ाने लगती है। तब हम यह जान लेते हैं कि काल जीत गया है—निराला के नए प्रयोग साँझ के अंबर-डंबर हैं।

(आ) कुकुरमुत्ता (१९४२)

'निराला' का नया काव्य १९३९ के लगभग आरम्भ होता है, जब उन्होंने, उच्छृंखल' (मासिक पत्र, प्रयाग) में 'प्रेम संगीत' नाम की कविता को प्रकाशित कराया। इस कविता को हमने अन्यत्र उद्धृत किया है। उस समय नये काव्य, नये दृष्टिकोण नई साहित्यिक चेतना की माँग थी। इलियट (T. S. Eliot) और फ्रूड लेखकों और कवियों के आदर्श बन रहे थे। समाजवादी चेतना का रूप अभी सुस्पष्ट नहीं हो पाया था; अतः यौन-व्यापार और नवीन अभिव्यक्ति के ढंग को लेकर ही नया काव्य आगे बढ़ा। 'प्रेमसंगीत' में निराला ने प्रेम के सर्वमान्य आदर्श रूप के प्रति व्यंग्य किया, जातिवर्गवाद की खिल्ली उड़ाई। 'ब्राह्मण' को उन्होंने 'बह्मन' लिखा। कहारी की लड़की के प्रति उनके गोपन प्रेम, उनकी वासना की बात उन्होंने इतनी स्पष्टता से कही कि उनका पाठक वर्ग चकित हो गया। इतनी गर्हित बात कवि कैसे कह गया? वह क्या चाहता है? हिंदी पाठक को व्यंग्य-विषय समझने में थोड़ी देर लगी और जिस प्रकार 'केंचुआ छंद' लिखने के लिए कभी निराला को लांछित होना पड़ा था, वहाँ अपने युग के प्रेम और जातिवाद के आदर्शों की खिल्ली उड़ाने के लिए उन्हें लांछा सहनी पड़ी। धीरे-धीरे कुछ अन्य व्यंग्य-कविताएँ सामने आईं। इन कविताओं में सबसे लंबी कविता 'कुकुरमुत्ता' थी और इसने जनता का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया। निराला के छायावाद-काव्य में जो स्थान 'जूही की कली' कविता का है, वही स्थान उनकी नव्य कविताओं में 'कुकुरमुत्ता' को मिलना चाहिये।

'कुकुरमुत्ता' के संबंध में निराला जी के काव्य के आलोचकों को बड़ी उलझन रही है। प्रकाशचंद्र गुप्त लिखते हैं—"कुकुरमुत्ता को निराला जी ने दीन-हीन शोषित जनता का प्रतीक माना है; और गुलाब को शोषक अभिजात वर्ग का। इस रूपक में परंपरागत भाषा, संगीत, उपमाएँ, शब्दचित्र आदि सब विलीन हो गये हैं और एक नई कला का जन्म हुआ है। यह कला कुकुरमुत्ता के ही समान बंजर धरती की उपज है, उसमें रूप, गंध, रस आदि की कमी है, वह भावों की सुकुमारता में नहीं गुदगुदाती, वह पाठकों को सोचने के लिए विवश करती है। 'कुकुरमुत्ता' के समान उसकी एक सामाजिक उपादेयता है।"

निराला जी के चित्रों में अतिरंजना है, किंतु मात्र रूप की उपेक्षा है और वास्तविकता का आग्रह है। कुकुरमुत्ता गुलाब से कहता है—

अबे, सुन बे गुलाब,
'भूल मत गर पाई खुशबू, रंगोआब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा कैपिटलिस्ट,
कितनों को तूने बनाया है गुलाम,
माली कर रक्खा, सहाया जाड़ा-घाम

नये विषय और भावों के अनुरूप ही कवि के काव्य का कायाकल्प हुआ है। उसकी नई उपमाएँ और नये शब्दचित्र मन को आकृष्ट नहीं करते; वे पाठक को चौंका देते हैं। उनमें विनोद है, चुटकी है, किन्तु सौन्दर्य नहीं। निरञ्जन कहते हैं—"अभी तक किसी ने नाम से ही नगण्य कुकुरमुत्ता जैसी वस्तु पर लिखने का विचार न किया था। लोगों को इस बात पर मतभेद रहा कि निराला जी इस कविता में किस पर

व्यंग्य करना चाहते हैं। इस मतभेद का कारण कविता की अस्पष्टता है जो युद्धकाल में उनके विश्वासों के डिग जाने से पैदा हुई है। कुकुरमुत्ता उनके अद्वैतवाद की नक़ल हो सकता है, क्योंकि ब्रह्म की तरह वह बलराम के हल से लेकर आधुनिक पैराशूट तक सभी में व्याप्त है। इसके साथ कुकुरमुत्ता हीन वर्ग का भी प्रतीक है और खाद का खून चूसने वाले गुलाब को वह कैपिटलिस्ट कहकर उसकी निंदा भी करता है। लेकिन दुनिया से गुलाब मिटा दिये जायँ, और उनकी जगह कबाब बनाने के लिए कुकुरमुत्ते ही रह जायँ, यह रूपक भी चुस्त नहीं बैठेगा। उपयोगितावाद के विकृत रूप को स्वीकार करने पर ही ऐसी कल्पना सार्थक लगेगी। शायद निराला जी ने प्रगतिवाद को इसी तरह का उपयोगितावाद समझा था। इसलिए कुकुरमुत्ता का व्यंग्य जहाँ गुलाब को मारता है, वहाँ खुद उसे भी हास्यास्पद बना देता है × × × (गुलाब) उस छांयावादी कविता का प्रतीक है, जो मनुष्य को ऐसी मँझधार में छोड़ देता है, जहाँ कोई सहारा नहीं होता... देवी या चतुरी चमार के साथ कुकुरमुत्ता पढ़ें तो साफ मालूम होगा कि निराला जी का व्यंग्य पहले से निखरा नहीं है, बल्कि फीका पड़ गया है; नयी उलझनों में उनका लक्ष्य अस्पष्ट हो गया है।"

वास्तव में निराला के व्यक्तित्व की तरह 'कुकुरमुत्ता' भी एक संश्लिष्ट रचना है! किसी एक पहलू से उसे पकड़ा ही नहीं जा सकता।

पहले कहानी लीजिये। एक थे नवाब। फ़ारस से मँगाये थे गुलाब। बड़ी बाड़ी में लगाये। देशी पौधे उगा भीये। कई माली नौकर रख कर बाग को गजनवी का बाग बना लिया। सब कुछ सलीकेदार ढङ्ग से सजा। बेला, गुलशब्बो, चमेली, कामिनी, जुही, नरगिस, रातरानी, कमलिनी, चंपा, गुलमेंहदी,

गुलखैरन, गुल-अब्बास, गेंदा, गुलदाउदी, निवाजी, गंधराज के पेड़ क्यारियों में लगे थे। जहाँ फ़ारस का गुलाब खिला था, उसके पास ही गले पर देता हुआ बुत्ता अकड़ कर खड़ा हुआ कुकुरमुत्ता।

बाग़ के बाहर झोंपड़ों में नव्वाब के ख़ादिम रहते थे। उन्हीं में से थी एक मालिन, बीबी सोना माली की थी बंगालिन। उसकी लड़की गोली नवाबज़ादी बहार की हमजोली थी। एक दिन दोनों बाग़ घूमने चलीं। जहाँ गुलाब और कुकुरमुत्ता खिले थे, वहाँ आईं। बहार गुलाबों की बहार ले रही थी; परन्तु गोली कुकुरमुत्ते तोड़ती थी। पूछने पर गोली ने बताया, इसका बड़ा स्वाद कबाब बनेगा। दोनों गोली के घर पहुँची। माँ बंगालिन ने कबाब बनाया और दोनों ने खाया। घर पर आकर बहार ने पिता नवाब से भी कुकुरमुत्ते के कबाब की बात कही। उन्होंने माली को बुलाकर हुक्म दिया : जा, कुकुरमुत्ता ले आ। माली ने कहा—हुजूर, कुकुरमुत्ता अब नहीं रहा, रहे हैं सिर्फ़ गुलाब। नव्वाब गुस्से से काँप कर बोले—चलो, जहाँ गुलाब उगाये हैं, वहाँ कुकुरमुत्ता उगा। सब कुकुरमुत्ता चाहते हैं तो हम भी वही चाहते हैं। माली बोला—खता मुआफ़ ! कुकुरमुत्ता उगाया नहीं जाता।

बस। कहानी इतनी रही। व्यंग्य स्पष्ट है। जनता की संस्कृति की ओर से कवि अपील कर रहा है। हमारी ऊपर की श्रेणी की तहज़ीब देशी नहीं है। अपने देश की मिट्टी की उपज वह नहीं है। वह या तो फ़ारस की मँगाई हुई है या सात समुद्र पार गोरों के देश से उधार ली हुई। इसे ही हम अपनी संस्कृति समझ कर इसकी झूठी चमक-दमक पर इठला रहे हैं। आज हमारी संस्कृति का ख़ाका यह है—

व्यंग्य करना चाहते हैं। इस मतभेद का कारण कविता की अस्पष्टता है जो युद्धकाल में उनके विश्वासों के डिग जाने से पैदा हुई है। कुकुरमुत्ता उनके अद्वैतवाद की नक़ल हो सकता है, क्योंकि ब्रह्म की तरह वह बलराम के हल से लेकर आधुनिक पैराशूट तक सभी में व्याप्त है। इसके साथ कुकुरमुत्ता हीन वर्ग का भी प्रतीक है और खाद का खून चूसने वाले गुलाब को वह कैपिटलिस्ट कहकर उसकी निंदा भी करता है। लेकिन दुनिया से गुलाब मिटा दिये जायँ, और उनकी जगह कबाब बनाने के लिए कुकुरमुत्ते ही रह जायँ, यह रूपक भी चुस्त नहीं बैठेगा। उपयोगितावाद के विकृत रूप को स्वीकार करने पर ही ऐसी कल्पना सार्थक लगेगी। शायद निराला जी ने प्रगतिवाद को इसी तरह का उपयोगितावाद समझा था। इसलिए कुकुरमुत्ता का व्यंग्य जहाँ गुलाब को मारता है, वहाँ खुद उसे भी हास्यास्पद बना देता है × × × (गुलाब) उस छायावादी कविता का प्रतीक है, जो मनुष्य को ऐसी मँझधार में छोड़ देता है, जहाँ कोई सहारा नहीं होता... देवी या चतुरी चमार के साथ कुकुरमुत्ता पढ़ें तो साफ मालूम होगा कि निराला जी का व्यंग्य पहले से निखरा नहीं है, बल्कि फीका पड़ गया है; नयी उलझनों में उनका लक्ष्य अस्पष्ट हो गया है।"

वास्तव में निराला के व्यक्तित्व की तरह 'कुकुरमुत्ता' भी एक संश्लिष्ट रचना है! किसी एक पहलू से उसे पकड़ा ही नहीं जा सकता।

पहले कहानी लीजिये। एक थे नवाब। फ़ारस से मँगाये थे गुलाब। बड़ी बाड़ी में लगाये। देशी पौधे उगा भीये। कई माली नौकर रख कर बाग़ को गजनवी का बाग़ बना लिया। सब कुछ सलीकेदार ढङ्ग से सजा। बेला, गुलशब्बो, चमेली, कामिनी, जुही, नरगिस, रातरानी, कमलिनी, चंपा, गुलमेंहदी,

गुलखैरू, गुल-अब्बास, गेंदा, गुलदाउदी, निवाजी, गंधराज के पेड़ क्यारियों में लगे थे। जहाँ फ़ारस का गुलाब खिला था, उसके पास ही गले पर देता हुआ वुता अकड़ कर खड़ा हुआ कुकुरमुत्ता।

बाग़ के बाहर झोंपड़ों में नव्वाब के ख़ादिम रहते थे। उन्हीं में से थी एक मालिन, बीबी सोना माली की थी बंगालिन। उसकी लड़की गोली नवावज़ादी बहार की हमजोली थी। एक दिन दोनों बाग़ घूमने चलीं। जहाँ गुलाब और कुकुरमुत्ता खिले थे, वहाँ आईं। बहार गुलाबों की बहार ले रही थी; परन्तु गोली कुकुरमुत्ते तोड़ती थी। पूछने पर गोली ने बताया, इसका बड़ा स्वाद कबाब बनेगा। दोनों गोली के घर पहुँचीं। माँ बंगालिन ने कबाब बनाया और दोनों ने खाया। घर पर आकर बहार ने पिता नवाब से भी कुकुरमुत्ते के कबाब की बात कही। उन्होंने माली को बुलाकर हुक्म दिया : जा, कुकुरमुत्ता ले आ। माली ने कहा—हुज़ूर, कुकुरमुत्ता अब नहीं रहा, रहे हैं सिर्फ़ गुलाब। नव्वाब गुस्से से काँप कर बोले—चलो, जहाँ गुलाब उगाये हैं, वहाँ कुकुरमुत्ता उगा। सब कुकुरमुत्ता चाहते हैं तो हम भी वही चाहते हैं। माली बोला—ख़ता मुआफ़! कुकुरमुत्ता उगाया नहीं जाता।

बस। कहानी इतनी रही। व्यंग्य स्पष्ट है। जनता की संस्कृति की ओर से कवि अपील कर रहा है। हमारी ऊपर की श्रेणी की तहज़ीब देशी नहीं है। अपने देश की मिट्टी की उपज वह नहीं है। वह या तो फ़ारस की मँगाई हुई है या सात समुद्र पार गोरों के देश से उधार ली हुई। इसे ही हम अपनी संस्कृति समझ कर इसकी झूठी चमक-दमक पर इठला रहे हैं। आज हमारी संस्कृति का खाका यह है—

एक सपना जग रहा था
साँस से तहज़ीब की,
गोर पद तरतीब की

परन्तु इस सारी कल्चर, सारी बनावट के समकक्ष है देशी संस्कृति, कुकुरमुत्ते की संस्कृति। जिसे इसका स्वाद लगा, उसके लिए विदेशी रस नीरस हैं। बहार इसी देशी संस्कृति की प्रतीक है। परन्तु यह देशी संस्कृति आप उगती है, इस धरती की प्राकृतिक उपज है, उगाई नहीं जाती, विदेशी संस्कृति पर इतराने वाले नवाबज़ादे इस बात को नहीं जानते।

परन्तु इस कहानी से भी बड़े तथ्यों को निराला ने कुकुरमुत्ता के स्वकथन में गूँथ दिया है। अनेक व्यंग्य इन पंक्तियों में सप्राण हो उठे हैं। 'कैपटलिस्ट' के प्रति कवि व्यंग्य करता है—

खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा कैपिटलिस्ट;
कितनों को तूने बनाया है ग़ुलाम,
माली कर रखा, खिलाया जाड़ा-घाम

आधुनिक सभ्यता की स्त्री-पूजा के प्रति कवि का व्यंग्य और भी तीव्र है—

हाथ जिसके तू लगा
पैर सर रख कर वह पीछे को भगा।
जानिब औरत की, लड़ाई छोड़कर,
टट्टू जैसे तबेले को तोड़ कर

यह ऊपरी वर्ग की सभ्यता साधारणों से न्यारी है, शाहों, राजों, अमीरों की प्यारी है। इसके ऐश्वर्य के पीछे धन और सद्भावना का अभाव स्पष्ट है—

चाहिये तुझको सदा मेहरुन्निसा
जो निकाले इत्ररू : ऐसी दिशा
बहा कर ले चले लोगों को, नहीं कोई किनारा
जहाँ अपना नहीं कोई भी सहारा;
ख़्वाब में डूबा चमकता हो सितारा,
पेट में डंड पेलते चूहे, जबाँ पर लफ़्ज प्यारा।

आनिधुक अँग्रेज़ी काव्य पर व्यंग्य देखिए—

कहीं का रोड़ा, कहीं का लिया पत्थर,
टी० एस० इंलियट ने जैसे दे मारा,
पढ़ने वालों ने जिगर पर हाथ रखकर
कहा, "कैसे लिख दिया संसार सारा"

कहीं-कहीं व्यंग्य उपमाओं की प्रवाहमयता के साथ आप आगे बढ़ता जाता है, जैसे—

जैसे प्रोगेसीव का, लेखनी लेते,
नहीं रोका रुकता जोश का पारा

या

आगे चली गोली जैसे डिक्टेटर
उसके पीछे बहार, जैसे भुक्खड़ फालोअर,
उसके पीछे दुम हिलाता टेरियर—
आधुनिक पोएट (Poet)
पीछे बाँदी बचत की सोचती,
कैपिटलिस्ट, क्वेट (Quiet)

इस प्रकार की उपमाएँ जहाँ नवीन क्षेत्र उपस्थित करती हैं, वहाँ काव्य को एक नए प्रकार की शक्ति भी दे देती है। 'कुकुरमुत्ता' की विशेषता यही है कि उसने भाषा, शैली, विचार और भाव-

भंगिमा लगभग सभी क्षेत्रों में एक नई दिशा की ओर इंगित किया है। यह नई दिशा स्वयं निराला के नये काव्य ने कहाँ तक ग्रहण की है, यह दूसरी बात है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुकुरमुत्ता नई कविता का 'आदि काव्य' है। 'जुही की कली' से निराला ने जिस छायावादी-कविता में प्रवेश किया उसके ठीक विपरीत एक नई दिशा को लेकर इस काव्य में उन्होंने बढ़ना शुरू किया है। स्वयं अपनी ही जीवन की साधना को निर्मोही हो कर उन्होंने छिन्न-भिन्न कर दिया है। कहाँ कल्पना का विलास, वाणी का कालिदासी गौरव; कहाँ रवीन्द्रनाथ और विवेकानन्द की ओजस्वी गौरव वाणी से प्रभावित 'परिमल', 'अनामिका' और 'गीतिका'; कहाँ तुलसीदास के अध्यात्म का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण और फिर कहाँ यह नितांत गद्य, यह गद्यमय सजीव व्यंग्य, यह युग की नवीन भाषा में युग के अनुकूल विचार। निराला का यह नया काव्य अपने ही काव्य पर एक तीखे व्यंग्य के रूप में हमारे सामने आता है।

(इ) अणिमा (१९४३)

किसी भी कवि का अपनी काव्य-परंपरा से एकदम हट जाना असंभव है। 'प्रेमसंगीत' (१९३९) और 'कुकुरमुत्ता' (१९४२) जैसी प्रगतिशील नई कविताएँ लिखने के साथ-साथ निराला अपनी पुरानी परिपाटी की रचनाएँ भी लिख रहे थे। 'अणिमा' अधिकतर ऐसी कविताओं का ही संग्रह है।

'अणिमा' में कविताओं के कई प्रकार हैं :

(१) गीत—

अधिकांश गीत 'गीतिका' के गीतों की परंपरा को ही आगे बढ़ाते हैं। भाव, भाषा, शैली सब वही :

निशा का यह स्पर्श शीतल
भर रहा है हर्ष उत्कल

जहाँ प्रकृति-चित्रण का गीत है, वहाँ—

भारत ही जीवन-धन,
ज्योतिर्मय परम रमण,
सर-सरिता वन-उपवन।

तपः पुंज गिरि कन्दर,
निर्भर के स्वर पुष्कर,
दिक् प्रांतर मर्म-मुखर,
मानव मानव-जीवन

'गीतिका' की देश-प्रेम-संबंधी गीतालियों की याद दिलाती हैं। 'स्नेहमन तुम्हारे नयन बसे' कुछ अस्पष्ट प्रेम-काव्य है। परन्तु अधिक महत्त्वपूर्ण गीत या तो प्रार्थनात्मक हैं या रहस्यवादी। कवि इतना विनीत है कि वह धूलि के समान गर्वहारा बन जाना चाहता है :

धूलि में तुम मुझे भर दो।
धूलि-धूसर जो हुए पर
उन्हीं के वर वरण कर दो।
दूर हो अभिमान, संशय,
वर्ण-आश्रम-गत महाभय,
जाति जीवन हो निरामय
वह सदाशयता प्रखर हो।

इसी प्रकार का एक दूसरा गीत है—'दलित जन पर करो करुणा।' एक सुन्दर रहस्यवादी गीत है—

सुन्दर हे, सुन्दर
दर्शन से जीवन पर
बरसे अविनश्वर स्वर ।

ा ज्यों प्राण,
पड़ा सहज गान,
ा-सुरसरिता बही
ारे मंगल पद छूकर ।
ो है तरंग,
' जीवन निस्संग,
ना तुमसे मिलने को
लने को फिर-फिर भर-भर

वि बाबू का यह गीत स्मरण हो आता है-

एहो लोभिनु संग तव,
सुन्दर हे, सुन्दर
पुण्य हॉलो अंग मम
धन्य हॉलो अन्तर
सुन्दर, हे सुन्दर
आलोके मोर चक्षु छूटि
मुग्ध हये उठल फूटि,
हृद्गगने पवन हल,
सौरभते मन्थर,
सुन्दर हे सुन्दर
एहे तोमारि परश-रागे
चित्त हॉलो रंजित,
एहे तोमारि मिलन-सुधा
रहल प्राने संचित

तोमार मांझे एमनि क' रे
नवीन करि लउ जे मोरे,
एहे जनमे घटालो मोर
जन्म-जन्मान्तर,
सुन्दर, हे सुन्दर

इसी प्रकार एक अन्य गीत पर रवि बाबू की छाया स्पष्ट है—

मैं बैठा था पथ पर
तुम आये चढ़ रथ पर
हँसे किरण फूट पड़ी,
टूटी जुड़ गई कड़ी,
भूल गये पहर-घड़ी
आई इति अथ पर
उतरे, बढ़ गही बाँह,
पहले की पड़ी छाँह,
शीतल हो गई देह,
बीती अविकथ पर

बार-बार रवीन्द्र-काव्य में इस भाव की पुनरुक्ति हुई है। जो निराला सारा रवीन्द्र काव्य कंठस्थ किये हुए थे, उनकी कविता में जाने-अनजाने महाकवि के शब्द-सुर बोल उठे तो उसमें आश्चर्य की क्या बात है। जो बात द्रष्टव्य है वह है इस कविता की स्पष्ट, अकृत्रिम और नई क़लम वाली भाषा। जान पड़ता है, प्रयोगकालीन निराला भाषा को लेकर एक नया प्रयोग कर रहे हैं। जहाँ गीतिका की भाषा इस प्रकार संस्कृत-गर्भित है :

जग का एक देखा तार।
कण्ठ अगणित, देह सप्तक,
मधुर स्वर झंकार

× × ×

सत्य सतत अनादि निर्मल सकल-सुख-विस्तार
अच्युत अधरों में सुसिंचित एक किंचित प्यार
तत्त्व-नभ-तम में सकल भ्रम-शेष, श्रम-विस्तार
अलक मंडल में यथा मुखचंद निरलंकार

वहाँ 'अणिमा' में सरल हिंदी का सँवारा गीत है—

बादल छाये;
ये मेरे अपने सपने
आँखों से निकले, मँडलाये
बूँदें जितनी
चुनी अधखिली कलियाँ उतनी;
बूँदों की लड़ियों के इतने
हार तुम्हें मैंने पहराये
गरजे सावन के घन घिर-घिर,
नाचे मोर बनों में फिर-फिर
जितनी बार
चढ़े मेरे भी तार
छन्द से तरह तरह तिर,
तुम्हें सुनाने को मैंने भी
नहीं कहीं कम गाने गाये

भाषा का एक नया ही रूप हमें इन गीतों में मिलता है। आधुनिक हिंदी के कठिन काव्य के प्रेत निराला की क़लम से ऐसी सरल, प्रतिदिन की व्यावहारिक भाषा निकलना सचमुच आश्चर्य की

बात है। प्रारंभिक निराला में हम जिस सरल, सहज—प्रसन्न, अनलंकारिक भाषा का आग्रह पाते हैं, वर्षों बाद वही अब अपने नये रूप में जाग उठी है। एक प्रकार से निराला का नया काव्य उनके प्रथम संग्रह 'परिमल' का भाषा-संबंधी विकास ही सूचित करता है। उदाहरण के लिए 'परिमल' का एक गीत है—'अलि, घिर आये घन पावस के।' गीत की अंतिम कड़ी इस प्रकार है—

छोड़ गये घर जब से प्रियतम,
बीते कितने वर्ष मनोरम,
क्या मैं ही ऐसी हूँ अक्षम
क्यों न रहे बस के
अलि०

'अणिमा' का गीत है—

तुम चले ही गये, प्रियतम,
हृदय में प्रिय छवि नहीं ली,
व्यर्थ ऋतु के दृश्य दर्शन,
व्यर्थ यह रचना रसीली
× × ×
बरसने को गरजते थे
वे न जाने किस हवा से
उड़ गये हैं गगन में घन,
रह गये हैं नयन प्यासे,
उड़ रही है धूल, धाराधर
धरा हो न गीली?

इस गीत में विरहभाव को जिस मार्मिकता से प्रतिदिन के व्यापारों में, प्रतिदिन की भाषा में प्रकट कर दिया गया है, वह अपूर्व है।

परन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण वे दो-चार गीत हैं जिनमें कवि के इस समय के अंतर्भाव अत्यंत तीव्रता से प्रकट होते हैं। ज्ञान पड़ता है, १९३८ के बाद कवि के जीवन में एक महान् विशृंखलता आ गई थी। वह जैसे अंधकार में अपना मार्ग खोज रहा हो और वह मार्ग उसे मिल न रहा हो। 'अणिमा' के गीतों में 'रहस्य' के प्रति जो आकुलता है, वह इसी निरुद्देश्य की उपज है। कवि मरण का आह्वान करता है—

उन चरणों में मुझे दो शरण,
इस जीवन को वरो हे मरण,
× × ×
आगे—पीछे दायें—बायें
जो आये थे वे हट जायें,
उठे सृष्टि से दृष्टि, सहज मैं
करूँ लोक-आलोक-संतरण

अपने साहित्यिक जीवन की संध्या में वह अपनी सारी कृति को विषाद और निराशा की दृष्टि से देखता है। सारे साहित्य में इस प्रकार की सबल स्वीकृति नहीं मिलेगी। कवि जानता है, नदी-झरने उसने पार कर लिए हैं। साधना का शेष हो गया। उसे कहीं जाना नहीं है। लोग कुछ कहें, वह तो निश्चिंत है—

मैं अकेला
देखता हूँ, आ रही
मेरे दिवस की सान्ध्य वेला
पके आधे बाल मेरे,
हुए निष्प्रभ गाल मेरे,
चाल मेरी मंद होती जा रही,
हट रहा मेला।

जानता हूँ, नदी-झरने,
जो मुझे थे पार करने,
कर चुका हूँ, हँस रहा यह देख
कोई नहीं भेला*

(२) प्रसिद्ध जनों पर लिखी रचनाएँ

जान पड़ता है, साहित्य-संक्रांति की इस सीढ़ी पर खड़े हुए निराला ने यह अच्छा समझा कि अपने सम-सामयिक साहित्य-उन्नायकों और कवि-लेखकों के प्रति आदर भाव प्रकट कर दें। अणिमा में प्रसिद्ध जनों पर लिखी अनेक रचनाएँ मिलेंगी। 'संत कवि रविदास जी के प्रति', (आचार्य शुक्ल जी के प्रति) 'श्रद्धाञ्जलि', आदरणीय प्रसाद जी के प्रति, भगवान बुद्ध के प्रति, माननीया श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित के प्रति, युगप्रवर्तिका श्रीमती महादेवी वर्मा के प्रति शीर्षक कविताएँ इस श्रेणी के अंतर्गत आती हैं। इन कविताओं में हम साहित्य की कोई बड़ी उड़ान नहीं पाते। निराला की महती प्रतिभा, उनके विनीत स्वभाव और उनके बड़ों के प्रति सम्मान-भाव के दर्शन इन कविताओं में होते हैं। संत कवि रविदासजी के प्रति पंडित निराला प्रणत हैं—

छुआ पारस भी नहीं तुमने, रहे
कर्म के अभ्यास में, अविरत बहे
ज्ञानगंगा में, समुज्ज्वल चर्मकार,
चरण छूकर कर रहा मैं नमस्कार

प्रसादजी के प्रति वे कहते हैं—

तुम वसन्त-से मृदु, सरसी के सुत सलिल पर,
मंद अनिल से उठा गये हो कंप मनोहर,

---

*भेला—पुराने ढङ्ग की नाव

कलियों में नर्तन, भौरों में उन्मद गुञ्जन,
तरुण-तरुणियों में शतविधि जीवन व्रत भुञ्जन,
स्वप्न एक आँखों में, मन में लक्ष्य एक स्थिर,
पार उतरने की संसृति में एक टेक चिर;
अपनी ही आँखों का तुमने खींचा प्रभात,
अपनी ही नई उतारी सन्ध्या अलस गात,
तारक नयनों की अन्धकार—कुन्तला रात,
आई, सुरसरि जल-सिक्त मंद मृदु बही वात,
कितनी प्रिय बातों में वे रजनी दिवस गये कट,
अन्तराल जीवन के कितने रहे, गये हट,
सहज सृजन से भरे लता-द्रुम किसलय-कलि-दल,
जगे जगत के जड़ जल से वासन्तिक उत्पल,
पके खेत लहरे, सोना ही सोना दमका,
सुखी हुए सब लोग, देश में जीवन दमका,

'भगवान बुद्ध के प्रति' कविता में आज के वैज्ञानिक विकास से गर्वित मानव पर निराला ने गर्व की गहरी चोट की है :

आज सभ्यता के वैज्ञानिक जड़ विकास पर
गर्वित विश्व नष्ट होने की ओर अग्रसर
स्पष्ट दिख रहा; सुख के लिए खिलौने जैसे
बने हुए वैज्ञानिक साधन; केवल पैसे
आज लक्ष्य में हैं मानव के; स्थल-जल-अम्बर
रेल-तार-बिजली-जहाज़ नभयानों से भर
दर्प कर रहे हैं मानव; वर्ग से वर्ग गण,
मिले राष्ट्र से राष्ट्र, स्वार्थ से स्वार्थ विचक्षण
हँसते हैं जड़वादग्रस्त, प्रेत ज्यों परस्पर
विकृत-नयन मुख, कहते हुए अतीत भयंकर

था मानव के लिए, पतित था वहाँ विश्वमन ;
अपटु अशिक्षित वन्य हमारे रहे बन्धुगण ;
नहीं वहाँ था कहीं आज का मुक्त प्राण यह,
तर्कसिद्ध है, स्वप्न एक है विनिर्वाण यह ।

इन कविताओं में निराला जहाँ अपने एक लंबे काल के कविकर्म पर विराम लगाते दिखलाई पड़ते हैं; वहाँ वे नई कविता की ओर भी बढ़ते हैं ।

(३) कुछ लंबी कविताएँ—

'सहस्राब्दि', 'उद्बोधन' और 'स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज' शीर्षक तीन लंबी कविताएँ भी इस संग्रह में हैं । इन कविताओं में निराला के 'परिमल' के सुर एक बार फिर जागते दिखलाई देते हैं । उज्जयिनी के प्राचीन गौरव की याद करता हुआ कवि कहता है—

आ रही याद,
वह उज्जयनी, वह निरवसाद
प्रतिमा, वह इतिवृत्तात्म कथा
वह आर्य धर्म, वह शिरोधार्य वैदिक समता
पाटलीपुत्र की बौद्धश्री का अस्तरूप,
वह हुई और भू—हुए जनों के और भूप,
वह नवरत्नों की प्रभा—सभा के सुदृढ़ स्तंभ,
वह प्रतिभा से दिङ्नाग-दलन,
लेखन में कालिदास के अमला-कला-कलन,
वह महाकाल के मन्दिर में पूजोपचार,
वह शिप्रावात, प्रिया से प्रिय ज्यों चाटुकार ।
आ रही याद
वह विजय शकों से अप्रमाद,

वह महावीर विक्रमादित्य का अभिनन्दन,
वह प्रजाजनों का आवर्तित स्यन्दन-वंदन,
वे सजी हुई कलशों से अकलुष कामिनियाँ,
करती वर्षण लाजों की अंजलि भामिनियाँ,
तोरण तोरण पर
जीवन को यौवन से भर
उठता सस्वर
मालकौश हर
नश्वरता को नवस्वरता दे करता भास्वर
ताल-ताल पर
नागों का बृंहण, अश्वों की हेषा
भर भर
रथ का घर्घर,
घन्टों की घन-घन
पदातिकों का उन्मद-पद पृथ्वी-मर्दन,!

'उद्बोधन' में कवि भारत के अतीत-ज्ञान-गौरव के अनुरूप एक नवीन विश्व-संस्कृति की कल्पना करता है :

आज दिव्यास्त्र ज्यों
विश्व मानवता के,
राजनीति—धर्मनीति
वर्जित पाशवता से,
सभी बदले हुए—
सभी भिन्न रूप के,
जर्जरता—स्तूप से
मंत्र निकले हुए
विश्व के जीवन से

बदले हुए कुम्हार
नाई धोबी—कहार,
ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य,
पासी-भंगी-चमार,
परिया और कोल-भील;
नहीं आज का यह हिंदू,
आज का मुसलमान,
आज का ईसाई, सिक्ख,
आज का यह मनोभाव,
आज की यह रूप रेखा
नहीं यह कल्पना,
सत्य है मनुष्य
मनुष्यत्व के लिए;
बंद हैं जो दल अभी
किरण-सम्पात से
खुल गये वे सभी।

'स्वामी प्रेमानन्दजी महाराज' 'स्वामी शारदानंद महाराज और मैं' (कहानी) की भाँति की गद्यात्मक चीज़ है जिसमें पश्चिमीय युवक रूप में स्वयं कवि उपस्थित हुआ है।

(४) नई कविता—

'अणिमा' में अधिकांश पुराना है, परन्तु नया भी कम नहीं है। वास्तव में 'अणिमा' संधिकाव्य है। छायावाद और प्रगतिवाद के दुराहे पर खड़ा कवि अपने सारे साहित्यिक जीवन का जोखा-लेखा ले रहा है और नये मैदान में उतर रहा है। अनेक कविताओं में भाषा-शैली-छंद में पुरानापन है। परंतु कुछ कविताओं में कवि नये क्षेत्र में आ गया है। जहाँ प्रकृति के चित्र हैं, वह गद्य-मात्र है, किसी भी प्रकार के अलंकार के

पीरबख्श, एक बच्चे को दुआ
दे रहा है, पीपल की डाल पर
कूक रही है कोयल, माल पर
बैलगाड़ी चली ही जा रही है,
नीम फूली है, खुशबू आ रही है,
डालों से छन-छन कर राह पर
किरनें पड़ रही हैं बाह पर
बाह किये जा रहा है खेत में
दाहनी तरफ किसान, रेत में
बाईं तरफ चिड़ियाँ कुछ बैठी हैं,
खुली जड़ें सिरसे की ऐंटी हैं।

एक दूसरा चित्रण—

मेरे घर के पश्चिम ओर रहती है
बड़ी-बड़ी आँखों वाली वह युवती,
सारी कथा खुल-खुल कर कहती है
चितवन उसकी और चाल-ढाल उसकी।
पैदा हुई है ग़रीब के घर, पर
कोई जैसे जेवरों से सजता हो,
उभरते जोबन की मींड़ खाता हुआ
राग साज पर जैसे बजता हो।

इस प्रकार के यथार्थवादी चित्रण छायावाद के अलंकृत आसमानी काव्य के समक्ष प्रकाश की भाँति उज्ज्वल लगते हैं। कोई छल नहीं, कोई छंद नहीं, कोई आवरण नहीं। यहाँ छन्दों की मुक्ति है, शैली की मुक्ति है, भावों की मुक्ति हैं। साहित्य का बंधन नहीं रह गया है। यहाँ जीवन में जो कुछ है, जैसा कुछ भला-बुरा है सब साहित्य है। अन्त में हम 'अणिमा' की एक

कविता देकर इस प्रसंग को समाप्त करते हैं। भाषा, शैली, भाव सब को साथ लेकर चले तो यह कविता सारे छायावाद-काव्य के प्रति महान् व्यंग्य बन जाती है। जिस प्रेम को छायावादी कवि स्वर्गीय, ईश्वरीय, न जाने रहस्यवादी ढंग पर क्या-क्या कहता था, उसकी वस्तुस्थिति यह है :

यह है बाज़ार।
सौदा करते हैं सब यार।
धूप बहुत तेज थी, फिर भी जाना था,
दुखिये को सुखिया के लिए तेल लाना था,
बनिये से गुड़ का रुपया पिछला पाना था,
चलने को हुआ जैसे बड़ा समझदार।
सुखिया बोली अपनी सास को सुनाकर यों,
'मांस के पैसे शायद अब तक भी बाकी हों,'
अच्छा है अगर करें पूरी थैली ज्यों-त्यों,
टूटा रुपया ख़र्च होते लगेगी न बार।

दुखिया बोला मन में, 'अरी सास की,
मांस खिलाता हूँ मैं तुझे, अभी रास की,
चोरी है याद मुझे, बात कौन घास की,
बैठाली क्या जाने ब्याही का प्यार?"

मगर निकल कर घर से तेज़ क़दम बढ़ा चला
पिछली बातों का अगली बातों ने घोंटा गला,
दुखिया ने सोचा, "इसके पीछे बिना पड़े भला,
बैठा ले दूसरा तो सिंह से हूँ स्यार।"

हो सकता है, इस प्रकार के चित्रण सभ्य समाज को झकझोर दें, वह इन्हें पसंद न करे। जहाँ कविता इस पृथ्वी की चीज़ ही नहीं समझी जाती, वहाँ इस तरह का 'गद्य' काव्य की विडंबना

मात्र ही समझा जायगा। परंतु निराला ने आधुनिक कविता को स्वर्ग की चक्करदार रहस्यवादी सीढ़ियों से नीचे उतार कर उसे इस पृथ्वी पर साधारण जनों के बीच प्रतिष्ठित कर दिया है। आने वाला युग उन्हें दो काव्यांदोलनों के प्रवर्तक के रूप में देखेगा। 'जुही की कली' और 'यमुना के प्रति' कविताओं ने छायावाद के संस्कार गढ़े थे, निराला की ये नई कविताएँ ज्ञात-अज्ञात रूप से नई कविता के संस्कार गढ़ रही हैं। यह नई कविता कहाँ तक प्रगतिवादी है, यह हम आगे समझेंगे। इस संग्रह की दो कविताएं निराला के द्वैध संघर्ष को स्पष्ट करती हैं। १९४२ में कवि लक्ष्यभ्रष्ट है :

स्नेह निर्झर बह गया है,
रेत ज्यों तन रह गया है।
आम की यह शाख जो सूखी दिखी,
कह रही है—"अब यहाँ पिक या शिखी
नहीं आते, पंक्ति में वह हूँ लिखी
नहीं जिसका अर्थ—
जीवन बह गया है।"
"दिये हैं मैंने जगत को फूल-फल,
किया है अपनी प्रभा से चकित चल;
पर अनश्वर था सकल पल्लवित पल—
ठाठ जीवन का वही
जो ढह गया है।"
अब नहीं आती पुलिन पर प्रियतमा,
श्याम तृण पर बैठने को निरुपमा,
बह रही है हृदय पर केवल अमा;
मैं अलक्षित हूँ, यही
कवि कह गया है।

परन्तु १९४३ में, एक वर्ष बाद, कवि ने अपना लक्ष्य समझ लिया। वह अपने हृदय को अपने निर्दिष्ट पथ चलने का उद्बोधन दे रहा है :

गया अँधेरा
देख हृदय, हुआ है सवेरा
चलना है बहुत दूर रे,
नहीं वहाँ परी, नहीं हूर,
मूसा का जैसा, कुछ देने के लिए है,
निर्जीवन जीव दहन तूर;
और कहीं डाल अपना डेरा—
गया अँधेरा

हूरों और परियों के कल्पना-लोक से उतर कर कवि जीवन के उस दूह की ओर आता है जो जल गया है, जिसके पास बदले में कुछ भी देने के लिये नहीं है, कल्पना का आनन्द भी नहीं है। इसी श्मशान में वह अपना डेरा डालेगा और यहीं नए मानव की नई संस्कृति की बीन बजायेगा। 'बेला' और 'नये पत्ते' उसके इस अगले वर्ष के प्रकाशन हैं और इनमें उसने अपने को छायावादी परम्परा से शत-प्रति-शत तोड़ लिया है। वह नये काव्य की रूप-रेखा गढ़ने में तन्मय है। नये लोक, नई दिशा, नई अभिव्यक्ति। वह बहुत दूर तक सफल नहीं हो सका है, यह दूसरी बात है।

(ई) बेला (१९४३)

'बेला' में निराला जी के कुछ गीत और ग़जलें संगृहीत हैं। 'आवेदन' में कवि लिखते हैं—"बेला मेरे नये गीतों का संग्रह है। प्रायः सभी तरह के गेय गीत इसमें हैं। भाषा सरल और मुहावरेदार है। गद्य करने की आवश्यकता नहीं। देशभक्ति के गीत भी हैं। बढ़कर नई बात यह है कि अलग-अलग बहरों की ग़जलें भी

हैं, जिनमें फ़ारसी के छन्दशास्त्र का निर्वाह किया गया है।" इसलिये हम गीतों और ग़जलों पर अलग अलग विचार करेंगे।

१—गीत

निराला जी हिंदी के सबसे बड़े गीतकार हैं। संख्या की दृष्टि से सबसे अधिक गीत उन्होंने लिखे। भाव और छन्दों-तालों-लयों की विविधता भी उनमें ही सबसे अधिक है। 'परिमल' के थोड़े से गीत प्रकाशित होते ही हिंदी का कंठहार हो गये। उस प्रकार की चीज़ पंत और प्रसाद ने भी हमें नहीं दी। बङ्गला के रवीन्द्रनाथ, अतुल प्रसाद सेन और क़ाजी नजरुल-इस्लाम के गीत जिस श्रेणी के हैं, उसी श्रेणी की चीज़ें निराला ने हिंदी में दी हैं। अनामिका (१९३८) और गीतिका में और भी अधिक गीत प्राप्त हुए हैं। गीतिका पर अलग विचार कर चुके हैं। यहाँ हम विशेष रूप से इन नये गीतों की ही बात लेंगे।

अ—पुरानी परंपरा के गीत

निराला के इन नये गीतों में अनेक गीत ऐसे हैं जिनमें 'गीतिका' के गीतों की परम्परा सुरक्षित है। इन गीतों में शब्द-विन्यास और रचना-कौशल तो गीतिका का है; परन्तु इनमें अस्पष्टता की मात्रा अधिक है। जान पड़ता है, जिन विषयों में 'गीतिका' के कवि का विश्वास था, वह विषय अब उसे प्रिय नहीं रहे या पूरी तन्मयता से वह उनमें योग नहीं दे पाता। एक नई विचारधारा लेकर वह अब चल रहा है; अतः ये गीत लीक पीटना भर रह जाते हैं। कवि उस दिव्य-मिलन की बात कहता है—

नाथ तुमने गहा हाथ, वीणा बजी;
विश्व यह हो गया साथ, द्विविधा लजी।
खुल गये डाल के फूल, रँग गये मुख
विहग के, भूल मग की हुई विमल सुख;

शरण में मरण का मिट गया महा दुख;
मिला आनन्द पथ पाथ; संसृति सजी।

कभी उस प्रिय की वीन सुनकर रहस्यानुभूति से भर जाता है—

वीन की झंकार कैसी बस गई मन में हमारे।
धुल गईं आँखें जगत की, खुल गये रवि-चन्द्र-तारे।
शरत के पंकज सरोवर के हृदय के भाव जैसे,
खिल गये हैं पंक से उठकर विमल विश्राव जैसे,
गंधस्वर-पीकर दिगन्तों से भ्रमर उन्मद पधारे।

कभी उस मिलन के आनन्द पर मुग्ध हो जाता है—

शुभ्र आनन्द आकाश पर छा गया,
रवि गा गया किरण गीत
श्वेत शत दल कमल के अमल खुल गये,
विहग-कुल-कण्ठ उपवीत
चरण की ध्वनि सुनी..............

कभी कबीर की तरह उस मिलन सुख को प्राकृतिक रूपकों के सहारे कह डालना चाहता है—

कैसे गाते हो ?
मेरे प्राणों में आते हो, जाते हो।
स्वर के छा जाते हैं बादल,
गरज-गरज उठते हैं प्रतिपल;
तानों की बिजली के मंडल
जगतीतल को दिखलाते हो।
ढह जाते हैं शिखर, शिखरतल;
बह जाते हैं तरु, तृण, वल्कल;
भर जाते हैं जल के कलकल;
ऐसे भी तुम बल खाते हो

कभी उस अज्ञात प्रिय के नयनों की कृपाकोर के संजीवन अमृतत्व की बात करता है—

प्रभु के नयनों से निकले कर
ज्योति के सहस्रों कोमल शर।
हर गये धरा के व्याध-शत्रु,
बह चली अमृत-जल की शतद्रु,
जीवन के मरु का छाया-तरु
लहराया, उत्कल-जल निर्झर

इस प्रकार के गीत थोड़े हैं; परन्तु उनकी विचारधारा के विषय में कोई संदेह नहीं है। अधिकांश गीत दूसरे अन्तरे तक पहुँचते-पहुँचते शिथिल हो गये हैं। पता नहीं चलता, कवि क्या कहता है। धीरे-धीरे यह अस्पष्टता बढ़ती जाती है और कवि शब्दों और भावों के जाल में खो जाता है। उसकी क़लम की पकड़ ढीली होने लगती है। कुछ कविताएँ तो पहली पंक्ति से लेकर अंतिम पंक्ति तक अनर्गल प्रलाप जान पड़ती हैं, जैसे—

जग के, जय के, जीवन,
शोभा के प्रतनु, प्रमन,
करुणायन, कोटि मथन,
दीनों के दुरित शमन।
गुञ्जित-कलि-माल-मधुर
शत छवि-निन्दक-हरिदुर,
गंध-मंद-मोदित पुर,
नन्दन आनन्द-गमन
शापित जन जगे सकल,
कला के खुले उत्पल,
निरत हुए विरत अकल,
विश्व के तरण-तारण

या

चलते पथ, चरण वितत,
दीप निभा, हवा लगी,
कहाँ रहे छिपे हुए?
बाँह गही, भाग जगी।

नभ के अङ्गण में शशि,
ज्योत्स्ना की मायामसि
उड़ी, तमिस्रा की रक्षा की
राखी जो बँधी।

पहला उद्देश गया,
तुम्हारा ही रहा नया,
चलना किस देश कहाँ,
पीछे लगी सहज सगी

बिजली की जोत-राग
गाये हैं, भरे भाग,
टूटे मंदिर में आ रहे,
प्रात किरण रँगी।

सारी कविता कई बार पढ़ जाने पर भी न विषय समझ में आता है, न भिन्न-भिन्न पंक्तियों में संगत बैठती है। इसीसे कहना पड़ता है कि कवि अब भावों और कला का संतुलन खो बैठा है। जहाँ पहली पंक्ति इतनी सारगर्भित है—

शांति चाहूँ मैं, तुम्हारा दुःख कारागार है जग।

वहाँ दूसरी पंक्ति से ही कोई पटरी नहीं बैठती—

हार भूला, नील-नभ तरु, सुधि भूली सहज जगमग।

परन्तु इस असंतुलन के बीच भी कवि कुछ सुन्दर गीत हमें दे

सका है। एक गीत में कवि अपने सारे व्यक्तित्व की निर्बलता को झकझोर डालता है। कहता है—

तू कभी न ले दूसरी आड़,
शत्रु को समर जीते पहाड़।
सैकड़ों फलेंगे फूलेंगे,
जीवन ही जीवन भर देंगे,
झरने फूटेंगे उबलेंगे,
नर अगर कहीं तू बन पहाड़।
तेरी ही चोटी पर चढ़कर
देखेंगे लोग दृश्य सुन्दर,
उतरेंगे रवि-शशि के शुचि कर,
नीचे से ऊँचा सर उभाड़।
हिम का किरीट होगा उज्ज्वल,
बदलेंगे रंग-पीठ प्रतिपल,
जल होगा जीवन का संबल
पदतल शत सिंहों की दहाड़।

एक अन्य कविता में कवि देश में नये जीवन की मङ्गल-भेरी बजाता है—

प्रतिजन को करो सफल।
जीर्ण हुए जो यौवन,
जीवन से भरो सकल

नहीं यान्त्रिक तन-मन,
खोलो मुक्ति के बन्धन,
नन्दन के कुसुम-नयन
खोलो मृदु-गान विमल।

जागरूक कलरव से
भरें दिशाएँ स्तव से,
सरसी के नव नव से
मुदे हुए खुलें कमल
रँगे गगन, अन्तराल,
मनुजोचित उठे भाल,
छल का छुट जाय जाल,
देश मनाये मंगल।

आ—नये गीत

इस संग्रह में निराला ने नई सरल भाषा में कुछ नये गीत लिखने का भी प्रयत्न किया है; परन्तु सब गीतों में वे पहले की तरह सफल नहीं हो सके हैं। 'साथ न होना' और 'बाहर मैं कर दिया गया हूँ,' इसी प्रकार के गीत हैं। संग्रह का अंतिम गीत सफल गीत का उदाहरण है। इसमें ग्राम-ग्राम में जन्म लेते हुए नये जीवन का अभिनन्दन किया गया है—

कैसी यह हवा चली। तरु-तरु की खिली कली।
लगने को कामों में, जगे लोग धामों में,
ग्रामों ग्रामों में, चल पड़े बड़े-बड़े बली,
जान गये जान गई, खुली जो लगी कलई,
उठे मसुरिया, बलई, भगे बड़े-बड़े छली,
अपना जीवन आया, गई पराई छाया,
फूटी काया-काया, गूंज उठी गली-गली।

इस गीत में जनसाहित्य का जो ठाट है वह एकदम निराला है। उसमें पंत का मार्क्सवाद भी नहीं है और नये कवियों की रूस से उधार ली हुई प्रोलेतरेत की अन्धाधुन्धी ऊहापोह भी नहीं। यह नया प्राण है जो निराला की तपस्या से पूर्त होकर

हमारे सामने आया है। इस नई दिशा की ओर निराला बढ़ना चाहते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। परन्तु परिस्थितियों ने उन्हें तोड़ दिया है और आज उनकी काव्य-प्रतिभा अपने निर्दिष्ट पथ पर डगमगाती हुई भी नहीं चल पा रही है।

इस संग्रह की दो कविताएँ ऐसी हैं जिनमें कवि ने कजली और लोकगीतों की तर्ज़ अपनाई है। इस प्रकार उन्होंने खड़ी बोली की शक्ति को एक नये क्षेत्र में परखा है। विषय है उन्नीस सौ ब्यालीस की जनता। जनता की कुण्ठित भावनाओं का जैसा चित्रण इस कविता में हुआ वैसा अन्यत्र नहीं। कवि कहता —

काले काले बादल छाये, न आये वीर जवाहरलाल
कैसे कैसे नाग मडलाये, न आये वीर जवाहरलाल
बिजली फन के मन की कौंधी, कर दी सीधी खोपड़ी औंधी
सर पर मर्मर करते धाये, न आये वीर जवाहरलाल
पुरवाई की हैं फुफकारें, छन-छन में विष की बौछारें,
हम हैं जैसे गुफा में समाये, न आये०
महँगाई की बाढ़ बढ़ आई, गाँठ की छूटी गाढ़ी कमाई,
भूखे-नंगे खड़े शरमाये, न आये०
कैसे हम बच पायें निहत्थे, बहते गये हमारे जत्थे,
राह देखते हैं भरमाये, न आये०

इसी प्रकार आधुनिक सभ्यता (हवाई जहाज़ों के युग) में साधु-संतों पर नई शैली में एक व्यंग्य है—

अरे, गंगा के किनारे
झाऊ के बन से पगडंडी पकड़े हुए
[illegible] की [illegible] छोड़ कर ; फूस की कुटी,
बाबा बैठे [illegible]।
[illegible] आते हैं,

डाक-सैनिक आते जाते हैं,
नीचे से लोग देखते हैं मन मारे।
रेलवे का पुल बँधा हुआ है,
अपना दिल है जहाँ कुआ है,
उठने को आँख झपी। बैठे बेचारे।
पंडों के सुघर-सुघर घाट हैं,
तिनके की टट्टी के टाट हैं;
यात्री जाते हैं, श्राद्ध करते हैं,
कहते हैं, कितने तारे!

यह है नई काव्य की एक स्वस्थ रूपरेखा।

२—ग़ज़लें

निराला जी ने इस संग्रह में कितनी ही ग़ज़लें लिखी हैं। उर्दू की वह्रें हैं। उर्दू की भाषा-शैली। वही विदेशी उपमाएँ-उत्प्रेक्षाएँ। दो-चार पंक्तियों को छोड़ कर नवीनता कहीं नहीं। इन उर्दू की ग़ज़लों में हिन्दी-संस्कृति की हत्या ही हुई है। जहाँ भाषा हिन्दी है, वहाँ पंक्तियाँ इतनी बोझिल हैं कि रस का संचार ही नहीं होता जैसे—

जीवन प्रदीप चेतन तुमसे हुआ हमारा,
ज्योतिष्क का उजाला ज्योतिष्क से उतारा

'नज़रुल' की ग़ज़लों में बङ्गला की अपनी रूपरेखाएँ उभर आई हैं। यह बात निराला की इन ग़ज़लों में नहीं।

(उ) नये पत्ते (१९४६)

'नये पत्ते' निराला का अंतिम संग्रह है। अभी तक उनकी इधर की रचनाएँ प्रकाशित नहीं हुई हैं। वास्तव में निराला के इधर के प्रकाशित सब संग्रहों में यह संग्रह सब से महत्त्वपूर्ण

है। इसका कारण यह है कि इसमें १९३९ से १९४६ तक की निराला की अनेक प्रगतिवादी नई कविताएँ संगृहीत हैं। रचनाएँ थोड़ी हैं; परन्तु अनेक कारणों से वे महत्त्वपूर्ण हैं। कालक्रम के अनुसार ये रचनाएँ 'बेला' से पहले आती हैं। यदि 'बेला' को निराला की प्रतिभा की अंतिम देन माना जाय तो यह निश्चित है कि यह प्रतिभा अब रुँध रही है, परिस्थितियों ने उसे तोड़ दिया है।

परन्तु 'नये पत्ते' के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती। 'नये पत्ते' की कविताओं में निराला का व्यंग्य प्राणवान है, उनकी कला सिद्धहस्त कलाकार की मँजी हुई कला है।

'नये पत्ते' की कविताओं को हम कई वर्गों में बाँट सकते हैं। कुछ कविताएँ ऐसी हैं जो नई से पुरानी अधिक हैं। उनमें हमें 'अनामिका' और 'परिमल' के कवि के दर्शन होते हैं। 'देवी सरस्वती' 'तिलांजलि' और 'युगावतार परमहंस श्रीरामकृष्णदेव के प्रति' इस श्रेणी की रचनाएँ हैं। इनमें हमें निराला की क्लासिकल कल्पना का प्रौढ़तम रूप मिलेगा। 'देवी सरस्वती' में सरस्वती का चित्र है—

मानव का मन विश्व जलधि,
        आत्मा सित शतदल,
विकच दलों पर अधर
        झुकाये मुखर चरणतल;
वीणा दो हाथों में,
        दो में पुस्तक, नीरज;
ऋतु के जीवन के
        शोभन स्वर, जैसे स्रज।
नील वसन, शुभ्रतर
        ज्योति से खिला हुआ तन,

एक तार से मिला
चराचर से शाश्वत मन
हंस चरणतल तैर रहा है
लघूर्मियों पर,
सुनता हुआ तीव्र-मृदु
झंकृत वीणा के स्वर।

'तिलांजलि' में विजयलक्ष्मी पंडित के पति श्री आर० एस० पण्डित की स्वर्गीय आत्मा के प्रति श्रद्धांजलि है। भाषा का प्रवाह निराला है। सब कुछ खुला हुआ, मुँदा हुआ कुछ भी नहीं—

धूसर सांध्य समय विषमय
भरता है क्रन्दन;
अन्तरिक्ष से झरता है
निस्तल अभिनन्दन
नैसर्गिक आत्माओं का,
प्रशमित नारी-नर
चले आ रहे हैं
अरथी के साथ मार्ग पर
चरण मंद; भाषा के जैसे
अश्रु-भार रथ
लस्त-वेश दिग्देश-ज्ञान-गत,
शिरश्चरण श्लथ,
मुक्ति-वर्ग नागरिक,
सर्ग देश के भाव के,
मुदे हुए आश्वासन,
श्वसन विसर्ग स्राव के

हृदयोच्छ्वसित वाष्प से
　　　　होकर प्रहत निरन्तर,
ऊर्ध्व और अध प्रशमन
　　　　और क्षोभ के हैं स्वर।
कांग्रेस के सेनानी—
　　　　वीर सेवकों का दल
नारे लगा रहा है,
　　　　बढ़ता हुआ धैर्य-बल।
घने बरगदों की क़तार,
　　　　पर-फड़काते खग,
आँख मूँद लेने के लिए
　　　　विकल सारा जग।

विवेकानन्द जी की कविताओं के दो अनुवाद 'चौथी जुलाई के प्रति' और 'काली माता' भी इसी श्रेणी में आते हैं। यह स्पष्ट है कि इस श्रेणी की कविताएं साधारण हैं और नए काव्य से उनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

एक दूसरी श्रेणी 'कैलाश में शरत्' और 'स्फटिक शिला' कविताओं की है। इन्हें हम Dream Phantasy कह सकते हैं। कवि ने अर्धचेतन (Subconscious Ego) को मुक्त बहने दिया है—वह बहता गया, बहता गया, भाव जैसे आये लिख दिये। जैसे वह अपने स्वप्नों को कला की कूँची से रूपों-रंगों में बाँध रहा है। 'भक्त और भगवान' कहानी में उसने गद्य में इसी प्रकार का प्रयोग किया है। रूसी काव्य में मायाकोवस्की की कविताएं इसी श्रेणी में आती हैं। 'कैलाश में शरत्' कविता में निराला जी ने कल्पना की है कि वे श्री विवेकानन्द जी आदि के साथ मध्य एशिया की यात्रा कर रहे हैं। वहाँ उन्हें

अटीला, चंगेज, तैमूर और वावर की पदपद पर याद आती है। लतारी दर्शक उन्हें 'कैलाश' तक लाते हैं। वहाँ किश्तियों पर बैठ कर ये सब मानसरोवर में विहार करते हैं। एक अतीन्द्रिय स्वर्गीय आनन्द की अवतारणा के साथ कविता विराम पर आती है—

सांध्य समय पार हुआ,
मनोहर रात आई।
नाव पर वहीं का
भोजन, जो मेष-मांस,
करके, शुचि चन्द्र का
स्वागत करने लगे।
गीतवाद्य होता रहा।
सब जन प्रसन्न हैं।
ऐसा दृश्य जीवन में
और कभी नहीं दिखा।
शरत काल; कमलों पर
आया विरोधाभास,
उतरी है चाँदनी,
मुँद चले इन्दीवर
कोकनद, शतदल,
पर अति-विकसित जो
ज्यों के त्यों रह गये।
मदिरा सुगन्ध की
ज्यों की त्यों ढलती हुई।
चंद्र आकाश पर पूरी तरह निकल आया।
स्निग्ध वह चंद्रिका
उतरी सरोवर पर
स्वर्ग की अप्सरा
स्नान करने के लिए

लोक-लोचनों से परे
जिसकी छवि देखकर
कमल वे मुँद गये।
सब कुछ स्वर्गीय है
लोग-जन कहा किये।

'स्फटिक शिला' में कवि अपने अर्ध चेतन और आत्मगत संयम में आदर्शवाद के सहारे पटरी बिठाता दिखलाई पड़ता है। जैसे तुलसीदास में रत्नावली सीतारूप होकर तुलसी को काम-विरत करती हैं, उसी प्रकार स्नानोपरांत युवती के सौन्दर्य से आकर्षित होने पर उसे राम की जानकी मान अपनी प्रकृत भूमि पर आ जाता है—

खड़ा हुआ स्फटिक शिला मैं देखता ही रहा।
आँख पड़ी युवती पर
आई थी जो नहा कर,
गीली धोती सटी हुई भरी देह में, सुघर
उठे पुष्ट तन, दुष्ट मन को मरोड़ कर,
आयत दृगों का मुख खुला हुआ छोड़ कर,
बदन कहीं से नहीं काँपता।
कुछ भी संकोच नहीं ढाँपता।
वर्तुल उठे हुए उरोजों पर अड़ी थी निगाह
चोंच जैसे जयन्त की, नहीं जैसे कोई चाह
देखने की मुझे ओर,
कैसे भरे दिव्य स्तन, हैं ये कितने कठोर।
मेरा मन काँप उठा, याद आई जानकी।
कहा, तुम राम की,
कैसे दिये हैं दर्शन!

इस प्रकार अचेतन और अर्ध चेतन मन के सहारे काव्य की रचना के ये पहले प्रयत्न हैं। यूरोप में Imagist School और Futurist School के लेखक और कवि इस प्रकार के प्रयोग करते रहे हैं; परन्तु हिन्दी में ये पहले प्रयोग हैं। अपनी दृष्टि की तुलना जयन्त की चोंच से कर निराला ने कल्पना में चेतना ही नहीं ला दी है, उन्होंने सारे धर्म-काव्य पर एक बड़ा व्यंग्य किया है। जानकी के नाते कवि उस नग्न नारी-सौन्दर्य से विमुख तो हो जाता है; परन्तु वह अपने मन के अन्तःप्रवाह को एकदम अस्वीकार नहीं कर सकता। इन दोनों कविताओं में कवि अपने मन के डूबे हुए स्तरों को उभार कर उन्हें काव्यगत सौन्दर्य और गति देने में सफल हुआ है। ये दो कविताएँ आधुनिक हिन्दी काव्य की विशिष्ट चीजें होंगी।

परन्तु 'नये पत्ते' में जो सबसे महत्त्वपूर्ण है वह है शेषांश। इन शेष कविताओं में कवि नई भाषा और नई शैली में सप्राण व्यंग्य लिख रहा है। सारी ऐतिहासिक चेतना, सारी राजनीति, सारी प्रगति को क़लम की नोंक पर रख कर वह समाज, धर्म, राष्ट्र, वर्ग-विशेष और इनके कर्णधारों पर छींटें उड़ाने चला है।

कुछ कविताओं में ऐतिहासिक चेतना Historical Process को जैसे का वैसा रख कर कवि विशेष इंगित उठाने में सफल हुआ है। 'चर्खा चला' इसी प्रकार की कविता है। वेदों से लेकर आधुनिक काल तक के सारे विकास पर व्यंग्य। पाणिनि के व्याकरण पर कवि व्यंग्य करता है—

खुली ज़बाँ बँधने लगी।
वैदिक से सँवर-दी भाषा संस्कृत हुई।
नियम बने, शुद्ध रूप लाये गये,
अथवा जङ्गली सभ्य हुए वेशवास से।

आधुनिक सभ्यता की चुटकी लेता है—

खोज हुई, सुख के साधन बढ़े—
जैसे उबटन से साबुन।

'वर्णाश्रम' और तुलसी के राम-राज्य की हँसी उड़ाता है—

वेदों के बाद जाति चार भागों में बँटी,
यही रामराज है।

कवि ने इतिहास को एक नई दृष्टि दी है। अभी सभ्यता को पृथ्वी पर उतरना होगा। धरती की प्यारी लड़की सीता के गीत गाने होंगे। इन्द्र (देवता) से उतर कर मानवों, गायों और बैलों को मान देना होगा। हल ही मानव के विकास का श्रेष्ठतम प्रतीक होगा। (यहाँ तक पहुँचते) अभी दुनिया को देर है। एक दूसरी कविता 'दशा की' में कवि बताना चाहता है कि आज तक मनुष्य के नेताओं ने धरती के पुत्रों को भ्रम-जाल में ही फँसाये रखा है। सारे भारतीय इतिहास पर कैसा सुन्दर व्यंग्य है—

चेहरा पीला पड़ा।
रीढ़ झुकी। हाथ जोड़े।
आँख का अँधेरा बढ़ा।
सैकड़ों सदियाँ गुजरीं।
बड़े-बड़े ऋषि आये, मुनि आये, कवि आये,
तरह तरह की वाणी जनता को दे गये।
किसी ने कहा कि एक तीन हैं।
किसी ने कहा कि तीन तीन हैं।
किसी ने नसें टोईं, किसी ने कमल देखे।
किसी ने विहार किया, किसी ने अँगूठे चूमे।
लोगों ने कहा कि धन्य हो गये।

प्रकृति-जीव-ब्रह्म को लेकर जो अनेक वाद उठ खड़े हुए, षट्चक्र-जैसी अनेक साधनाएँ विकसित हुईं, कवि का मुख

उन्हीं की तरफ है। इस सभ्यता ने जनसाधारण के साथ दग़ा की। यह उनकी नहीं हो सकी। पता नहीं, इसे विकास कहें या पतन—

मगर खंजड़ी न गई।
मृदङ्ग तबला हुआ,
वीणा सुर-बहार हुई।
आज पियानो के गीत सुनते हैं।

आधुनिक काल में हमारा मुख पश्चिम की ओर है। अपनी कला प्रवृत्तियों की प्रशंसा पाने के लिए हमारे कलाकार पश्चिम का मुँह ताकते हैं। यह कला है, या छल ! कवि हँसी उड़ाता है—

क़ैद पासपोर्ट की नहीं तो कभी
देश आधा खाली हो गया होता;
देविका रानी और उदयशंकर के
पीछे लगे लोग चले गये होते

सामंती-समाज की सारी व्यवस्था, सारा धर्म, सभ्यता का सारा आडम्बर एकछत्र सामन्त के ऐश्वर्य की रक्षा करने के लिए ही है। आज के विचारक ने इतिहास के इस तथ्य को समझ लिया है। 'राजे ने अपनी रखवाली की' कविता में निराला ने इस तथ्य को इतनी सफ़ाई से कह दिया है कि आश्चर्य होता है—

राजे ने अपनी रखवाली की,
क़िला बनाकर रहा,
बड़ी-बड़ी फ़ौजें रखीं।
चापलूस कितने सामन्त आये।
मतलब की लकड़ी पकड़े हुए।
कितने ब्राह्मण आये

पोथियों में जनता को बाँधे हुए।
कवियों ने उसकी बहादुरी के गीत गाये,
लेखकों ने लेख लिखे,

ऐतिहासिकों ने इतिहासों के पन्ने भरे,
नाट्य-कलाकारों ने कितने नाटक रचे,
रङ्गमञ्च पर खेले।
जनता पर जादू चला राजे के समाज का।
लोक-नारियों के लिए रानियाँ आदर्श हुईं।

धर्म का बढ़ावा रहा धोखे से भरा हुआ।
लोहा बजा धर्म पर, सभ्यता के नाम पर।
खून की नदी बही।
आँख-कान मूँद कर जनता ने डुबकियाँ लीं।
आँख खुली—राजे ने अपनी रखवाली की।

आँख खुल जाने पर आज जनता इस ऐतिहासिक तथ्य को समझने लगी है। केवल सामंती समाज ही नहीं, आधुनिक विदेशी अँग्रेजी राज और अँग्रेजों द्वारा प्रशंसित, भारत पर लादी, पश्चिमी सभ्यता पर भी निराला व्यंग्य करते हैं। इस सभ्यता ने ऊपर की टीप-टाप तो पैदा कर दी है। बिजली, तार, भाप, वायुयान, कल-कारखाने। परन्तु जो इसे रामराज समझ रहे हैं, वे भ्रम में हैं। यह तो 'बानिज का राज' है। देश की लक्ष्मी सात समुद्र पार एक टापू में क़ैद है। जहाँ लहलही धरती थी, वहाँ आज तपता रेगिस्तान। जनता मूढ़ है, अपदार्थ है। थोड़ों का राज है। 'थोड़ों के घेरे में बहुतों को आना पड़ा'—लिखकर युगकवि ने इसी विचारधारा पर प्रकाश डाला है। कवि कहता है—

धूहों और गुफ़ाओं और पत्थरों के घरों से
आजकल के शहरों तक, दुनिया ने चोली बदली।
बिजली और तार और भाप और वायुयान
उसके वाहन हुए।
जान खींची खानों से,
कल और कारखानों से।
रामराज के पहले के दिन आये।
बानिज के राज ने लछमी को हर लिया।
टापू में ले चलकर रखा और क़ैद किया।
एक का डंका बजा,
बहुतों की आँख झपी।
लहलही धरती पर रेगिस्तान जैसा तपा।
जोत में जल छिपा,
धोखा छिपा, छल छिपा
बदले दिमाग़ बढ़े,
गोल बाँधे घेरे डाले,
अपना मतलब गाँठा,
फिर आँखें फेर लीं।
जाल भी ऐसा चला
कि थोड़ों के पेटे में बहुतों को आना पड़ा।

इस प्रकार की कविताएँ इतिहास-चेतना को एक नयी युगानुरूप व्याख्या देकर हमारे सामने उपस्थित करती हैं। साधारण पाठक उनके भीतर का गहरा व्यंग्य नहीं समझ सकता; परन्तु जिसने मार्क्स और ऐञ्जिल्स की व्याख्या के प्रकाश में इतिहास को देखा है, वह इसे समझेगा। सच तो यह है, हिन्दी कविता में इतनी सजग वाणी का योग अभी नहीं मिला है। मार्क्सवाद के आधार पर नये मूल्यों को पंत ने भी परखा है। 'युगवाणी'

'ग्राम्या', 'युगांत' की कितनी ही रचनाएँ नये प्रकाश में जनता, धर्म, राजनीति और साहित्य-कला को परखती हैं। परन्तु प्राणों का बल उन कविताओं को नहीं मिला है। लगता है, कवि सौन्दर्य-द्वीप के प्रवाल मन्दिर में बैठा हुआ खिड़कियों से झाँक रहा है। नये युग के प्रकाश में उसे जो दिखलाई पड़ता है वह दूर की चीज़ है, उसमें रोमांस की रंजित छाया है। कला, साहित्य और आदर्शवाद जितना हो, प्राण उसमें नहीं, भीतर की हिलाने वाली जिज्ञासा, मन को झकझोरने वाला व्यंग्य वहाँ नहीं मिलेगा। निराला ने जो लिखा है, वह 'कागज़ लेखी' जैसी चीज़ नहीं है, 'आँखों देखी' है। उनकी भाषा प्राणों की भाषा है। इसी से उसमें साहित्य की रंगारंगी नहीं है।

इन इतिहास-चेतनावाली कविताओं के अतिरिक्त कुछ कविताएँ ऐसी हैं जो निराला के सामाजिक व्यंग्य को और भी अधिक स्पष्ट रूप में हमारे सामने रखती हैं। राजनीति के ठेकेदारों, साम्यवादियों, कांग्रेसियों, युगनेताओं की हीन अन्तर-वृत्तियों, किसान-मजदूरों सब को नए रूप में, व्यंग्य के नए प्रकाश में, कवि ने इस प्रकार रख दिया है कि कार्टून का मज़ा आ जाता है। 'मास्को डायेलाग्स' में कम्यूनिस्टों के साहित्य-गर्व पर व्यंग्य है। देश की सारी सांस्कृतिक परंपरा को पैरों से ठुकरा कर वे चालीस करोड़ जनता के विधाता बनने चले हैं। श्रीयुत गिडवानी सोश्यलिस्ट लीडर हैं। 'मास्को डायेलाग्स' लेकर आये हैं। कहते हैं—

"यह मास्को डायेलाग्स है,
सुभाष बाबू ने इसे जेल में मँगाया था,
भेंट किया था मुझको जब थे पहाड़ पर।
'३५ तक, मुश्किल से पिछड़े इस मुल्क में
दो प्रतियाँ आई थीं।"

यह तो है गर्व की बात। फिर एक उपन्यास दिखाते हैं। उनका अपना लिखा है। चाहते हैं छपे, लोगों पर प्रभाव पड़े, नये किसी बँगले में प्रेस खुले। कवि कहता है—

देखा उपन्यास मैंने,
श्रीगणेश में मिला—
"पृय असनेहमयी स्यामा मुझे प्रेम है।"
इसको फिर रख दिया, देखा "मास्को डायेलाग्स",
देखा गिडवानी को।

देश के बने नेताओं पर, मध्यवित्ती नेतागिरी पर व्यंग्य पढ़िये—

आजकल पंडित जी देश में विराजते हैं।
माताजी को स्वीज़रलैंड के अस्पताल,
तपेदिक के इलाज के लिए छोड़ा है।
बड़े भारी नेता हैं;
कुइरीपुर गाँव में व्याख्यान देने को
आये हैं मोटर पर
लन्डन के ग्रैज्युएट,
एम० ए० और बैरिस्टर,
बड़े बाप के बेटे,
बीसियों भी पर्तों के अन्दर, खुले हुए।
एक एक पर्त बड़े-बड़े विलायती लोग।
देश की बड़ी-बड़ी थातियाँ लिये हुए।
राजों के बाजू पकड़, बाप की वकालत से,
कुर्सी रखनेवाले अनुल्लंघ्य विद्या से
देशी जनों के बीच;
लेंडी जमींदारों को आँखों-तले रक्खे हुए,
मिलों के मुनाफे खानेवालों के अभिन्न मित्र,
देश के किसानों, मज़दूरों के भी अपने सगे

विलायती राष्ट्र से समझौते के लिए।
गले का चढ़ाव बोर्झुआज़ी का नहीं गया।

आज राजनीति में मध्यवित्ती लीडरी का बोलबाला है; परन्तु गांधीवादी नेता समझौते से आगे नहीं बढ़ सकते। वह ज़मींदारों, राजों, नवाबों और मिल-मालिकों को साथ लेकर आगे बढ़ना चाहते हैं। काँग्रेस वाले गांधीवादी उधर किसानों को समझा रहे हैं कि कल देश हमारा होगा और हम ज़मींदार-साहूकारों को साथ लेकर आगे बढ़ेंगे; परन्तु उसी समय किसान-विद्रोह से आशंकित ज़मींदार गोली चलवा देते हैं :

झींगुर ने कहा,
"चूँकि हम किसान सभा के,
भाईजी के मददगार
ज़मींदार ने गोली चलवाई
पुलिस के हुकम की तामीली की।
ऐसा यह पेंच है।"

आज झींगुर जैसे सामान्य जन भी इस पेंच को समझने लगे हैं। कम्पू को लकड़ी, कोयला, चपड़ा लादने वाला महगू भी इस तथ्य को जानता है। गांधीवादी नेता और ज़मींदारों में जो पट रही है, इसे भी वह समझता है। लुकुआ अनजान है। उसे वह इस नई राजनीति का क, ख, ग पढ़ाता है—

लुकुआ ने महगू से पूछा, "क्यों हो महगू, कुछ
अपनी तो राय दो?
आजकल, कहते हैं, ये भी अपने नहीं?"
महगू ने कहा, "हाँ, कम्पू में किरिया के
गोली जो लगी थी,
उसका कारण पंडित जी का शागिर्द है,
रामदास को कांग्रेसमैन बनानेवाला,

जो मिल का मालिक है।
यहाँ भी वह ज़मींदार बाज़ू से लगा ही है।
कहते हैं, इनके रुपये से ये चलते हैं।
कभी कभी लाखों पर हाथ साफ करते हैं।

लुकुआ घवड़ा गया। महगू बताता है, ऐसे लोग हैं, जो छिपे हैं। उनके नाम अखबारों में नहीं छपते। जब ये आगे आयेंगे, तब उद्धार होगा। इस प्रकार कवि ने नई नेतागिरी के गढ़ने की आवाज़ ऊँची की है। पुराने नेता नई परिस्थिति में कुछ नहीं कर सकेंगे, जनता स्वयं अपनी राह निकाल लेगी।

'डिप्टी साहब आये' 'छलाँग मारता गया' और 'कुत्ता भौंकने लगा' जनता और अधिकारियों को लेकर व्यंग्य करने वाली तीन कविताएँ हैं। ज़मींदार के सिपाही की लाठी का गूला आज भी बहुत कठोर है। उसके सामने

आदमी जैसे कमान
बन जाता है किसान।
सामाजिक और राजनीतिक सहारे कुल
छुटकर भग जाते हैं।

जनता का विशाल बल इस गूला के आगे कुंठित है। गूला बजाता हुआ ज़मींदार का आदमी ऐसा लगता है जैसा पास का मेंढक थाले के पानी से उठकर मूत-मूत कर छलाँग मारता हुआ चला गया। ज़मींदार का सिपाही इसी गूले के सहारे डिप्टी साहब का लगाया लड़ाई का चंदा उघाता है गाँव वाले सन्न हैं, परन्तु—

लोगों के साथ कुत्ता खेतिहर का बैठा था,
चलते सिपाही को देखकर खड़ा हुआ,
और भौंकने लगा,
करुणा से बन्धु खेतिहर को देख-देखकर।

जहाँ कुत्ता भौंक सकता है, वहाँ मनुष्य इतना क्षोभ भी प्रदर्शित नहीं कर सकता। देश का बल इतना मर गया है। यह परिस्थिति उसी समय बदलेगी जब गाँव अपना बल पहचानेगा। डिप्टी साहब आये हैं। जमींदार का आदमी बीस सेर दूध माँग रहा है। बातों-बातों में तकरार छिड़ जाती है। बदलू तान कर नाक पर घूँसा देता है। मन्नी कुम्हार, कुल्ली तेली, भकुआ चमार, लुच्छू नाई और बली कहार सब टूट पड़ते हैं। 'तब तक सिपाही थानेदार के भेजे हुए आये और दाम दे-देकर माल ले गये।' इस प्रकार कवि स्पष्ट रूप से जनता के लोक-नायकत्व की कल्पना करता है।

'नये पत्ते' आधुनिक हिन्दी कविता में एक नितांत अभिनव वस्तु है। पहली बार इतिहास-चेतना, सामाजिक और राजनीतिक व्यंग्य और जनता के लोकनायकत्व के सुन्दर-सुन्दर चित्र हमें मिलते हैं। नये नायक काव्य में पहली बार आते हैं। झींगुर, बदलू, लुकुआ और महगू इस नये काव्य में नायकत्व को प्राप्त होते हैं। नई भाषा में, अटपटे छन्दों में या लगभग गद्य में कवि एक नई वर्ग-चेतना की चुनौती देता है। किसान-मजदूर अब नेताओं और अधिकारियों का छल समझने लगे। वे अपनी मुक्ति के लिए अपनी ओर देखें, गांधीवादी मध्यवित्ती नेतागिरी की ओर नहीं, निराला का यह नया संदेश है॥

186

प्रथम संस्करण १९४७ द्वितीय संशोधित संस्करण, १९५०

प्रकाशक—किताब महल, ५६-ए, ज़ीरो रोड, इलाहाबाद।
मुद्रक—थापर प्रिंटिङ्ग प्रेस, १०३, हिवेट रोड, इलाहाबाद।

रवि हुआ अस्त: ज्योति के पत्र में लिखा अमर
रह गया राम-रावण का अपराजेय समर
आज का, तीक्ष्ण-शर-विधृत-क्षिप्र-कर, वेग-प्रखर,
शतशेलसम्वरणशील, नील नभ-गर्जित-स्वर,
प्रतिपल परिवर्तित व्यूह - भेद-कौशल-समूह—
राक्षस-विरुद्ध प्रत्यूह—क्रुद्ध-कपि-विषम हूह,
विच्छुरितवह्नि-राजीवनयन - हतलक्ष्य - बाण,
लोहितलोचन-रावण - मदमोचन - महीयान,
राघव-लाघव-रावण-वारण-गत युग्म - प्रहर,
उद्धत-लंकापति-मर्दित-कपि-दल - बल - विस्तर,
अनिमेष-राम-विश्वजिद्दिव्य - शर-भंग - भाव,
विद्धांग-बद्ध-कोदंड-मुष्टि, खर-रुधिर-स्राव,
रावण-प्रहार-दुर्वार-विकल - वानर-दल-बल—
मूर्च्छित-सुग्रीवांगद—भीषण—गवाक्ष-गय-नल ,
वारित-सौमित्रि—भल्लपति-अगणित-मल्ल-रोध,
गर्जित-प्रलयाब्धि-क्षुब्ध-हनुमत् - केवल - प्रबोध
उदगीरित-वह्नि-भीम-पर्वत-कपि - चतुः प्रहर
जानकी-भीरु-उर-आशाभर-रावण सम्वर।

इस प्रकार की संस्कृत गर्भित भाषा-शैली सामान्य पाठकों के लिए दुर्ग्राह्य थी; परन्तु कुछ छन्द की आवश्यकता के लिए, कुछ विषय में गम्भीरता और प्रभाव लाने के लिए इस प्रकार की भाषा-शैली का प्रयोग कवि ने किया। यह बात ज़रूर है कि निराला के काव्य का एक बड़ा भाग संस्कृत तत्सम शब्दों और लक्षणा-व्यंजना के नये प्रयोगों के कारण कुछ अस्पष्ट-सा है! कहीं-कहीं अर्थ खुले ही नहीं हैं। परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि निराला जितने कवि हैं, उससे अधिक नहीं तो उतने ही कलाकार हैं और भाषा के प्रयोग में वे बड़े समर्थ हैं। जहाँ

उन्होंने अत्यन्त सरल, प्रतिदिन की बोलचाल से अभिन्न रसात्मक कविताएं लिखी हैं, वहाँ उन्होंने विशेष मनोवैज्ञानिक, आध्यात्मिक और दार्शनिक परिस्थिति के अवसर पर भाषा के अत्यंत व्यंजक प्रयोग किये हैं और अपने शब्द-कोष में अप्रत्याशित विस्तार भी उन्होंने किया है । प्रसादजी का शब्द-कोष अत्यंत सीमित है, मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक एवं अलंकृत शब्दावली की ओर उनका आग्रह है । पंत ध्वन्यात्मक और संगीतमय तत्सम शब्दों के प्रयोग में चतुर हैं। प्रसादजी की अपेक्षा उन्होंने कहीं अधिक शब्दों का अपने काव्य में प्रयोग किया है। परन्तु निरालाजी की शब्दावली न प्रसादजी की शब्दावली की तरह मनोवैज्ञानिक और लाक्षणिक है, न पंत की शब्दावली की तरह बुर्जुआ, संस्कृत और ऊँचे वर्ग की। निराला का काव्य साधारण मानव-चेतना के समतल पर चलता है। कोई भी शब्द उन्हें अग्राह्य नहीं हैं। शब्दों के सम्बन्ध में वे किसी भी प्रकार बुर्जुआ नहीं हैं। वह विशेषतः अभिधात्मक शब्दों का ही प्रयोग करते हैं और जहाँ से चाहते हैं, जनता से, काव्य से, शास्त्र से, धर्म से, दर्शन से उसे उठा लेते हैं और जहाँ तक होता है सबसे अच्छा प्रयोग करते हैं। भाषाशैली की इसी असमता के कारण पाठक कुछ घबड़ा-सा जाता है। निराला की प्रकृत भाषाशैली कौन-सी है, यह वह नहीं कह सकता। ऊपर के उद्धरण के समक्ष 'अनामिका' (१९३८) की यह दूसरी कविता रखिये ! वे 'किसान की नई बहू की आँखें' शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ हैं—

नहीं जानतीं जो अपने को खिली हुई
विश्व-विभव से मिली हुई—
नहीं जानतीं सम्राज्ञी अपने को,
नहीं कर सकीं सत्य कभी सपने को,

रघुनायक आगे अवनी पर नवनीत-चरण,
श्लथ धनु-गुण है, कटि-बन्ध स्रस्त, तूणीर-धरण,
दृढ़-जटा मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वक्ष पर विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशांधकार,
चमकतीं दूर ताराएँ ज्यों हों कहीं पार

शंकाकुल राम का एक दूसरा चित्र देखिये—

है अमानिशा; उगलता गगन घन अंधकार;
खो रहा दिशा का ज्ञान; स्तब्ध है पवन-चार;
अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल;
भूधर ज्यों ध्यान-मग्न; केवल जलती मशाल।
स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर फिर संशय,
रह-रह उठता जगजीवन में रावण जय-भय,

बार-बार राम का मन रावण के प्रति असमर्थता मान लेता है। परन्तु उसी समय जैसे अन्धकार भरे बादलों में बिजली चमकी—

जागी पृथ्वीतनया-कुमारिका-छवि ×

सहसा तन-मन में एक विचित्र परिवर्तन हो जाता है—

सिहरा तन, क्षण भर भूला मन, लहरा समस्त,
हर धनुर्भंग को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त,
फूटी स्मिति सीता-ध्यान-लीन राम के अधर,
फिर विश्व विजय-भावना हृदय में आई भर;
वे आये याद दिव्य शर अगणित मंत्रपूत,—
फड़का पर नभ को उड़े सकल ज्यों देवदूत,

परन्तु आज का रावण का पराक्रम याद आते ही दो आँसू झर ही जाते हैं। हनुमान पादसेवन कर रहे हैं, उन्हें राम की इस दुर्बलता पर आश्चर्य होता है। विभीषण राम को उनके अमित

दशदिक् समस्त हैं हस्त, और देखो ऊपर
अम्बर में हुए दिगम्बर अर्चित शशिशेखर,
लख महाभाव-मंगल पदतल धँस रहा गर्व—
मानव के मन का असुर मंद, हो रहा खर्व।"

वे हनुमान को पूजा के लिए देवीदह से १०८ इन्दीवर लाने का आदेश देकर सभा विसर्जित कर देते है।

पूजोपचार का आरंभ हुआ। उधर ऋक्ष-वानर और राक्षस-सेना का युद्ध चलता रहा। धीरे-धीरे राम नया मानसिक बल पाने लगे, भाव में ऊँचे-ऊँचे बढ़ते गये। एक इन्दीवर पूजाहुति के लिए शेष रह गया। परंतु दुर्गा उसे छिपकर चुरा ले गईं। राम ने आँख खोल कर देखा—"हाय, अब जानकी का उद्धार कैसे होगा! सहसा नई ज्योति जागी। सोचा—

"— है उपाय" कह उठे राम ज्यों मन्द्रित घन
थीं माता मुझे सदा . राजीवनयन!
कमल हैं शेष अभी यह पुरश्चरण
हूँ देकर मातः एक नयन।"

राम जैसे — 'नोक से आँखें बेधने के लिए तैयार
हैं, वे

साधक धीर, धर्मधनधन्य राम!"
ता ने राघव का हस्त थाम।
—"सामने श्री दुर्गा, भास्वर
व पर रहा दक्षिण हरि पर;
स्त दश विविध अस्त्रसज्जित
हुई विश्व की श्री लज्जित,
मी, सरस्वती वाम भाग,
तिक वायें रण-रंग-राग,
पर शंकर"

दशदिक् समस्त हैं हस्त, और देखो ऊपर
अम्बर में हुए दिगम्बर अर्चित शशिशेखर,
लख महाभाव-मंगल पदतल धँस रहा गर्व—
मानव के मन का असुर मंद, हो रहा खर्व।"

ये हनुमान को पूजा के लिए देवीदह से १०८ इन्दीवर लाने का आदेश देकर सभा विसर्जित कर देते हैं।

पूजोपचार का आरंभ हुआ। उधर ऋक्ष-वानर और राक्षस-सेना का युद्ध चलता रहा। धीरे-धीरे राम नया मानसिक बल पाने लगे, भाव में ऊंचे-ऊँचे बढ़ते गये। एक इन्दीवर पूजाहुति के लिए शेष रह गया। परंतु दुर्गा उसे छिपकर चुरा ले गईं। राम ने आँख खोल कर देखा—"हाय, अब जानकी का उद्धार कैसे होगा! सहसा नई ज्योति जागी। सोचा—

"यह है उपाय" कह उठे राम ज्यों मन्द्रित घन
"कहती थीं माता मुझे सदा राजीवनयन!
दो नील कमल हैं शेष अभी यह पुरश्चरण
पूरा करता हूँ देकर मातः एक नयन।"

राम जैसे ही तीर की नोक से आँखें बेधने के लिए तैयार होते हैं, वैसी ही—

"साधु, साधु साधक धीर, धर्मधनधन्य राम!"
कह लिया भगवती ने राघव का हस्त थाम।
देखा राम ने—"सामने श्री दुर्गा, भास्वर
वामपद असुर-स्कंध पर रहा दक्षिण हरि पर;
ज्योतिर्मय रूप, हस्त दश विविध अस्त्रसज्जित
मंद स्मित मुख, लख हुई विश्व की श्री लज्जित,
हैं दक्षिण में लक्ष्मी, सरस्वती वाम भाग,
दक्षिण गणेश, कार्तिक बायें रण-रंग-राग,
मस्तक पर शंकर"

उन्होंने राम को अभय का वरदान दिया—

> "होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन !"
> कह महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन

बंगाल के शक्तिपूजक संप्रदाय में यह कथा बहुत प्रसि निरालाजी को इस कथा से परिचय बहुत पहले बंगाल में हो गया होगा, परंतु उन्होंने 'राम की शक्तिपूजा' के रूप में इस कथा का जो सुन्दर स्वस्थ विकास उपस्थित किया है, वह अभूतपूर्व है। इतनी शक्ति, इतना ओज केवल निराला की ही दूसरी कविता—'तुलसीदास'—में मिलेंगे। अनामिका (१९३८) की सबसे प्रौढ़, सबसे महत्त्वपूर्ण कविता यही है।

'अनामिका' की कुछ कविताओं में हमें निराला की नई प्रगतिशील कविताओं का भी आभास मिलता है। 'किसान की नई बहू की आँखें' (१९३८) खुला आसमान (१९३८), ठूँठ (१९३७), तोड़ती पत्थर (१९३७) और सहज (१९३७) इसी प्रकार की कविताएँ हैं। इन कविताओं में कवि धर्म, मनोविज्ञान और निजी दुख-सुख को छोड़ कर जीवन की गहराई में उतर रहा है। अब वह युग की पुकार सुन कर अपनी कविता को कल्पना-लोक से नीचे उतार कर गाँव-नगर के प्रतिदिन के जीवन में उतारना चाहता है। अपनी कविता को ही संबोधित करके वह कहता है—

> सहज सहज पग आओ उतर;
> देखें वे सभी तुम्हें पथ पर।
> वह जो सिर बोझा लिये जा रहा
> वह जो बछड़े को नहला रहा,
> वह जो इस-उससे बतला रहा,
> देखूँ, वे तुम्हें देख जाते भी हैं ठहर।

उन्होंने राम को अभय का वरदान दिया—

"होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन!"
कह महाशक्ति राम के बदन में हुई लीन

बंगाल के शक्तिपूजक संप्रदाय में यह कथा बहुत प्रसि निरालाजी को इस कथा से परिचय बहुत पहले बंगाल में हो गया होगा, परंतु उन्होंने 'राम की शक्तिपूजा' के रूप में इस कथा का जो सुन्दर स्वस्थ विकास उपस्थित किया है, वह अभूतपूर्व है। इतनी शक्ति, इतना ओज केवल निराला की ही दूसरी कविता—'तुलसीदास'—में मिलेंगे। अनामिका (१९३८) की सबसे प्रौढ़, सबसे महत्त्वपूर्ण कविता यही है।

'अनामिका' की कुछ कविताओं में हमें निराला की नई प्रगतिशील कविताओं का भी आभास मिलता है। 'किसान की नई बहू की आँखें' (१९३८) खुला आसमान (१९३८), ठूँठ (१९३७), तोड़ती पत्थर (१९३७) और सहज (१९३७) इसी प्रकार की कविताएँ हैं। इन कविताओं में कवि धर्म, मनोविज्ञान और निजी दुख-सुख को छोड़ कर जीवन की गहराई में उतर रहा है। अब वह युग की पुकार सुन कर अपनी कविता को कल्पना-लोक से नीचे उतार कर गाँव-नगर के प्रतिदिन के जीवन में उतारना चाहता है। अपनी कविता को ही संबोधित करके वह कहता है—

सहज सहज पग आओ उतर;
देखें वे सभी तुम्हें पथ पर।
वह जो सिर बोझा लिये जा रहा
वह जो बछड़े को नहला रहा,
वह जो इस-उससे बतला रहा,
देखूँ, वे तुम्हें देख जाते भी हैं ठहर।

'खुला आसमान' में भाषा में अभिव्यक्ति की स्वच्छन्दता की दृष्टि से अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन मिलेंगे—

बहुत दिनों बाद खुला आसमान।
निकली है धूप, हुआ खुश जहान।
दिखीं दिशाएँ, झलके पेड़,
चरने को चले ढोर-गाय-भैंस-भेड़
खेलने लगे लड़के छेड़-छेड़—
लड़कियाँ, घरों को कर भासमान।
लोग गाँव-गाँव को चले,
कोई बाज़ार, कोई बरगद के पेड़ तले
जाँघिया-लँगोटा ले, सँभले,
तगड़े-तगड़े सीधे नौजवान।
पनघट में बड़ी भीड़ हो रही,
नहीं ख्याल आज कि भीगेगी चूनरी
बातें करती हैं वे सब खड़ी,
चलते हैं नयनों के सधे बान।

'ठूँठ' जैसी निरुद्देश्य, निर्मूल्य वस्तु के प्रति भी कवि के हृदय में सहानुभूति जाग उठी है—

अब यह बसंत से होता नहीं अधीर,
पल्लवित झुकता नहीं अब यह धनुष-सा,
कुसुम से काम के चलते नहीं है तीर,
छाँह में बैठते नहीं पथिक आह भर
झरते नहीं यहाँ दो प्राणियों के नयन-नीर,
केवल वृद्ध विहग एक बैठता कुछ कर याद!

'तोड़ती पत्थर' नई कविताओं में निराला की सबसे सुन्दर कविता है, सबसे अधिक लोकप्रिय हुई है—

वह तोड़ती पत्थर;
देखा उसे मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर—
वह तोड़ती पत्थर।

कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार;
श्याम तन, भर बँधा यौवन,
नत नयन, प्रिय-कर्म-रत मन,
गुरु हथौड़ा हाथ;
करती बार बार प्रहार;
सामने तरु-मालिका अट्टालिका प्राकार।
चढ़ रही थी धूप;
गर्मियों के दिन
दिवा का तमतमाता रूप;
उठी झुलसाती हुई लू,
रूई ज्यों जलती हुई भू,
गर्द चिनगी छा गई;
प्रायः हुई दुपहर :—
वह तोड़ती पत्थर।

इन कविताओं में अस्पष्टता और रोमांस का पुट जरूर है। पत्थर तोड़ने वाले का 'श्याम तन, भर बंधा यौवन' देखने वाले कवि को 'शत प्रतिशत' प्रगतिवादी कहना असंभव है। परन्तु यह निश्चित है कि कवि ने अपनी निश्चित दिशा पहचान ली है और वह सामान्यों, क्षुद्रों, अपाहिजों और पीड़ितों की कुटियों में साहित्य, कला और सहृदयता की ज्योति जलाने चला है। 'कुकुरमुत्ता' (१९४०) बेला (१९४३) और नये पत्ते (१९४६) इसी काव्य की नई परंपरा को आगे बढ़ाते हैं। कहाँ 'जमुना के प्रति' जैसी कला-वैदग्ध्यपूर्ण, रहस्यात्मक, अतीत के रस में डूबी रच-

नाएँ और कहाँ ताल-छंद-हीन युग का गद्य! जो हो, स्पष्ट अनामिका में निराला ने नये स्वरों को खोज निकाला है। इस संदेह नहीं।

एक दो शब्द 'अनामिका' के गीतों के संबन्ध में। 'अन मिका' के अधिकांश गीत 'गीतिका' की परम्परा को आगे न चढ़ाते। नवीनता के नाम पर उनमें बहुत कुछ नहीं है। केव 'बादल, गरजो' गीत प्रतिवाद रूप में उपस्थित किया ज सकता है—

बादल, गरजो!
घेर घेर घोर गगन, धाराधर ओ!
ललित ललित, काले घुँघराले
बाल कल्पना के-से पाले,
विद्युत-छवि उर में, कवि, नवजीवन वाले,
वज्र छिपा, नूतन कविता
फिर भर दो।
बादल गरजो।

नाएँ और कहाँ ताल-छंद-हीन युग का गद्य! जो हो, स्पष्ट है अनामिका में निराला ने नये स्वरों को खोज निकाला है। इसमें संदेह नहीं।

एक दो शब्द 'अनामिका' के गीतों के संवन्ध में। 'अनामिका' के अधिकांश गीत 'गीतिका' की परम्परा को आगे नहीं चढ़ाते। नवीनता के नाम पर उनमें वहुत कुछ नहीं है। केवल 'वादल, गरजो' गीत प्रतिवाद रूप में उपस्थित किया जा सकता है—

वादल, गरजो!
घेर घेर घोर गगन, धाराधर ओ!
ललित ललित, काले घुँघराले
बाल कल्पना के-से पाले,
विद्यु त-छवि उर में, कवि, नवजीवन वाले,
वज्र छिपा, नूतन कविता
फिर भर दो।
बादल गरजो।

धक्का पहुँचा। हिन्दू-सभ्यता के सूर्य का अस्त होने पर मुसलिम संस्कृति चन्द्रमा का उदय हुआ। इस नवीन संस्कृति के शीतल आलोक में तुलसीदास का जन्म होता है। एक दिन वे मित्रों के साथ चित्रकूट घूमने जाते हैं, वहाँ प्रकृति देखकर उन्हें बोध होता है, किस प्रकार चेतन का स्पर्श न पा सकने से जैसे सब जड़वत् रह गया है। प्रकृति से उन्हें संदेश मिलता है, जड़ से चेतन की ओर बढ़ने का, इस रात्रि से दिन की खोज करने का। जिस माया ने सत्य को छिपा रखा है, उसका उन्हें आभास मिलता है। इतने ही संकेत से तुलसीदास का मन ऊर्ध्वगामी हो कर आकाश के स्तर पर स्तर पार करने लगा। मन की अत्यंत ऊँची उड़ान से उन्होंने देखा किस प्रकार भारत की सभ्यता एक जाल में, फँसी हुई है, जैसे सूर्य की आभा को राहु ने ग्रस लिया हो × × ×

तुलसीदास के प्राण इस अज्ञान का नाश करने को विकल हो गये, किंतु उसी क्षण वहाँ आकाश में उन्हें अपनी स्त्री के दर्शन हुए। उसी के मोह में बँध कर उनका जिज्ञासु मन नीचे उतर आता है। सारी प्रकृति ही उन्हें अपनी स्त्री के सौन्दर्य में रँगी जान पड़ती है। अपने मित्रों के साथ वे लौट आते हैं × × ×

इधर रत्नावली का भाई उसे लिवाने आता है और जब तुलसीदास बाजार जाते हैं; वह उनकी स्त्री को लिवा ले जाता है। घर आकर तुलसी ने देखा, वहाँ कोई भी नहीं है। बस घर से निकल पड़े और ससुराल चल दिये। उनकी शृंगारी भावनाओं के अनुसार रास्ते में प्रकृति भी मोहक सौन्दर्य से रँगी हुई जान पड़ती है।

रात्रि में एकान्त हुआ और उस समय तुलसी ने प्रिया का एक नवीन रूप देखा। समग्र भारत की सभ्यता को पुनर्जीवन

टूटता वज्र दह दुर्निवार
नीचे प्लावन की प्रलय धार, ध्वनि हर-हर

यहाँ विदेशी सभ्यता से आक्रान्त देश को मेघाच्छादित गगन कहा गया है। चारों ओर गहन अंधकार, भयंकर गर्जना, भयंकर प्रताड़ना। पग-पग पर सुन्दर उपमाओं और रूपकों के द्वारा कवि अपने मन्तव्य को स्पष्ट कर रहा है। बुन्देलखंड की वीर-शेष पृथ्वी की ओर इंगित करता हुआ, वह कहता है—

निःशेष सुरभि, कुरवक समान
संलग्न वृंत पर, चिन्त्य प्राण,
बीता उत्सव ज्यों, चिन्ह म्लान, छाया श्लथ।

इस्लामी सभ्यता, और कलाओं के माया-जाल में देश की जनता अपने स्वाभाविक गौरव को भूल कर पतन की ओर बही जा रही थी—

भूला दुख, अब सुख-स्वरित जाल
फैला—यह केवल-कल्प काल—
कामिनी-कुमुद-कर-कलित ताल पर चलता
प्राणों की छवि मृदु मंद स्पंद,
लघु गति, नियमित पद, ललित छंद,
होगा कोई, जो निरानंद, कर मलता।
सोचता कहाँ रे, किधर कूल
बहता तरंग का प्रमुद फूल?
यों इस प्रवाह में देश मूल खो बहता;
'छल-छल-छल' कहता यद्यपि जल,
वह मंत्र-मुग्ध सुनता 'कल-कल'
निष्क्रिय; शोभा-प्रिय कूलोपल ज्यों रहता।

चित्रकूट पर घूमते हुए तरुण कवि तुलसीदास को प्रकृति द्वारा नया संबोधन प्राप्त होता है। सारी प्रकृति जैसे कवि का स्वागत

कल्मषोत्सार कवि ये दुर्दम
चेतनोर्मियों के प्राण प्रथम
वह रुद्ध द्वार का छायान्तम तरने को—
करने को ज्ञानोद्धत प्रहार
तोड़ने को विषम वज्र-द्वार,
उमड़े, भारत का भ्रम अपार हरने को

घर आकर कवि देखता है, पत्नी भाई के साथ पितृगेह चली गई है। भाई-बहन के वार्तालाप में कवि ने अत्यंत सहज, अत्यंत स्वाभाविक चित्रण किया है। भाषा का सामर्थ्य यहाँ देखने योग्य है। भाई कहता है—

"हो गई रतन, कितनी दुर्बल,
चिन्ता में, बहन गई तू गल?
माँ, बापूजी, भाभियाँ सकल पड़ोस की
हैं विकल देखने को सत्वर,
सहेलियाँ सब, ताने देकर,
कहती हैं, बेचा वर के कर, आ न सकी!
"तुझसे पीछे भेजी जाकर
आईं वे कई बार नैहर;
पर तुझे भेजते क्यों श्रीवरजी डरते?
हम कई बार आ-आ कर घर
लौटे पाकर झूठे उत्तर;
क्यों बहन, नहीं तू सम उन पर, बल करते?
"आँसुओं भरी माँ दुख के स्वर
बोलीं, रतन से कहो जाकर,
क्या नहीं कुछ मोह माता पर अब तुमको?
जामाताजी वाली ममता
माँ से तो पाती उत्तमता।

जीवन-समीर-शुचि निःश्वसना, वरदात्री,
वीणा वह स्वयं सुवादित स्वर
फूटीं तर अमृताक्षर-निर्झर,
यह विश्व हंस, हैं चरण सुघर जिस पर श्री

भारती की दृष्टि से बँध कर कवि धीरे-धीरे ऊपर उठने लगता है, उठता चला जाता है। इस मानसिक क्रम-विकास का वर्णन कवि ने अत्यंत कुशलता से किया है—

दृष्टि से भारती से बँध कर
कवि उठता हुआ चला ऊपर;
केवल अंबर—केवल अंबर फिर देखा;
धूमायमान वह घूर्ण्य प्रसर
धूसर समुद्र शशि-ताराहर,
सूझता नहीं क्या ऊर्ध्व, अधर, क्षर रेखा।
चमकी तब तक तारा नवीन,
द्युति नील-नील, जिसमें विलीन
हो गई भारती, रूप-क्षीण महिमा अब;
आभा भी क्रमशः हुई मंद,
निस्तब्ध व्योम—गति-रहित छंद;
आनंद रहा, मिट गये द्वंद्व, बंधन सब।
थे मुँदे नयन, ज्ञानोन्मीलित,
कलि में सौरभ ज्यों, चित में स्थित;
अपनी असीमता में अवसित प्राणाशय;
जिस कलिका में कवि रहा बंद,
वह आज उसी में खुली मंद,
भारती-रूप में सुरभि छंद निष्प्रश्रय

जब कवि को देह-बोध होता है तो उसका मन, उसका हृदय, उसका रोम-रोम आनन्द से भर जाता है। यह आनन्द सारे

यों यह प्रसंग समाप्त हो जाता है।

जैसा राय कृष्णदासजी ने 'परिचय' में लिखा है, तुलसीदास केवल कथात्मक काव्य नहीं है। इसमें कथा-प्रसंग के नाम पर विशेष विस्तार नहीं मिलेगा। चरित्र-चित्रण के लिए भी विशेष प्रयत्न नहीं। चरित्र-चित्रण घटनाओं के साथ चलता है और यहाँ घटनाओं का स्थान तुलसी की मानसिक उथल-पुथल ने ले लिया है। निराला ने तुलसी की मनोभूमि के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया है और वह एक नई श्रेणी के खंड-काव्य की सृष्टि करने में सफल हो गये हैं। आधुनिक युग के अनुरूप ही यह काव्य है। आज मनोविज्ञान का युग है। मनुष्य के कार्य-व्यापार आज इसीलिए महत्त्वपूर्ण हैं कि उनसे उसके मन की अनेक खुली-मुँदी वृत्तियों का पता चलता है। तुलसी जैसे महापुरुष के गृहत्याग की कहानी के पीछे साधारण घरेलू समस्या नहीं हो सकती। महान् आदर्शों से घिरकर, पृथ्वी के कर्दम से ऊपर उठकर, हृदय-मन के असंख्य संकल्पों को पार करता हुआ कवि-भक्त तुलसीदास का रामचरितमानस आज भी तुलसी के व्यक्तित्व का सबसे प्रकाशवान स्तंभ है। इस महान् व्यक्तित्व के हृदय-मन के संघर्षों की कहानी अब तक लिखी नहीं गई। 'तुलसीदास' में पहली बार युग के अनुरूप भाषा-शैली में मनस्तत्त्व के श्रेष्ठतम आदर्शों को सामने रखकर तुलसी के परिवर्तन की भूमिका उपस्थित की गई। छायावाद काव्य में 'कामायनी' और 'तुलसीदास' नये ढंग के ऐसे कथा-काव्य हैं जो सदैव हिंदी के गौरव रहेंगे। 'कामायनी' का क्षेत्र अधिक व्यापक है, परंतु 'तुलसीदास' के सौ दल, अपने में पूर्ण, कथा के संकुचित क्षेत्र में उतनी ही पुष्ट सौन्दर्यसृष्टि करते हैं।

अगाध शक्ति के स्रोत बने रहे, इसमें भी कोई संदेह नहीं। दरिद्रता से उनकी भेंट हुई। छोटे-छोटे भतीजों और बालकों को लेकर उन्हें अकेले गृहस्थी चलानी पड़ी। तरुणाई के पहले स्वप्न भी खत्म नहीं हुए थे कि वे विधुर बन गये। उनकी एकमात्र पुत्री सरोज़ का वैवाहिक जीवन अशांत रहा और उन्नीस वर्ष की छोटी अवस्था में उसका देहांत हो गया। उनके एकमात्र पुत्र चिरंजीव रामकृष्ण को विशेष अध्ययन की सुविधाएँ नहीं मिल सकीं और पिता की ओर से उसका मन कुंठित हो गया। घर के बाहर, बाजार में, सड़क पर, साहित्य-गोष्ठियों में निराला अपने विद्रोही काव्य की बात इतने जोर से उठाते, इतने उग्र बन जाते कि उन्हें बहुत कम समर्थक मिलते। उनके लिए साहित्य साधना थी और उस युग में साहित्य को जीवन-साधना कहने वाले पर लोग हँसते थे।

यह विद्रोह-भरा, क्रांतिकारी अतिमानव अतीव मानसिक और आर्थिक संघर्ष के बीच भी बराबर लेखनी चलाता रहा। सुन्दर कविताएँ, साहसपूर्ण नवीनता जिनमें थी, ऐसी कविताएँ, विद्रोही कविताएँ उसने लिखीं। अर्थ के लिए उसने गद्य से नाता जोड़ा और एक नये प्रकार के प्राणवान, व्यंग-प्रधान अत्यंत अलंकृत गद्य की नींव उसने डाली। अप्सरा, अलका, निरुपमा, चतुरी चमार, सखी, प्रभावती और कुल्ली भाट— ये उनकी सर्वोत्तम गद्य-रचनाएँ थीं। हिंदी कथा-साहित्य में निराला ने नई कला, नई शैली, नए प्रकार के चरित्रों का समावेश किया। उनकी रचनाओं ने हिंदी कथा-साहित्य को बल दिया है, इसमें कोई संदेह नहीं है। सम-सामयिक आलोचकों ने निराला की प्रतिभा को पहचाना नहीं और इन विरोधी आलोचकों का मुँहतोड़ उत्तर देने के लिए निराला ने स्वयं अपने गीतों और कविताओं की व्याख्या की, आलोचना लिखी;